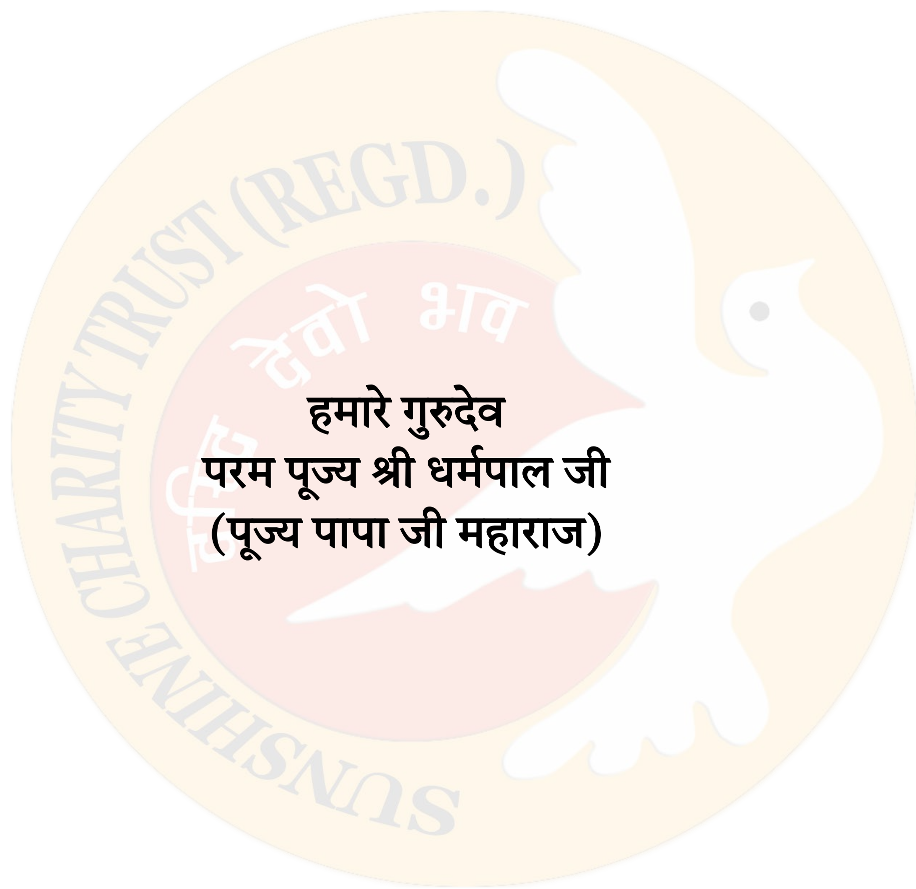
कृपा की लहरें



हमारे गुरुदेव
परम पूज्य श्री धर्मपाल जी
(पूज्य पापा जी महाराज)

सनशाईन चैरिटी ट्रस्ट (रजि.)

ई-40, टैगोर गार्डन एक्स., नई दिल्ली-110027

दूरभाषः- 011 35556495

SERVING THE MISSION- A GREAT KARMA YOGA

Blessed indeed is the person who is able to see him and listen to him everywhere and in everything

Papa ji maharaj.

Apart from helping others outwardly, there are two ways by which we are able to help all beings by harboring in our mind only good and noble thoughts which in turn set up good thought waves and vibrations. They travel far and wide leaving a beneficial influence for the well-being of all. On the other hand, evil and hateful thoughts create only evil and discordant vibrations which help accumulate only evil and negative forces both within and without.

Years after years have passed by with its achievements and failures and the New Year has dawned with its promise of a glorious future. It is the time to learn from our failures in the past and to avoid them in the coming years. Such introspection is the stepping stone to the ample fields of peace, joy and fulfillment. Let each MISSION MEMBER evaluate his or her contribution to the growth and well-being of the organization during these past years. The Mission is committed to the cultural revival and the spiritual upliftment of the community. The members constitute the Mission and unless there is dynamic participation from them, it can hardly achieve its avowed goals. It is time that every one of us sat up and took a vow that I shall give more than what I had received from the mission. Our Gurudeva brought the timeless message of the Gita to our doorsteps and if any one found solace and guidance in it to become a better person, it is his duty to pass this message on to others around. That is DEBT WE OWE TO OUR RISHIS AND IN HELPING THE MISSION TO DISSEMINATE THIS GREAT KNOWLEDGE WE ARE PAYING BACK OUR DEBTS. Mere intellectual understanding without KARMA YOGA cannot take us far on the spiritual path.

SERVING THE MISSION THUS CAN BE A GREAT KARMA YOGA.

भूमिका

जन्म से कछु न होय मेरे स्वामी
ज्यू भावे त्यू बख्श लै ।।

परम श्रद्धेय गुरूदेव पूज्य पापा जी महाराज के लेखों का संग्रह "कृपा की लहरें" एक अद्वितीय प्रस्तूतीकरण के रूप में गुरू संगत श्री ठाकुर परिवार के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। यह लेखमाला सन शाईन चैरिटी ट्रस्ट द्वारा निकाली जाने वाली हिन्दी त्रैमासिकी 'साधना पथ' में पिछले कई वर्षों से धारावाहिक रूप से प्रकाशित होती आ रही है। पाठकों ने इसे बहुत पसन्द किया है और बहुतों की यह मांग रही है कि इन लेखों को पुस्तक का रूप दिया जाए।

इन प्रसंगो के लेखक श्री धर्मपाल जी जो एक पत्रकार (Journalist) और तेज अखबार में एडीटर के पद पर कार्यरत थे, उन्होंने संसार के विभिन्न धर्मावलम्बी संतों के जीवन के प्रेरक प्रसंगो को अपनी कुशल लेखनी से सजाया है जिससे यह प्रसंग सचमुच ही "कृपा की लहरें" भक्ति रस का अथाह सागर बन गया है जिसमें गोते लगाकर मनुष्य न केवल भवसागर को पार कर सकता है बल्कि इस जीवन में भी सुख और शान्ति पा सकता है।

संतों की वाणी ही मनुष्य का सदा मार्गदर्शन करती रही है। सागर के बगैर क्या लहरें मचलती रह सकती हैं- "नहीं" । परन्तु सागर का अस्तित्व इन पर निर्भर नहीं है। हमारे जीवन की लहर का अस्तित्व हमारे गुरूदेव के अनन्त जीवन के सागर पर निर्भर है। हमारे शरीर में जीवन का नृत्य और आवेगों का खेल ईश्वर की शक्ति से ही चलता है जो हमारी चेतना से रिस्ती चली जाती हैं।

दिल में किसी की मुहब्बत न हो तो पुकार बनकर ज़ुबान पर नहीं आती। पुकारती भी मुहब्बत है और फरियाद रस बनकर जीत लिए आती है, तो वो भी मुहब्बत ही होती है। ज़ज्बात के समुन्दर से उठने वाली एक मौज (लहर) वो वलवला पैदा कर देती है जो खोखले शब्दों से पैदा नहीं हो सकता। बच्चा कितनी ज़ुबानें जानता है, लेकिन उसकी पुकार मां को इस कदर बेताब कर देती है कि सीने में उसका दिल धड़कने लगता है और वो आगोशे-रहमत (रहमत भरी गोद) खोलने पर मजबूर हो जाती है। याद रखिए! रहमत की आगोश दलीलों से नहीं खुलती, उसे मुहब्बत की पुकार खोलती है। जो दरवाजे सदा के लिए बन्द होते हैं और उन्हें खोलने की कोई सूरत नज़र नहीं आती, उन्हें मुहब्बत के चन्द आँसू खोल देते हैं और प्रस्तुत प्रकाशन भी अपने मन के बन्द दरवाजों को खोलने की एक पुकार है, एक फरियाद है।

अन्त में अपने गुरूदेव के प्रति अपने हृदय का आभार व्यक्त करता हूं, और उनके कार्य की प्रगति इसी कारण है कि उनके आध्यात्मिक परिवार (श्री ठाकुर परिवार) में ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने गुरू की शिक्षाओं और आदर्शों के अनुकूल जीवन्त उदाहरण बनने के लिए जीवन अर्पित कर दिया। अपने को आध्यात्मिक पथ पर समर्पित करने से उच्च कोई कार्य नहीं, न ही इससे महान कोई सफलता है।

मेनेजिंग ट्रस्टी





अध्याय - 1

प्रार्थना की जान है दिल की तड़प । केवल कुछ शब्दों, कुछ श्लोकों और मंत्रों को आदत के रूप में पढ़ लेना कदाचित प्रार्थना और उपासना का रंग-रूप धारण नहीं कर सकता। कुछ लोग बहुत प्यारी आवाज में झूम-झूम कर रामायण पढ़ते हैं, गीता पढ़ते हैं, गुरूग्रंथ साहिब पढ़ते हैं, कुरान शरीफ पढ़ते हैं और दूसरे ग्रंथों का उच्चारण करते हैं परन्तु कई बार उनके दिल इस तड़प और इस वेदना से खाली अथवा कोरे होते हैं जो प्रार्थना और अरदास को स्वीकार कराने के लिए आवश्यक हैं। मन में आलस और जीभ नाम का उच्चारण करे तो कुछ नहीं बनता। जिन्हें यह शिकायत है कि पाठ करने से कुछ नहीं बना, कुछ नहीं मिला, उनको याद रखना चाहिए कि पीने की दवा का प्रभाव सूंधने से प्राप्त नहीं हुआ करता ।

दुआ और प्रार्थना के लिए सदा भीड़ से बचना चाहिए। जहां संसार का शोर होगा वहां न आप अपनी कह सकेंगे और न किसी की सुन सकेंगे। भीड़ हर धर्म-स्थान पर मिलेगी किन्तु इस भीड़ में जाने से केवल दिल को यह समझाना होता है कि धनी और निर्धन, स्वस्थ और रोगी, बच्चे और बूढ़े तथा युवक, हर आयु, हर व्यवसाय के लोग उस प्रभु के दरबार में उपस्थित होकर जब उसकी प्रशंसा करते हैं तो मुझे भी उस प्रभु के दरबार में उपस्थित होने, उससे कुछ मांगने में लज्जा क्यों प्रतीत हो? दिल को प्रार्थना के निम्मित तैयार करने के लिए बेशक भीड़ में जाइए, किन्तु प्रार्थना की स्वीकृति के लिए तो एकांत ही काम आता है।

एकांत की आवश्यकता न होती तो लोग जंगलों का मार्ग न पकड़ते, निर्जन वनों में डेरा न लगाते, गुफाओं की खोज न करते, आबादियों से न भागते, बस्तियों को तिलांजलि न देते। किन्तु जंगल में जाने और अन्य एकान्त स्थानों में रहने से भी तभी कुछ मिलता है जब दिल में भी विचारों का समूह न रहे। दिल का शोर तो बाहर के शोर से भी कहीं अधिक हानिकारक और व्याकुल करने वाला होता है।

एक व्यक्ति ने सन्यास लेकर गुरू भक्ति के लिए जंगल में जाकर रहने का निश्चय किया। जाने से पहले एक पूर्ण संत से मिलकर अपना विचार बताया और उनसे आर्शीवाद मांगा। महापुरूष बोले - "साथ क्या ले जा रहे हो? कहने लगे - "उपनिषद्, स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें, परमहंस रामकृष्ण का जीवन चरित्र और गीता इत्यादि, कुछ खाने का सामान, कुछ कपड़े और रेडियो (ट्रांजिस्टर)। महापुरुष ने चकित होकर पूछा - "ट्रांजिस्टर क्यों? वह सज्जन बोले - "ताकि दिल उदास न हो, कभी-कभी इसे सुनकर मन बहला लिया करूंगा।" वह महापुरूष बोले - " तब यहीं रहो, सारी दुनिया को तो साथ लिये जा रहे हो तो वहां तुम्हें एकांत कहां मिलेगा। और देखो बिजली अथवा बैटरी से चलने वाला ट्रांजिस्टर भी यहीं छोड़ो, दिल का ट्रांजिस्टर भी यहीं छोड़ो। दिल का ट्रांजिस्टर रहा तो एकांत नहीं रहेगा, निर्जन वनों में भी बस्तिया बनी रहेंगी।"

संतों और महापुरूषों ने बस्तियों और वीरानों में एकांत का आनन्द लेने का एक उत्तम मार्ग बताया है। जब सब सो जाते हैं, सारी दुनिया स्वप्न में मस्त हो जाती है, तब प्रेम और वेदना के मारे उठकर अपने प्रीतम को याद करते हैं। ऐसे एकान्त में वे आंसू बहाते हैं। रो-रो कर प्रभु से प्रेम और विरह की पीड़ा मांगते हैं। दिल में रहने वाली एक चुभन, एक कसक और व्याकुलता मांगते हैं।

एक संत सूफी फ़कीर से एक श्रद्धालु ने कहा - "प्रभु! मुझे ऐसा आर्शीवाद दो जिससे मैं अपनी मंजिल पा सकूं।" परम संत बोले- "खुदा करे कि तेरा दिल दर्द, कसक और चुभन से भर जाए। एक टीस सी दिल के पहलू में जाग उठे।"

जानते हैं कि जिनके दिल में दर्द-ए-इश्क जाग उठता है, व्याकुलता बढ़ जाती है, टीस सी उठने लगती है, उनकी आंखो से आंसू प्रवाहित होने लगते हैं। उनके होठों पर आहें रहती हैं, उनकी दशा एक घायल के समान होती है। यह दर्द चूंकि उन्होंने संसार भर के आनन्दों को लुटाकर प्राप्त किया होता है। यह वेदना, तड़प उन्होंने धन सम्पति, सुख और ऐश्वर्य को ठुकरा कर पाई होती है। इसलिए रात-रात भर जाग-जाग कर इस रूहानी सम्पति की रक्षा करते हैं। घायल की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। देखने में दीवाना लगता है, पागल-सा परन्तु ऐसा पागल और ऐसा दीवाना जिसकी दीवानगी और पागलपन पर बुद्धि और सम्पति दोनों न्यौछावर होने को तड़पते हैं। अपने गुरूदेव के विषय में स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि "देखने में श्री रामकृष्ण दीवाने से दिखाई देते थे किन्तु बुद्धि वाले उनसे बुद्धि के बदले दीवानगी की भीख मांगने आया करते थे। ऊपर से वह होश में नहीं होते थे किन्तु होश वाले हाथ बांधे उनसे इस बेहोशी के नशे की भिक्षा मांगा करते थे।"

इसी दर्द, प्रेम और वेदना की मारी- मीरा ने पुकार कर कहा- "घायल की गति घायल जाने या जिन लाई होय।"

गीताजंलि में विश्व कवि टैगोर ने लिखा है कि इस दर्द के मारों की दशा उस विरहन के समान होती है, जिसे यह सन्देश दिया गया है कि उसका प्रीतम रात के अंधकार में उससे मिलने के लिये आयेगा। दिन भर संसार का काम करती हुई वह दिल के अन्दर व्याकुल रहती है और उस समय की राह तकती रहती है कि कब दिन ढलेगा, कब शाम पड़ेगी और कब उसकी भेंट प्रीतम प्यारे से होगी।

इस व्याकुलता में असीम शांति छिपी होती है, इस प्रतीक्षा में मिलन का आनन्द समाया होता है। प्रेम के मार्ग पर जब विश्वास और लगन के कदमों से चला जायेगा तब मंजिल से कहीं अधिक मंजिल की ओर जाने वाला मार्ग प्यारा लगना आरम्भ हो जाता है। वियोग के मारे दिलों के लिये मार्ग के हर कदम पर मंजिल का आनन्द मिलता है। हर पग पर वास्तविक मंजिल का आनन्द रूह में समा जाता है। ऐसा साधक और सादिक खूब जानता है कि मंजिल के मालिक ने मंजिल के सभी जलवों को राह की धूल में बिखेर दिया था ताकि उसका जो दीवाना, मस्ताना उसकी ओर चला आ रहा है, सारे मार्ग में उसको प्यार दिया जाये। उसे गले से लगाया जाए। आंखों में आंसूओं की नमी रखने वाले ऐसे प्रेम दीवानों की जिहवा पे हर समय शुक्र (धन्यवाद) और सन्र (सन्तुष्टि) का कलमा होता है और वह दर्द को दरमा की सूरत बना लेते हैं। गिला, शिकवा से उनकी जीव्हा

अपरिचित होती है। उनकी आंखे हर समय अपने प्रीतम प्यारे के जलवों में ही खोई रहती हैं। उनके लिये सारा जीवन एक प्रार्थना होता है । सवेरे से शाम तक और शाम से सवेरे तक सारा समय प्रार्थना का समय बन जाता है।

✿✿ ✿✿ ✿✿ ✿✿



अध्याय - 2

जो आत्म विकास की साधना करना जानता है वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी साहस नहीं खोता। वह दृढ़तापूर्वक अपने संकल्पों को साकार करने के लिए जुटा रहता है। ऐसे लोगों के लिए सुखद भविष्य का द्वार अवश्य खुलता है।

कल जब वे महापुरूष हमारे पास थे, हमारी हालत क्या थी और आज उनकी गैर हाज़िरी में हमारी दशा क्या है? कल तक हमसे बढ़कर कोई खुशनसीब न था, आज हमसे अधिक कोई बदनसीब नहीं होगा। रो-रो कर ऐसा सोच रहा था कि आंख उठाकर देखा तो आकाश मार्ग पर एक दिव्य महापुरूष के तेजी के साथ दौड़ते हुए स्वर्ण रथ को देखा। सफेद रंग के सुन्दर घोड़े उस रथ को वायु के कन्धों पर उड़ाते हुए सरपट दौड़ रहे थे। उन घोड़ों के पांव में बंधी हुई सोने की झांझरें एक दैवी संगीत उत्पन्न कर रही थी। जैसे गंगा किनारे किसी प्राचीन मंदिर में कांस्य की कितनी घटियां बज रही हों और इष्ट देवता का आहवान कर रही हों। चढ़ते सूर्य जैसे रंग का पीताम्बर पहने उस महापुरूष को देखा तो आकस्मात् मेरे मन में उस रथ में यात्रा करने की भावना जाग उठी। यह जानते हुए भी कि मेरे में एक भी ऐसा दिव्य गुण विद्यमान नहीं, जिसके आधार पर स्वर्गधाम को जाने की सोच सकूं। मैंने अपने बल का सहारा न लिया, उस करूणानिधि प्रभु से विनती की कि मुझे भी अपने साथ ले चलिए। उन्होंने रथ रोक लिया और अगाध प्यार भरा आर्शीवाद देते हुए कहा- "आओ! मेरे साथ चलना चाहते हो?" मैंने गीली अधखुली आंखों से उनको देखा, लगता था कि वे महापुरूष कोई और न थे साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण हों। वही कमलनयन, वही टेढ़ी चितवन, वही मधुर वचन, वही सरलता, वही विनम्रता, वही अनुकम्पा । बड़ी मुश्किल से ओंठ खोलकर धीरे से उत्तर दिया- "जी हां, कृपा करके अपने साथ ले चलिए। मैं मृत्युलोक से घबराया हुआ हूं, उस पार ले चलिए। दयालु! आप से दया की भीख मांगता हूं।"
"आओ, मेरे प्यारे सहयात्री! खुशी के साथ आओ, मैं इस सफ में आपका स्वागत करता हूं। आओ, मेरे रथ पर बैठ जाओ।" अपने छोटे से पांव उठा कर रथ पर चढ़ना चाहा, किन्तु चढ़ न पाया, वह कहीं ज्यादा ऊंचा था। भरसक यत्न करने पर भी मेरे कदम उस रथ के पाये तक न पहुंच सके। तब वैकुण्ठनाथ स्वयं रथ से नीचे उतरे, मुझे अपने बाजुओं से थाम लिया और सहारा देते हुए कहा- "पीछे नहीं, आगे आओ, आगे बैठो मेरे पास, मेरे हमसफ़र बनकर बैठ जाओ।"

मेरे संकोच को दूर करते हुए कृपा- सिंधु भगवान रूप महापुरूष ने मुझे साथ बिठा लिया और फिर रथ के घोड़ों को हाकते हुए कहा- “नीचे देखो मृत्युलोक, यहां से देखो कितना भयानक लगता है? नर्क कुण्ड में पड़े हुए पामर जीव, दुख विषाद में घिरे हुए तरह-तरह की भयानक आग में जल रहे हैं, कराह रहे हैं। आपने अच्छा किया इस मृत्युलोक से निकल आने का निश्चय किया। तुम्हारी इस भावना को देख कर ही मैंने रथ को रोक लिया था। आओ, अब तुम्हें वैकुण्ठधाम ले चलें। यात्रा भले ही लम्बी है किन्तु

वे न जाने क्या कुछ कहने वाले थे, मैं अधीर, खुशी के मारे अपने आपको वश में न रख सका, बात काटते हुए बोला- "प्रभु! यह रथ हो, आप इसके सारथी हों तो मैं जन्म-जन्मान्तरों की लम्बी यात्रा भी हंसते-हंसते तय कर लूंगा।" यह कहते हुए मैंने उनके श्री चरणों पर नतमस्तक होकर उनकी चरण रज को चूम लिया। ऐसा लगा कि उनकी पद-धूलि में संसार भर के फूलों की महक और मिठास रची-बसी हो। उन्होंने मेरे सिर पर करूणा भरा हाथ फेरते हुए कहा- "वह देखो, हम दुःख भरे संसार से कितनी दूर ऊपर उठ आये हैं?" शायद कुछ और कहा था, किन्तु मैं उनके शब्दों को सुन नहीं पाया, लगता था कि हमारा रथ कितने ही गन्धवों के दिव्य राग रागनियों के मधुर स्वर मण्डल से गुज़र रहा था। आकाश का रंग भी कब का बदल गया था। दूसरे सभी रंग न जाने कहां रह गये थे, अब तो हम एक हल्के से नीले दुधिया रंग वाले आकाश मण्डल के प्रकाश-पथ पर तेज़ी के साथ आगे बढ़ रहे थे।

एक बात ने मुझे बहुत चकित किया, घोड़ों की लगामों को थामे हुए वे किस करूणा, ममता और कृपा-भरे नेत्रों से मुझे देखते जा रहे थे। उनकी आंखो में वह जादू भरा आकर्षण था जो मां की ममता में भी कभी अनुभव नहीं किया था। किसी बड़े से बड़े सहृदय दानी के नेत्रों में भी इतना आकर्षण नहीं देखने को मिला था। और फिर इससे बड़ा कमाल यह कि वे घोड़ों को चाबुक नहीं मारते थे। लगाम को तनिक कस देते तो घोड़े पूर्ण गति से उड़ने लगते। ज़रा लगाम ढीली छोड़ते तो घोड़े किसी मन्दिर में देव आह्वान के लिए नृत्य करती हुई देवकन्या के रंगोली रंगे पांव की तरह ठुमक ठुमक कर चलने लगते ।

मैं आश्चर्य भरी आंखो के साथ रह-रहकर कभी रथ को देखता, कभी घोड़ों को और कभी रथवान को । सब कुछ अद्भुत, सब कुछ अनुपम ऐसा न देखा था न सुना था। और तो और घोड़ों की लगामों को देखकर मैं दंग रह गया। सात रंगो की रेशमी तारों में मन के तार गुथें हुए थे और अनेक मानिक मोतियों से जड़ी हुई ये लगामें अपनी चमक-दमक से मेरी आंखों को चकाचौंध किये जा रही थी। मैं आश्चर्य का चित्र बना सब कुछ देख रहा था, तब करूणामूर्ति ने कहा- "आओ तुम्हें रथ चलाना सिखा दूं। जहां भी जाना हो, बस इस रथ में बैठ कर संकल्प-मात्र से घोड़ों को उधर चलने का आदेश दे देना, ये घोड़े हवा में उड़ाने भरने लगेंगे और तुम्हें मन चाही मंज़िल तक ले जायेंगे।" "मैं ऐसा रथ कहां से ले पाऊंगा?" मैंने मन ही मन में कहा। दयानिधान, दातार मेरी अनकही बात करते हुए बोल उठे- "रथ! रथ तो तुम्हें मैं यही दे दूंगा। यह मेरे दिव्य नाम का रथ है। गुरू-मंत्र ही स्वर्ण रथ है और इस रथ में जुते हुए ये घोड़े तुम्हारी कर्मेन्द्रिया। साधना के हीरे मोती जड़ित ये इसकी लगामें हैं तुम्हारी ज्ञानेन्द्रिया, तुम्हारे मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त की डोरियों से गुंथी हुई। इस स्वर्ण रथ पर बैठ कर जब चाहो, जहां चाहो जा सकते हो। स्वर्गलोक, वैकुण्ठधाम से भी परे वह जो त्रिगुणातीत सूर्य लोक से भी परे ब्रह्मलोक है, यह गुरू-मंत्र रूपी स्वर्ण रथ तुम्हें वहां तक ले जा सकता है।"

"कौंधती हुई बिजलियों से अधिक वेग के साथ दौड़ने वाले इन घोड़ों को मैं कैसे सम्भाल सकूंगा? नहीं, नहीं इन्हे वश में करना मेरे सामर्थ्य से परे है।" मैं ऐसा सोच ही रहा था कि गुरूदेव ने मुस्कराते हुए मेरे कन्धे को प्यार से थपथपाते हुए कहा- 'इस रथ में ही ऐसी कला है कि ये घोड़े अपनी इच्छा से एक कदम नहीं उठा सकते। स्वचलित (आटोमेटिक) कार की तरह सब कुछ पूरे नियन्त्रण में बंधा हुआ है। किसी दूसरे रथ में जुड़े

हुए ये घोड़े विनाश की तरफ ले जायेंगे, किन्तु सत्य ज्ञान की संयम धातु से बने इस नाम रूपी स्वर्ण रथ में यही घोड़े जोड़ दिये जायें तो यही घोड़े अनन्त, अथाह, अगोचर प्रभु धाम तक ले जाते हैं।"

और इससे पहले कि मैं कुछ कहता, उन्होंने मेरे माथे को चूमा, मुझे प्यार से अपने अंग लगा लिया और फिर घोड़ों की लगाम मेरे हाथों मैं सौंप कर कहा कि "यह रथ भी तुम्हारा और जानते हो कि मैंने अपने जीवन का अनमोल खज़ाना तुम्हें क्योंकर दे दिया है? इसलिए कि तुम मेरी नादि सन्तान हो, संसार बिन्दी सन्तान के मोह-माया में बंधा हुआ दुःख-सुख, लाभ-हानि, यश-अपयश, मृत्यु-जीवन, जन्म-मरण, उजाले - अंधियारें की बदलती परछाईयों में उलझता रहता है। बिन्दी सन्तान है मोह नरक का द्वार, नादि सन्तान है ब्रह्मलोक जाने का द्वार।"

मेरे वसुदेव, नन्द-नन्दन त्रिलोकीनाथ! मेरे कृष्ण मुरारी!! मेरे परम श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरू-देव !!! न जाने क्या-क्या मेरे मूढ़ मन को अमृत वचन सुना रहे थे.... एक अनलिखित गीता की व्याख्या और परिभाषा बतला रहे थे और मैंने आश्चर्य के साथ देखा घोड़े सरपट दौड़ते जा रहे थे और हमारा स्वर्ण रथ अब तारा मण्डल से भी आगे निकल गया था। बिल्कुल सामने चंद्रलोक नज़र आने लगा था और फिर देखते ही देखते गुरूदेव रथ को हांकते चंद्रलोक को पीछे छोड़कर आगे निकल आये और फिर.

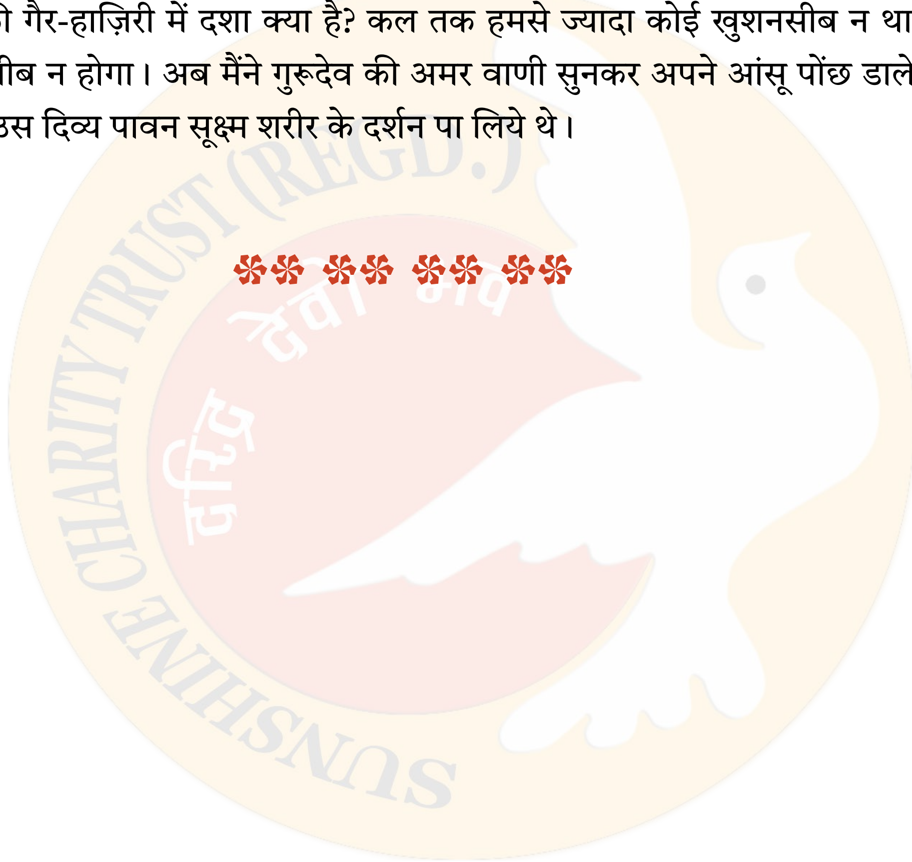
और फिर रास्ते में ही दुधिया रंग के आकाश पथ पर एक जगह उन्होंने रथ को रोक कर कहा- "लो रथ की लगामें दृढ़ता से अपने हाथों में थाम लो और जब मैं उत्तर जांऊ तब तुम रथ को आगे बढ़ाकर सूर्य लोक तक ले जाना, मैं वहां सूर्यलोक के मुख्य द्वार पर स्वागत करने के लिए तुम्हारा इन्तज़ार करूंगा..... जगमग-जगमग करते हुए उस लौक की छवि तुमसे देखी न जा सकेगी। यह वह दिव्य छवि है जो हर सच्चे साधक की प्रतीक्षा करती हुई अनन्तकाल से शुभ मार्ग पर उठने वाले हर कदम की आहट पाकर और भी आभा के साथ दमकने और चमकने लग जाती है........"

और इससे पहले कि मैं अपने-आपको सम्भाल पाता, हालात का ठीक अनुमान लगा पाता, मैंने देखा मेरे रथवान गुरूदेव रथ मेरे हाथों में सौंपकर अदृश्य हो चुके थे। स्थूल दृष्टि से कहीं दूर जा चुके थे, ओझल हो चुके थे। तब मैंने दर्द और चुभन के साथ महसूस किया कि उस अन्जानी राह पर मैं अकेला खड़ा हूं, तन्हा। वही रथ था, वही घोड़े थे, रत्नजडित सजधज थी जिसने मुझे कुछ क्षण पहले वशीभूत कर रखा था। मैं मोहित हुआ न जाने किस अगाध आनन्द में खोया अपने परम पिता, पूज्य पाद गुरूदेव के संग आकाश मार्ग पर उड़ता जा रहा था और अब मैं घोर ग्लानि में जकड़ा गया था।

यह क्या हुआ? मेरे जीवन रथ के रथवान मुझे इस सूनी राह में अकेले छोड़ के चल दिये? वे तो कहा करते थे कि हम सदा-सर्वदा तेरे साथ रहेंगे। फिर ये साथ क्यों छोड़ गये? मैं बिलख उठा, मैं चीख उठा । मैंने रूंधी हुई आवाज़ में कहा- "प्रभु! यह रथ संभाल लो। यह घोड़े ले लो। ये सारे लोकों का सुख और उनके सारे नज़ारे वापिस ले लो, मुझे आपके सिवाय और कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे केवल आपका संग चाहिए। सब कुछ छिन

जाये लेकिन आपका संग-साथ बना रहे। बस यही मेरी अभिलाषा है !! यही मेरी कामना है!!!" तभी न जाने कहां से एक आवाज़ आई। बोलने वाला कौन था, दिखाई नहीं दे रहा था। हां, उनके दिव्य शब्द रह-रह कर मेरे कानों से टकरा रहे थे। शायद.......शायद यह गुरूदेव की ही आवाज़ थी। बादलों को चीर कर आने वाली उस दिव्य आवाज़ ने जादू भरे शब्दों के साथ मुझे कहा- "याद रखो - गुरू शरीर का सूक्ष्म स्वरूप धर्म है और उस धर्म का सूक्ष्म स्वरूप संघ है। जो गुरू की शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें धर्म की शरण भी ग्रहण करनी होती है। मेरी सेवा करना चाहते हो तो मेरे दिव्य शरीर, मेरे संघ की सेवा करो। उस नाम रूपी स्वर्ण रथ पर चढ़ कर सेवा करते हुए भूले-भटकों को अपने साथ मेरे रथ पर चढ़ा कर खुद इस मंजिल तक पहुंचो, दूसरों को उस मंज़िल तक पहुंचने की प्रेरणा दो....." गुरूदेव की अमर वाणी के यह शब्द मैंने सुने तो मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। मैं कुछ क्षण पहले यह सोच रहा था कि कल जब तक वे सशरीर हमारे पास थे, हमारी हालत क्या थी और आज उनकी गैर-हाज़िरी में दशा क्या है? कल तक हमसे ज्यादा कोई खुशनसीब न था और आज हमसे बढ़कर बदनसीब न होगा। अब मैंने गुरूदेव की अमर वाणी सुनकर अपने आंसू पोंछ डाले। मैंने रोना बंद कर दिया। मैंने उस दिव्य पावन सूक्ष्म शरीर के दर्शन पा लिये थे।

❀❀ ❀❀ ❀❀ ❀❀



अध्याय - 3

आत्मिक यात्रा में गुरू पूर्णिमा बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाला पर्व है। गुरू धारण करने का फर्ज़ केवल कान में मन्त्र-श्रवण करने का नाम नहीं, जीवन को नये सांचे में ढालने के लिए घोर परिश्रम प्रारम्भ करने की शुभ बेला है। गुरू-दीक्षा ग्रहण करना मानो पुराना कलेवर उतार कर नया लिबास पहनना- वह लिबास जिससे लोग घृणा करते हैं, जो फटा हुआ और पुराना है और जिस लिबास को हमारे वासनाओं के तीखे बाणों ने तार-तार कर रखा है। उस लिबास को उतार कर एक नया लिबास धारण करना है। यह परिवर्तन केवल लिबास का परिवर्तन नहीं होता, मनोभावों के समग्र कलश को उडेल देना और फिर इसे धोकर अमृत को धारण करना- यह व्यास-पूजा का पर्व बताता है।

जैसे स्कूल में दाखिला मिल जाये तो पढ़ाई शुरू होती है, इसी तरह से गुरू-दीक्षा ग्रहण करने के बाद जीवन निर्माण का कार्य शुरू होना चाहिए। संसार के उस पहले महापुरूष ने जिन्हें युग-प्रवर्तक कहा जाता है, सारनाथ में अपने पहले पांच शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा था- "गुरु और शिष्य के नाते पर विचार कम करो, मन की सारी युक्तियों को इस बात में लगा दो कि जिस मंजिल की प्राप्ति के लिए आपने धर्म पथ को ग्रहण किया, उसमें कहां तक सफलता मिली? आप मेरी प्रशंसा करते रहे, मैं आप की प्रशंसा में पड़ा रहूं तो इसका अर्थ यह होगा- शाक्यमुनि भगवान बुद्ध ने कहा था कि हम दोनों की प्रगति रूक जायेगी। क्या इतना कहना काफी नहीं कि मैं आपका सह-पथिक हूं और हम दोनो आत्म-चिंतन के मार्ग पर चलने वाले दो राही।"

दो सगी बहनें थी। एक इतनी रूपवती कि जो देखे, देखता रह जाए और दूसरी इतनी कुरूप कि आंखें देखना भी गंवारा न कर सकें। दोनों बहिनें भगवान बुद्ध के पास आई। चन्द्रकला की तरह रूपवती ने कहा- "ऐसी कौन सी युक्ति है, जिससे मेरा रूप और यौवन मन्द न पड़े ?" तथागत ने हंसकर कहा- "ज़रा अवस्था तो आती ही है। रूप की धूप ढल जाती है। कोई भी ज़रा अवस्था से बच नहीं सकता।" युवती ने कहा- "मैं शारीरिक रूप की बात नहीं करती मानसिक रूप की बात पूछती हूं।" भगवान बुद्ध बोले- "हर सुबह और शाम को दर्पण देखा करो।" दूसरी बहिन ने पूछा - "वह कौन सा साधन है जिससे मेरे मन की कुरूपता हट सके?" गौतम बुद्ध बोले - "सुबह और शाम दर्पण देखा करो ।" दोनों बहिनों ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि "हम दोनों की अलग-अलग स्थितियां हैं पर आपने हम दोनों की उलझन का एक ही इलाज बताया है।" तथागत ने हंसकर कहा- "मेरी रूपवती बेटी! सदा दर्पण देखो, कहीं तुम्हें मैल तो नहीं लग गई। मुंह फीका, यौवन कुम्हलाया हुआ, आंखों में नीरसता देखो तो उन दुष्कर्मों को दूर कर दो जिनके कारण तुम्हारे रूप को बट्टा लगा था और तुम बेटी दिन भर दया, मैत्री, करूणा, प्रेम की सौगात बांटते हुए अपना मुंह निहारती रहोगी तो देखोगी जीवन से सारी कुरूपता मिट गई और मानवता का सारा सौन्दर्य तुम्हें मिल गया।"

गुरू-दीक्षा लेना हाथ में दर्पण लेने के बराबर है। हर साधक को दीक्षा लेने के बाद आत्म-निरीक्षण करना होगा कि गुरू मन्त्र ग्रहण करने के बाद और श्री गुरू चरण शरण में उपस्थित होने के बाद जीवन में कहां तक भलाई आई है और कहां तक हम बुराई से पीछा छुड़ा पाये हैं। मन की सारी ग्लानि चिपटी रहे तो हमारी दशा वही होगी जो धोबी के घाट पर पड़े हुए उस कपड़े जैसी है जो भट्टी पर न चढ़ाया गया हो। मैल धोबी नहीं उतारता, भट्टी उतारती है। धोबी तो भट्टी में कपड़े को डाल देता है। जो साधक भट्टी में चढ़ना नहीं चाहते, सेवा और तप से कोंसो दूर भागते हैं, विश्वास रखें वे मंजिल से उतनी ही दूर रहेंगे, जितनी दूर गुरू मंत्र ग्रहण करने से पहले थे। गुरू का अर्थ ही है- अन्धेरे को दूर करने वाला। यदि गुरू ग्रहण करने के बाद भी मन भ्रम-भ्रांति, संशय-अज्ञानता और अन्धकार में फसा रहता है, तो जानिए गुरू की दी हुई रोशनी को काम में नहीं लाता, पीठ किये हुए अंधेरे में भटकता है।

गुरू-दीक्षा ज़रूरी नहीं कि कान में मन्त्र फूंक कर दी जाए। मन्त्र फूंकना तो एक विधि है। सोई हुई प्रज्ञा शक्ति को जगाने के लिए अनुभवी महापुरूषों की तरफ से अपनी आत्मिक ज्योति के साथ शिष्य की आत्मिक ज्योति को जलाना और यह ज्ञान-अग्नि कई प्रकार से फूंकी जा सकती है। वाणी के अलावा स्पर्श से और दया-दृष्टि से और यह भी ज़रूरी नहीं कि दीक्षा शारीरिक तौर पर जागृत अवस्था में ही प्राप्त हो, सोये हुए भी निन्द्रा अवस्था में जब हम स्वप्न संसार में खोये हुए होते हैं, दैव कृपा से जीवन क्रान्ति की चिंगारी कोई फूंक देता है तो हम उठने पर अपने आप को बदला हुआ पाते हैं। एक दो नहीं अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं कि हमारे कितने ही महापुरूषों को गुरू-दीक्षा स्वप्नावस्था में प्राप्त हुई। पर भूलिए नहीं, यह स्वप्नावस्था भी हम और आप जैसी स्वप्नावस्था नहीं थी। गुरू नानक और गुरू अर्जुन देव जी की वाणी श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रत्यक्ष कहती है कि रहमतों के भण्डार प्रभु ने कई बार सोये हुए साधकों को जगाकर सिद्ध पुरूष बना दिया। ऐसे जिज्ञासु साधना डगर पर चलते हुए गोया मंजिल के बहुत करीब पहुंच गए। सुस्ताने के लिए ज़रा आंख लगी थी कि किसी ने उठाकर इन्हें मंजिल के रूबरू कर दिया। यह निन्द्रा गोया योग-निन्द्रा थी, भोग निन्द्रा नहीं। नहा-धोकर नये कपड़े पहनकर फल-मिठाई, वस्त्र और रूपये लेकर श्री गुरू चरणों में जाकर दीक्षा ग्रहण करने वाला हर साधक ज़रूरी नहीं कि मन से सुचेत हो और भली प्रकार नये जीवन का आगमन और स्वागत करने के लिए तत्पर हो ।बहुतों के लिए गुरू दीक्षा तो एक रस्म पूरी करने के बराबर होती है। जैसे हज़ार बातें सुनना और भूलना हमारा नित्य जीवन है, इसी प्रकार गुरू दीक्षा का महत्व न जानते हुए साधारण जिज्ञासु इस मूल तत्व को भूल जाता है कि किसी दिव्य महापुरूष ने अपनी सबसे बड़ी कीमती दौलत और खज़ाने से बहुमूल्य रत्न शिष्य को प्रदान किया। गुरू मंत्र को इसी लिए रत्नागर कहा गया है- रत्नों की खान, रत्नों का महासागर। पर क्या किया जाए हम ऐसे लाल, हीरे, जवाहरात को पाकर भी पहले की भांति कंगाल बने रहें तो दोष महाउपकारी गुरूदेव का नहीं, हमारी मंद बुद्धि का है जो कांच और बिलोर के टुकड़ो से खेलते-खेलते हीरे की परख भूल जाते हैं।

यह ठीक है कि सभी धर्मशास्त्र गुरू दीक्षा ग्रहण करने का अर्थ यह बताते हैं कि साधक को अब प्रभु नाम के पुण्य-प्रताप से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होगी, पर मत भूलिए जब तक कामना, वासना और स्वार्थ-सिद्धि की लालसा बाकी है, हमने नाम लेकर भी नाम नहीं लिया। एक ढोंग रचाया है अपनी

मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए। गुरू को यंत्र बनाने की चेष्ठा की है। चाहिए तो यह था कि हम गुरू अर्पण हो जाते। जो हैं, जैसे हैं, अपना-आप गुरू के हवाले कर देते, परन्तु हमारी भूल देखिए जन्म-जन्मान्तर की अज्ञानता के मारे हुए हम गुरू अर्पण न हुए, उल्टा गुरू को अर्पण होने को कहा। नाम ले लिया इसलिए कि गुरू की सारी शक्ति हमारी स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयोग में लाई जा सके।

भगवान कृष्ण ने गीता में तो स्पष्ट कह दिया है- "जब तक भी वासना-कामना मन में बाकी है तब तक ईश्वर प्राप्ति असम्भव है।" यहां तक कड़ी शर्त लगाई गई है कि अपनी मोक्ष प्राप्ति की कामना भी छोड़ दें और अपने जीवन को दूसरों की भलाई के लिए निष्काम सेवा में लगा दें।

गुरू-मंत्र ग्रहण करने का अर्थ है- जीते जी मर जाना अर्थात् जिन कामनाओं और वासनाओं की धधकती ज्वाला में हम जन्म-जन्मान्तर से भस्म होते चले आए हैं, गुरू धारण करने का अर्थ है, उसी ज्वाला को सदा के लिए शान्त कर देना और अपनी ही राख से अपने नये जीवन का निर्माण करना। गुरू दीक्षा नया जीवन देती है, केवल उनको जो पहले गुरू चरणों में आते ही अपना आप मिटा देते हैं। मन के पाँचों विकारों को मारना ही काफी नहीं, उस मूल अहंकार को ही समाप्त कर देना होता है जिसमें से यह पांचो विकार जन्म लेते हैं और यह तभी होता है कि नाम ग्रहण करते हुए गुरू को ईश्वर तुल्य जानकर अपना आप सम्पूर्ण रूप से गुरू चरणों में न्यौछावर कर देना। भूत और वर्तमान को जलाकर राख कर देना ताकि गुरुदेव जैसा भविष्य बनाना चाहें, बना सकते हैं। जैसे टूटी-फूटी झोंपडी की जगह पर नई मंजिल इमारत खड़ी करने के लिए ज़रूरी है कि पहले झुग्गी-झोंपड़ी को हटा दिया जाए, इसी तरह शिष्य को अपने मन का क्षेत्र पूरी तरह से खाली करके गुरू चरणों में भेंट करना होगा।



अध्याय - 4

एक प्रश्न जो जिज्ञासु हर जगह, हर स्थान पर, हर परिस्थिति में दोहराते हैं और अपने इष्ट आराध्य से हाथ जोड़कर मार्गदर्शन करने की प्रार्थना करते हैं वो ये है कि मन भजन में नहीं लगता। बैठते ही मन खण्डित हो जाता है। एकाग्रता नाम का सन्तुलन इसके पास नहीं रहता। कई बार तो बेचैनी और अशान्ति इतनी बढ़ जाती है कि व्याकुल जिज्ञासु आसन छोड़ देता है और भजन से मुहँ मोड़ लेता है। इस प्रश्न का संबंध किसी विशेष पद्धति या किसी विशेष प्राणी के साथ नहीं होता। कोई किसी भी धर्म पर निष्ठा रखने वाला क्यों न हो, मन के विरोध में सभी एक ही दुहाई देते हैं। जैसे ये मन किसी और का हो, देखने की बात तो यह है कि मानसिक संघर्ष और व्याकुलता प्राणी की अपनी ही पैदा की हुई होती है और जब वह अपने आपको असहाय और अत्यन्त दुर्बल महसूस करता है तो गुरूजनो से, महापुरूषों से या फिर उच्च कोटि के अभ्यास करने वाले सत्संगियों से सहायता लेने के लिए प्रश्न दोहराता है। यह युद्ध अपने ही विरूद्ध आप लड़ता है और उससे भी ज्यादा हंसने वाली बात तो यह है कि कहने को मन का योद्धा है, परन्तु अन्दर से उसकी सारी शक्ति और उसका सारा बल शत्रु के साथ होता है, जिसके विरूद्ध लड़ता है, उसी के आगे हथियार डाल देता है, उससे सुलह कर लेता है। एक दो पहली मानसिक झड़पों के बाद युद्ध लड़ने में इसकी कोई रूचि नहीं रहती। मन के विकार इतने प्रबल हो जाते हैं कि ये उनके सामने भीगी बिल्ली बनकर सदा के लिए युद्ध व संघर्ष का त्याग कर देता है।

यह मेरी और आपकी हालत नहीं, साधना के सोपान पर चढ़ने वाले हर व्यक्ति को यही कठिनाई आती है। सांस फूल जाता है, कदम इंकार कर देते हैं और सामने भंयकर पहाड़ सीना तानकर खड़े होते हैं। ऐसी अवस्था में संयम और साधना से विहीन मनुष्य की तो बात ही क्या बड़े-बड़े योद्धा दम हार जाते हैं और शत्रु के आगे हथियार डाल देते हैं। तपश्चर्या काल में ऋषिकेश के स्वामी शिवानंद जी के साथ एक ऐसी ही घटना घटी। निर्जन वन में अकेले साधक पर क्या बीत रही होगी, उनका मन उसकी चीखो-पुकार सुनकर दहल उठा। गंगा के पानी में घन्टों खड़े होकर तप किया करते थे। रात के सन्नाटे में किसी के रोने की आवाज़ ने इनका ध्यान भंग कर दिया। अन्धेरे में पत्थरों से टकराते हुए बड़ी मुश्किल से जहां रोने वाला बैठा था, वहां पहुंचे। देखा एक कोपीन- धारी साधू विलाप कर रहा है। स्वामी शिवानन्द ने बहुत दम-दिलासा दिया और फिर रोने का कारण पूछा। साधू ने कहा - "मैं अपने घर लौट जाना चाहता हूं। मैने बहुत गल्ती की जो मकान और परिवार का त्याग करके यहां चला आया।" स्वामीजी ने पूछा कि 'क्या वैराग्य बहुत प्रबल हो गया था जो घर-बार छोड़ दिया था?' साधू ने कहा कि 'नहीं, आर्थिक परिस्थितियों ने इतना मजबूर कर दिया था। पैसा लेने वाले अजगर की तरह पीछे पड़े रहते थे। फिर एक अन्धेरी रात में जान बचाने के लिए यहां चला आया।'

रोने-पीटने का एक मुख्य कारण न केवल विवेक की कमी होती है बल्कि यह भी है कि साधक जम कर भजन के लिए नहीं बैठता ज़रा सा बैठता है तो मन की खलबली उसे उचाट कर देती है। यही वह समय है, जब एक

साधक को गुरु कृपा की, गुरू सहायता की, गुरू करूणा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। लड़ाई लड़ने की बजाय हाथ जोड़कर कहे कि मैं तो दुर्बल हूँ गुरूदेव, तेरे सहारे, तेरे द्वार पर पड़ा हूं मुझे बचा लो। सहायता के लिए गुरू का नाम हृदय से, जुबान से, मन से पुकारता चला जा, न कोई आसन याद रहे, न कोई प्रतिक्रिया, न ज्ञान, न विवेक, न कर्मयोग। नेत्रहीन के लिए जैसे एक लाठी काम करती है अगर ऐसी परिस्थिति में शिष्य गुरू सहायता के लिए इसी तरह रूदन करेगा तो जिस तरह मां बिलखते बच्चे को उठाकर सीने से लगा लेती है, गुरूदेव भी उस शिष्य साधक को अपने श्री चरणों में पनाह दे देंगे और उसे गिरने से बचा लेंगे।

प्रसिद्ध योगीराज स्वामी ओंकार की आंखो देखी घटना है। आज से कोई ७०.८० वर्ष पहले की बात है। तब ऋषिकेश के आगे घने जंगल में शेर भी रहते थे। स्वामी ओंकार घाट पर आसन लगाने के लिए बैठे तो दृष्टि सामने चट्टानों पर बैठे एक साधू पर गई जो ऊंचे स्वर से सोऽहम, सोऽहम का जाप कर रहा था। इतने में क्या हुआ कि एक शेर दहाड़ता हुआ उस साधक के बिल्कुल समीप आकर खड़ा हो गया। आंखे बंद किये हुए वह सोऽहम का पाठ किये जा रहा था। शेर की आवाज़ सुनकर भी न उसने आंखें खोली, न वह भयभीत हुआ। कुछ समय पश्चात उस महापुरूष ने हाथ से शेर को बैठने के लिए कहा और फिर अपनी आंखे मूंद ली। शेर सारी रात वहां मंत्रमुग्ध बैठा रहा। अगले दिन ओकांर स्वामी उनसे मिले और पूछने लगे कि रात को आपने शेर को भगा दिया। बोले- मैं भगाने वाला कौन था? जिनके सानिध्य में पहुंच गया था, उनके आदेश पर उसे बैठने को कहा था। ब्रह्म शक्ति के आगे शेर की क्या मजाल जो इंकार कर दे।' स्वामी ओंकार यह सुनकर फूट-फूट कर रोने लगे। भजन में मन नहीं लगता था, वापिस जाना चाहते थे, परन्तु यह देखिए कि शेर को सामने खड़ा देखकर भी जो मौत से नहीं डरा, शेर उससे डरने लगा। बस फिर क्या था, दृढ़ हृदय के साथ आसन पर बैठे और फिर तीन दिन तक निर्विकल्प समाधि में ही बैठे रहे।

जो पहले ही दम हार जाते हैं वे युद्ध जीतने की कभी बात भी नहीं सोच पाते। विजेता वही होते हैं जो स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में-'साधना करते हुए जो सिर पर कफन बांध लेते हैं, मर जाऊंगा, कट मरूंगा लेकिन पीछे नही हटूंगा।' यह साहस ही उन्हें महातपस्वी, महातेजस्वी बना देने वाला महामन्त्र था। कालेज के दिनों में उन्होंने ऐसी ही वीरता दिखाई थी। यह वीरता हर साधक को दिखानी होगी। डटकर अपने आसन पर बैठकर अपने मन को गुरूमंत्र में लीन करना होगा। एक लड़ाई एक समय में करे, दृढ़तापूर्वक कदम जमाकर साहस के साथ एक शत्रु से टक्कर ले। मर जाऊंगा लेकिन आसन से नहीं उठूंगा। मन लगे न लगे, जाप चले न चले, मैं मंत्र उच्चारण करूंगा और निश्चित समय के लिए गुरू चरणों में बैठा रहूंगा। परिणाम चाहे कुछ भी हो, मैं हर हार जीत के लिए तैयार होकर रणभूमि में डटूंगा। यह वो दृढ़ संकल्प है जो साधक को विजेता बना देता है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि एक बार दुश्मन को पीठ दिखा दी, आसन छोड़कर भाग खड़े हुए, तो बहुत लम्बे समय तक कदम नहीं संभल पायेंगे। जहां कहीं पांव टिकाना चाहेगा, टिक नहीं पायेगा क्योंकि शत्रु इसकी कमज़ोरी जान गया है। कन्याकुमारी के मन्दिर में समुद्र के अन्दर चट्टान तक जाने के लिए जान लेवा मोंजों से टकराना था। स्वामी विवेकानन्द ने जानबूझकर इस संघर्ष में अपने शरीर को डाल दिया। लगता था बेताब मौजें इनके जीवन को नष्ट कर देंगी लेकिन साहस भरे सन्यासी ने दम नहीं छोड़ा और उस चट्टान पर पहुंचकर धरती को प्रणाम करते हुए कहा- 'जगत्जननी जन्म देने वाली मां! तूने ही रक्षा की। आज के बाद यह जीवन

तुझे ही समर्पित हो।' कृतज्ञता में समर्पण की भावना को सम्पूर्ण कर दिया और नगर-नगर भिक्षा मांगने वाले साधू को विश्व विजेता विवेकानन्द बना दिया। यही साहस गुरूदेव हमसे चाहते हैं। हर साधक को ऐसे ही साहस की, ऐसी ही वीरता की, जीवन नैय्या की पतवार बनना है।





अध्याय - 5

इस बार जनवरी के महीने में जब अकीदतों ने सिर झुकाए अभिलाषाओं की झोलियां फैलाए अनगिनत सेवक और श्रद्धालु गुरूदेव परम पूज्य पापा जी के जन्म दिवस को मनाने के लिए एकत्र हुए, इनकी खुशियों को अधिक करने के लिए यह ज़िक्र कितना सुहावना रहेगा कि इनके जन्म के आसपास दो दूसरे संसार प्रसिद्ध परम सन्तों की जन्मतिथि भी मनाई जा रही है। हज़रत निजामुद्दीन औलिया और दूसरे स्वामी रामकृष्ण परमहंस ।

तीनों महापुरूषों की घटनांए कितनी मिलती-झुलती हैं, इससे आश्चर्य होता है। लाल बाग (आजादपुर के समीप) दिल्ली में जब पूज्य पापा जी (श्री धर्मपाल जी) की प्रथम भेंट परम योगेश्वर श्री ठाकुर जी महाराज जी से हुई तो ठाकुर जी महाराज ने पूज्य पापा जी को आदर सम्मान देते हुए कहा था- "जैसे पिता के पास पुत्र आता है, जैसे फूल के पास ओस-कण आते हैं, जैसे गाय के पास बछड़ा आता है, उसी सरल भावना से मेरे पास चले आओ।" हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया गुरूदेव शेख फरीद के डेरे पर पाक-पटन पहुंचे तो गुरूदेव ने फरमाया था - "मेरे निजाम! तुम आ गए, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।" कितने आश्चर्य की बात है कि कलकत्ते में अपने एक सेवक के निवास स्थान पर परमहंस श्री रामकृष्ण के सम्मुख जब सोलह-सत्रह वर्ष के तरूण नरेन्द्र को लाया गया तो श्री रामकृष्ण के मुंह से यह शब्द निकले थे - "तुम तो योगीराज हो, मेरे पास आओ।" और फिर एक बहुत रहस्य भरी बात उन्होंने नरेन्द्र के कानों में कही "क्या जब तुम सोने लगते हो, तुम्हारी आंखों के सामने कोई ज्योति दिखाई देती है?" जब नरेन्द्र ने जवाब 'हां' में दिया तो आनन्द से विभोर मन से श्री रामकृष्ण ने नरेन्द्र को अपनी बांहो मे जकड़ लिया। श्री ठाकुर जी महाराज को श्री धर्मपाल जी की, बाबा फरीद को हज़रत निजामुद्दीन औलिया की और परमहंस रामकृष्ण को नरेन्द्र ही की प्रतीक्षा थी। यह मिले तो लगा कि सीने में धड़कने वाले दिल का बिछुड़ा हुआ हिस्सा आज फिर से वापिस मिल गया हो, सम्पूर्णता प्राप्त हो गई हो। इन तीनों की गुरूदेव में जो श्रद्धा थी, वह तो शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। यह भक्ति आलमें-दीवानगी को छू गई थी। नम्रता और निष्ठा कोई उनसे सीखे। तीनों अपने गुरूदेव को साक्षात परमब्रह्म समझते और मानते थे तथा उनके हर शब्द पर हज़ार जान कुर्बान जाते थे। गुरुदेव के एक-एक शब्द पर उन्होंने तन-मन सारा वार दिया था। ऐसा लगता था कि गुरूदेव के लिए ही उन्होंने शरीर धारण किया था और गुरूदेव का अवतरण उन्हीं के लिए हुआ था। चांद का चकोर से जो अनुपम प्यार होता है वही प्यार पापा जी से गुरूदेव श्री ठाकुर जी महाराज जी का था। वही रिश्ता-ए-अकीदत शेख फ्रीद से हज़त निजामुद्दीन औलिया का था और स्वामी विवेकानन्द में तो मानो गुरू भक्ति साक्षात् सशरीर प्रगट हुई थी। तीनों अपने गुरूदेव की उपमा व प्रशंसा करते हुए आंखो में आंसू भर लाते थे और उनका चेहरा लाल हो जाता था। ऐसा लगता था कि उनका सारा शरीर पुलकित हो गया हो। गद्गद् मन से बोलते तो उनकी आवाज संध जाती थी। तीनों ने गुरू ऋण चुकाने के लिए अपने सारे जीवन की आहुति दे दी। सौ जान से उन्होंने गुरूदेव के जारी किये हुए धर्म प्रवाह को संचारित रखा और उनके रूहानी साम्राज्य को बढ़ाने, दूर-दूर तक फैलाने के लिए जो कुछ भी हो सकता

था, किया। उन्होंने अपना जीवन गुरूदेव के मिशन को सिरे चढ़ाने के लिए समर्पित कर दिया और दिन-रात कठोर तप किया तथा जीवन के अंतिम स्वांस तक गुरूदेव के साथ अनन्त प्रेम की डोर में बंधे रहे।

वक्त के तकाज़ों के साथ रीतियां भले ही बदल गईं पर गुरूदेव की सैद्धान्तिक सच्चाईयों को उन्होंने ज्यों का त्यों कायम रखा। परम पूज्य पापा जी हर जिज्ञासु से प्रभु प्राप्ति के लिए सेवा, सिमरण और समर्पण पर ज़ोर दिया करते थे। वे कहते थे कि जिस धर्म की मनुष्य पूजा करता है, जिसको व्यवहार में लाता है, वह धर्म ही उसकी रक्षा करता है। परमहंस रामकृष्ण का कथन था "सम्पूर्ण समर्पण के बगैर कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।" स्वामी विवेकानन्द सन्यास दीक्षा लेने वाली शिष्य मंडली से कहा करते थे- "नाम इसी शर्त पर दूंगा अगर तुम चौराहे पर खड़े होकर बोली पर बिक जाने के लिए तैयार हो तो ।"

जॉन-दी-बैपटिस्ट (John The Baptist) दो युक्तियों से दीक्षा दिया करते थे या तो अग्नि को साक्षी बनाकर या जार्डन नदी में गोता देकर । क्राईस्ट ने कहा- "मैं मन्त्र न अग्नि से दूंगा, न जल से दूंगा तुम्हें अपना बना कर दूंगा। मिट जाओ, अमर पथ को पाओ।"

पूज्य ठाकुर जी महाराज ने अपने शिष्य श्री धर्मपाल जी को तप की नई पद्धति को समझाते हुए कहा था जब आप सबके दुखों के कांटे दूर करके उनके जीवन आंगन को फूलों से भरने की कोशिश करोगे, आपका अपना जीवन फूलों की सुगंधि एवं महक से स्वंयमेव भर जाएगा। हर समय अथाह सुख और अपूर्व आनन्द में मग्न रहने का सरल मार्ग है- दूसरों को सुखी बनाओ। सब रूपों में, सब शक्लों में, सब घरों में उस प्रभु की ज्योति देखकर सबको प्यार करो और यह प्यार इस तरह से करो जिस तरह किसी मन्दिर में ईष्ट और आराध्य की पूजा की जाती है। सबकी सेवा मेरी सेवा समझो। सब को प्यार मेरी पूजा समझ कर करो।

शेख फरीद ने हज़रत निजामुद्दीन औलिया को एक गुफा में तप करने का आदेश दिया। लगातार तीन दिन और तीन रात तक उन्होंने हज़रत निजामुद्दीन की सुध-बुध न ली और फिर प्रभु सत्संग में बैठे क्या अनुभव हुआ अपने आप निज़ाम को उठाया और गले लगाया। परमहंस रामकृष्ण ने विवेकानन्द के शरीर को छूकर अपने स्पर्श से वह नशा चढ़ा दिया कि उन्हें डाल-डाल, पात-पात और हर जीव जन्तु में ही नहीं, कण-कण में ईश्वर के दर्शन होने लगे। लोहे के जंगले से टकराये, सिर फूट गया, सिर से खून की धारा बह निकली। नरेन्द्र पागलों की तरह जिस वस्तु को देखते ब्रह्म कहकर लिपट जाते। नरेन्द्र को लोग पागल कहने लगे। मित्र उन्हें पकड़कर दक्षिणेश्वर लाये तो श्री रामकृष्ण ने हसंकर कहा था- "मुझको पागल कहने वाले तुम पागल कैसे बन गए?" और फिर गले से लगाकर प्यार से थपथपाते हुए कहा था- "मैं नर हूं तुम मेरे नारायण हो।"

यह तीन जीवनों की कहानी नहीं, भक्ति और भगवत प्राप्ति का अमूल और अचूक मंत्र है जो युगों-युगों में इसी तरह से सच्चे जिज्ञासुओं को दिया गया, और वह मंत्र है- आत्म समर्पण का। अपना तन, मन, धन श्री गुरूदेव के चरणों में सहर्ष भेंट चढ़ा देना।

बसन्त पंचमी के महापर्व पर ऋतुराज बसंत इसी आत्मसमर्पण का ही उपदेश देने आता है। लहलहाते खेतों में जो हरियाली नज़र आती है और जो फसलें खड़ी दिखाई देती हैं, वे बार-बार हम को चुनौती देती हैं कि फल लाने के लिए बीज को अपनी हस्ती को मिटाना पड़ता है। दाना जब तक खाक में नहीं मिलता, गुलो-गुलज़ार नहीं बनता। जो परवाने बार-बार गुरूदेव की शमां पर न्यौछावर होते हैं, वही सच्चे भक्त और साधक कहलाते हैं।

मिटा दे अपनी हस्ती को गर कुछ मर्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर गुलो-गुलाजार होता है।।



अध्याय - 6

सच्चा साधक तो वही कहलाने योग्य होता है जो केवल वर्ष का लेखा-जोखा नहीं करता बल्कि प्रतिदिन का कार्य समाप्त करके जब थका हारा दुनिया के झमेलों से ज़रा राहत पा कर बिस्तर पर गिरे तो अपनी दिन भर की गतिविधियों पर नज़र डाले, अपना निरीक्षण करे। पूरी निडरता के साथ, पूरी बेखौफी के साथ हर प्रकार के लाग लपेट से ऊपर उठे। किसी ने तारीफ की हो, किसी ने कटाक्ष किया हो, किसी ने भला-बुरा कहा हो, किसी ने बहुत प्रशंसा के पक्ष में फूल भेंट किए हों, किसी ने ईंट पत्थर से स्वागत किया हो, हार और जीत की हर भावना को थोड़ी देर के लिए अपने मन से परे हटाकर अपने आप को नग्न रूप में देखने का यत्न करें। हार-श्रृंगार से सजे हुए चेहरों को देखकर कोई भी सच्चे रूप का अनुमान नहीं लगा सकेगा, इसलिए साधक को पहला काम यही करना चाहिए कि निन्दा और प्रशंसा के जो लिबास हमें संसार ने पहनाये हैं, उन सब को उतार फेंके। इनको ओड़कर आप अपने सच्चे निज स्वरूप का बोध प्राप्त नहीं कर सकते। आप क्या हैं, लोग क्या समझते हैं, इन बातों को छोड़ दीजिए। यथार्थ दर्पण में अपने आप को झांक कर देखिए। बहुत तीखी रोशनी डालकर अपनी सूरत को पहचानिए। यहां पर हल्की रोशनी भी आपको धोखे में डाल देगी इसलिए सफेद रोशनी की सर्च लाइट में अपने आप को खड़ा कीजिए और उसके प्रकाश में सिर के बालों से लेकर ऐड़ी तक अपने मुख को देखिए। जैसे कोई सर्जन छुरी कांटों से आप्रेशन करता है, बहुत कांट-छांट करनी होगी तब कहीं जाकर असल बिमारी तक पहुंच पायेगें और विश्वास रखें जिस किसी ने भी आत्मबोध को प्राप्त कर लिया वह एकलव्य पद प्राप्त कर लेगा, उस मंजिल को पा लेगा जिस पर भगवान बुद्ध, आचार्य शंकर, हमारे पूर्वज ऋषियों का पूर्ण साम्राज्य था। नव-वर्ष नव-निरीक्षण की दावत देता है। यह एक चुनौती देने के लिए है, हमारी सोई हुए आत्मा को जगाने के लिए आया है। श्रुति कहती है जो सोये हुए हैं उनको तो जगाया जा सकता है लेकिन जो जागते हुए सो जायें, उनका क्या इलाज किया जाए। श्रीमद्भागवत में तो और भी तेज़ कटार के साथ साकत प्राणियों का निषेध करते हुए कहा गया है- 'जो मुंह से तो बातें बनाते हैं और जिन का मन हर प्रकार के पाप से अटा पड़ा है तो उनको तो कोई भी नहीं जगा सकेगा।' भगवान राम स्वंय यत्न करके भी रावण को इस अन्धकार से न निकाल सके और विवश होकर उन्हें तीरों की बौछार करनी पड़ी। दुर्योधन को समझाने-बुझाने के लिए, महाभारत को टालने के लिए परम जगदीश्वर ने कितना घोर परिश्रम किया लेकिन माया में इतनी ग्रसी (पीड़ित) हुई आत्मा को केवल युद्ध में संहार करने पर ही बचाया जा सकता था।

हम अगर अपना निरीक्षण नहीं करेंगे, आराम की इस बेला में हम अपने आप को सच्चाई की कसौटी पर बार-बार रगड़कर परख नहीं करेंगे तो भले ही कहने को गुरू धारण किया हो, भले ही हमने किसी महापुरुष से प्रभु का नाम जपने का महामंत्र ग्रहण किया हो, वो सब का सब निष्फल जाएगा, अगर मेरे कर्म मेरे सद्गुरूदेव के परम उद्देश्य की कसौटी पर पूरे नहीं उतरते। नाम लेने का मतलब मोक्ष की गारंटी हासिल करना नहीं, अपने आप को तप की जलती हुई भट्ठी में डाल कर शुद्ध और पवित्र बनाना होगा, विश्वास रखिए चरित्र निर्माण नहीं होगा तो मोक्ष पद भी प्राप्त नहीं हो सकता। ये आत्म निरीक्षण ही सबसे कठिन साधना-पथ है जिस पर अग्रसर

होने को हम तैयार नहीं होते। छलावे और बहकावे की बातों से दूसरों की नजरों से सच्चाई को छिपाया तो जा सकेगा लेकिन बहुत देर तक नहीं, झूठ और पाप का पर्दा एक दिन अवश्य उतरेगा और हम देखेंगे कि जिस झूठी दुनिया के हम स्वप्न देख रहे थे उनकी हकीकत एक कंगाल के सोचे हुए ख्याली धन से ज्यादा नहीं।

यदि साधना की इस राह को अपनायेंगे तो आप देखेंगे कि यह रास्ता किसी बहुत ऊंचे-टेढ़े, पथरीली चट्टानों से अटे पड़े पहाड़ को लांघने से कहीं अधिक कठिन है। पीछे मुड़कर न देखिए अपने दिनों और वर्षों की गणना न कीजिए, सामने नज़र रखकर अपने निशाने की तरफ देखिए कहां जाना था, कहां तक पहुंच पाए हैं और कितना सफर तय करना अभी बाकी है। उधर पश्चिम में सूर्य डूब रहा होगा तो उधर साधक की आंखो से आसूंओं की झड़ी लग जाती है। अपने पर धिक्कार करते हुए सोच आएगी और यह चिन्ता अपने को डस लेगी कि हम मंजिल से कितनी दूर खड़े हैं और वहां तक पहुंचने की कोई सूरत नज़र नहीं आ रही।

भगवान् बुद्ध के जीवन की आत्म-साक्षात्कार होने के बाद की घटना रोंगटे खड़े कर देने वाली है। प्रभु की प्राप्ति हो गई, हर प्रकार का द्वंद्वमिट गया, सत्य को साकार कर लिया लेकिन वो हैं कि बराबर चिन्ता में डूबे हुए रोते जा रहे हैं- क्या यही वो मंजिल है जिसके लिए इतनी दौड़-धूप की। मेरे इर्द-गिर्द सारा संसार दुखों भरे नर्क में पड़ा हुआ चीख रहा है, दुहाई दे देकर सहायता मांग रहा है और मैं संतुष्ट हो गया कि मुझे आत्म-साक्षात्कार हो गया है, मैंने आनन्द घन सच्चिदानन्द प्रभु के दर्शन पा लिए। भगवान बुद्ध कहते हैं- 'सत्य का विवेकशील जिज्ञासु इस मंजिल को पाकर अपने कदमों को रोकता नहीं।

जिस नर्क से छुटकारा पाने के लिए सारा जीवन बलिदान कर दिया, क्या कुछ उसके रास्ते पर न्यौछावर कर दिया। वो परमानन्द मिला भी मगर भगवान् बुद्ध ने ठुकरा दिया कि ये भी माया का एक जाल ही है। अपने ही मोक्ष से तृप्त हो जाना तो घोर स्वार्थ होगा। पहले छोटे सुखों के लिए बड़े सुख का त्याग किया और अब बड़े सुख का त्याग करके मैं आसमान को छूने वाली आग की लपटों में कूद पडूंगा, भले ही मुझे कितनी बार आवागमन का चक्कर काटना पड़े, फिर से जन्म-धारण करना पड़े, मैं इनकी सेवा के लिए अपनी परम आहुति दे दूंगा।
ये तो मंजिल पर पहुंच चुके वीर महापुरूषों की गाथा थी, हमें देखिए, अभी तक सच्चे मायनों में इस सफर को शुरू ही नहीं कर पाए। जब तक चेहरों पर पड़े हुए नकाब उतार कर अपनी असल तस्वीरें नहीं देखेगें, आगे कैसे चल सकेंगे?



अध्याय - 7

किन शब्दों में इस दिव्य जीवन की उपमा प्रशंसा की जाए जो अनन्त काल से अनन्त जीवनों को प्रकाश देता चला आ रहा है। भारत वर्ष के किसी भी महान् पुरूष की जीवन गाथा पढ़ने से पता चलता है कि युगप्रर्वत्तक दिव्य आत्माओं ने सोलह कला सम्पूर्ण भगवान श्री कृष्ण के जीवन से आकृष्ट होकर मथुरा-वृन्दावन, गोकुल और द्वारका की तीर्थ यात्रा की और बृज भूमि के कण-कण में भगवान मधुसूदन के दर्शन किए। आदिशंकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्या, निम्मा आचार्या, महाप्रभु चैतन्य, परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द भी कृष्ण भूमि की यात्रा के लिए आए और कृष्ण दर्शन करके कुछ इस तरह से प्रभावित हुए कि दीवानों और पागलों की तरह इस पावन भूमि के कण-कण से लिपट-लिपट कर तन्मयता (लगन) को प्राप्त कर गए। शताब्दियों से इस जीवन और इसके उपदेश ने असंख्य जीवनों पर अपनी छाप डाली है और डालती चली जाएगी।

भगवद गीता को सबसे ज्यादा पवित्र ग्रन्थ कहा गया है, इसे उपनिषद् कहा गया है और उसे वेदों, ब्रह्म ग्रन्थों और शास्त्रों का सार कहा गया है। एमर्सन, मैक्समूलर और मैटरनिक जैसे महान पश्चिमी दार्शनिकों ने गीता को मानवता की बाईबिल और विचार प्रतिभा को सम्राट शास्त्र कहा है। कहने को ये भगवान कृष्ण के उस अमर-उपदेश की कविता है जो उन्होंने कुरूक्षेत्र के रणक्षेत्र में अर्जुन को उस समय दिया था जब अर्जुन ने लड़ने से इंकार कर दिया था और कायरों की भांति हथियार डाल दिये थे। इस कारण गीता के पहले अध्याय को 'विषाद-योग' कहा गया है। विषाद और दुख से पीड़ित अर्जुन को संकट मोचन प्रभु ने जिस योग का उपदेश दिया, ये ऐसी सच्चाईयों और ऐसे अमूल्य सिद्धान्तों पर आधारित है कि हर विषाद और हर दुःख को हर लेता है। जीवन संग्राम में जब कोई असहाय तीव्र, मानसिक वेदना और विषाद से घबराहट महसूस करे कि इस संसार में वह अकेला है और चारों और घनघोर अंधेरा छा गया है सुझाई नहीं देता कि क्या किया जाए। निराशा के अंधकार में प्रकाश की एक मात्र किरण भी नज़र न आती हो, तब गीता ने उन गिरतों को संभाला, नये जीवन का संचार किया और प्रेरणा शक्ति से दुर्बल और शक्तिहीन जीवनों को इस कदर शक्ति दी कि वो गरजते तूफानों को चीर गए। आसमानों को छूने वाले पर्वतों तथा आग और खून की नदियों और समुद्रों को पार कर गए।

गीता के दूसरे अध्याय का नाम 'सांख्य योग' है। वो ज्ञान, वो शिक्षा जिस के फलस्वरूप जिज्ञासु हर प्रकार के मानसिक कष्ट, संकट, वेदना और कमज़ोरी से छुटकारा पा सकता है। यह उपदेश दूसरे अध्याय से शुरू होकर १८वें अध्याय के ६२वें श्लोक तक दिया गया है। ६३वें श्लोक में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मैंने तुझे अनेक दार्शनिक विचारों पर आधारित व्यवहारिक ज्ञान का उपदेश दे दिया है, अब तू खूब अच्छी तरह से सोच समझकर पूरी-पूरी स्वतन्त्रता के साथ जो तेरी इच्छा हो वैसा कर। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता का पाठ करने का नहीं पूरी आजादी के साथ काम करने का जीवन उपदेश दिया है। अपने इस उपदेश को भगवान

कृष्ण ने ट्वें अध्याय में परम गुह्य ज्ञान, राजविद्या और राजयोग का नाम दिया था। लेकिन आखिरी अध्याय के आखिरी श्लोकों में वे अर्जुन से कहते हैं कि अर्जुन अब तुम मेरा सबसे ज्यादा गुह्य, भेद-भरा अत्यंत प्यारा परम वचन सुन और वो परम उपदेश ये है कि अपना मन मेरे में लगा, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन कर, मुझे नमस्कार कर सब धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से, सब शोकों से मुक्त कर दूंगा।

शरणागति का ये उपदेश ही संसार के सब धर्मों का निचोड़ है लेकिन यह कहने को, देखने को जितना आसान और सरल लगता है, करने में उतना ही कठिन और मुश्किल है। शरणागति का उपदेश देने के तुरन्त बाद भगवान कृष्ण ने कह दिया कि चार विकारों वाले लोग इस परम ज्ञान और परम वचन को न ग्रहण कर सकते हैं न इस पर अमल कर सकते हैं। ये ४ विकार ये हैं-
१. जो लोग तपहीन हैं।
२. जो लोग भक्तिहीन हैं।
३. जो इस उपदेश को सुनने की इच्छा ही न रखते हों।
४. जो अध्यात्म से नफरत करता हो और मेरी निन्दा करता हो ।
दूसरे शब्दों में अध्यात्म विद्या को केवल वही सीख सकते हैं जो तप करने को तैयार हों, जो भक्ति में लीन होना चाहते हों, जो सच्ची जिज्ञासा रखते हों और सच्चाईयों को प्यार करते हुए उन्हें अपने जीवन में उतारने के लिए तैयार हों। गीता पाठ करने का ग्रन्थ नहीं जीवन निर्माण का अनन्त तप करने का उपदेश है। भगवान कृष्ण सब धर्मों को छोड़कर उनकी शरण में आने का उपदेश देते है। सब कर्मों और सब प्रकार के तप छोड देने को नहीं कहते। अतः भांति-भांति के ख्यालों और विचारों की उधेड़बुन से निकल कर, अक्ल की सब चालाकियों को छोड़कर सरलता व नम्रता के साथ शुद्ध मन से उनकी शरण ग्रहण करते हुए तप मार्ग को अपनाने का उपदेश है जिन्हें अपने ज्ञान, अक्ल, लियाकत, ताकत, सामर्थ्य और साधन पर भरोसा हो वो शरणागति को अपने जीवन की आधारशिला नहीं बना सकते। जिसे अपने साधन और शक्ति का भरोसा हो तो वो भला किसी की कृपा को क्यों चाहेगा। दूसरे सब भरोसे त्याग दे केवल एक भगवान का भरोसा धारणकर। अक्ल के हेर-फेर की बात नहीं ये सच्चे मन में एक भावना बिठाने की बात है। सब शर्तों को छोड़कर, सब कामनाओं को त्याग कर, शुद्ध मन से, सच्चे दिल से प्रभु कृपा पर भरोसा रखो और निश्चिन्त हो जाओ। उनकी कृपा पर भरोसा रखने से तीन बातें ज़रूर होती हैं- १. निडरता आती है। २. प्रभु की याद अटूट बन जाती है। ३. परम संतोष मिल जाता है। सन्तोष मिल जाने का अर्थ है जीवन में किसी कमी का, किसी अभाव का अहसास नहीं होता। सब कामनाएं, लालसाएं और आकांक्षाएं मिट जाती हैं। भगवान का कृपापात्र बनने के बाद साधक अपने आपको अनाथ, अभागा, दीन, हीन, मलिन और पतित महसूस नहीं करता। साधक का सारा धन, सारा तप इस बात पर लग जाता है कि मुझ में जो-जो बुराईयां हैं उन्हें दूर करूं। ऐसा तपस्याशील साधक ही प्रभु की अनन्त कृपा को पा सकता है। जो साधक ऐसे तप में युक्त हो जाता है, ऐसा राजयोग कमाने लग जाता है उसे इतनी फुरसत कहां कि दूसरों की बुराईयां देखे, दूसरों की निन्दा करे। जीवन संग्राम में बैठे हुए साधक को इतनी फुरसत ही कहां होती है कि ये देखे कि दूसरा कितना चला है, कैसा चला है, कहां पहुंचा है उसे तो चौबीसों घंटे, सोते-जागते, उठते-बैठते, हर समय हर पल यही धुन लगी रहती है कि मैं ज़रा गाफिल हो गया,

मेरे कदमों में ज़रा सी लड़खड़ाहट आ गई तो मीलों गहरी खड्डु में गिर जाऊंगा और मेरी हड्डी पसली टूट जाएगी। जितनी ज्यादा ऊंचाई पर साधक चढ़ता है उसकी उतनी दृष्टि आत्मनिरीक्षण पर आती है। गफलत और लड़खड़ाहट उसके लिए मौत का सन्देश रखती है।

भगवान कृष्ण का सारा उपदेश अगर दो शब्दों में दर्शाना हो तो उसे प्रभु परायणता और पुरूषार्थ कह लीजिए। सच्चा साधक वही है जो इन दोनों को अपने जीवन में धारण करे, उसे प्रभु परायणता पर विश्वास और एकान्तनिष्ठा हो और वो पुरूषार्थी और कर्मशील हो, साधना युक्त हो। ये वो दोनों स्तम्भ हैं जिन पर जीवन भवन का निर्माण किया जाना चाहिए। एक को धारण करने और दूसरे के छोड़ देने से कुछ नहीं बनता। लंगड़ी भक्ति से साधक अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकता है। सफलता और आत्म विजय का मोती एक ऐसे सीप में बंद पड़ा है जिसकी एक तरफ का नाम है-प्रभुपरायणता, शरणागति और दूसरी तरफ का नाम है- पुरूषार्थ। शरणागति कर्म छोड़ देने का नाम नहीं, कर्मशीलता का नाम है। मेरी शरण आओ, मेरे होकर काम करो, फल की चिन्ता त्याग कर, हर कामना को छोड़कर, गीता का ये उपदेश सिर्फ अर्जुन के लिए नहीं। जीवन के, कर्मक्षेत्र के हर एक जिज्ञासु और साधक के लिए जरूरी है। जो साधक और जिज्ञासु ये समझते हैं कि हमने समर्थ गुरू धारण कर लिया है अब कुछ करने कराने की आवश्यकता नहीं, वो तपहीन साधक है और भगवान कृष्ण के शब्दानुसार शरणागति को कलंकित करने वाले हैं। सच तो यह है कि जितनी अधिक प्रभु निष्ठा होगी, जितना ज्यादा प्रभु प्यार होगा, साधक का कार्य क्षेत्र भी उसी मात्रा में बढ़ता चला जायेगा। साधना में विशालता और दृढ़ता आने से सब हदें टूट जाती हैं। सब को चाहिए आत्मनिरीक्षण करें और देखें कि साधना कहीं लंगड़ी और कमज़ोर तो नहीं, प्रभु करे कि हम सब सच्चे शब्दों में शरणागत बन जायें और इसके साथ ही अनन्त पुरुषार्थ, परमार्थी और कर्मशील साधना युक्त बन जाएं।



अध्याय - 8

जो ब्रह्मज्ञानी जिन्होंनें वर्षों से अपने आपको सारे संसार से अलग-थलग करके गुरू-धाम, गुरू-गद्दी, शिष्य मंडली, मान-प्रतिष्ठा और सेवकाई छोड़कर खुद को एक कमरे में बंद करके अवधूत-अवस्था धारण कर चुके थे, इनका सितम्बर के महीने में जन्मदिन आता है। जीवन का रहस्य, जीवन विधान सीखने के लिए मैं एक दिन ध्यान-मुद्रा में इनके श्री चरणों में बैठ गया और इनसे पूछा- "गुरूदेव महाप्रभु श्री ठाकुर जी महाराज! आप बताएं कि आप का जीवन लक्ष्य क्या रहा है और आप संसार के कल्याणहित क्या उपदेश देना चाहते हैं।" लाल-बाग आज़ादपुर दिल्ली के निकट विराजमान इस दिव्य महापुरूष ने मुस्करा कर कहा-

"निष्काम सेवा ही मेरे लिए धर्म का, आध्यात्मिकता का वह सुनहरी असूल है जिसको मैं पवित्र समझता हूँ। मैंने नानक, कबीर, नामदेव, क्राईस्ट, कृष्ण और राम से यही सन्देश ग्रहण किया है कि सब से अधिक पवित्र और सुन्दर जीवन वही है जिसमें जो कुछ भी किया जाये भगवान के लिए भोग, प्रशाद और भेंट समझ कर ही किया जाए अर्थात् जीवन में जो कुछ किया जाए इसका लक्ष्य न यह संसार होना चाहिए और न ही इस संसार के मनुष्य होने चाहिए बल्कि सामने भगवान होना चाहिए और भगवान के सिवाय हमारे सामने और कुछ न हो। जो कुछ करें इनके लिए करें, इनके सम्मान के लिए करें, इन्हें प्रसन्न करने के लिए करें, इनको रिझाने के लिए करें।

जिन महापुरूषों ने भारत की संस्कृति को संवारा है, इनसे मैंने केवल यह शिक्षा ग्रहण की है कि धर्म आध्यात्मिकता की, किसी भक्ति, किसी रस्म और रीति या किसी पाठ और किसी शास्त्र के पढ़ने का नाम नहीं। इन महापुरूषों ने कहा है कि यह सब बाते तो धर्म सिखाने के लिए है, अधर्म नहीं। धर्म है सारा जीवन, धर्म है सारे जीवन का बलिदान, सारे जीवन का तप, सारे जीवन का त्याग, सारे जीवन को जीवन यज्ञ में आहुति बनकर देने का। धर्म का अर्थ यह नहीं कि हम सुबह मन्दिर जाएं, मस्जिद जाएं, गिरजाघर जाएं। वहां कोई एक आध अच्छी बात सुनकर घर वापिस आ जाएं और भूल जांए कि हमने क्या सीखा था। जो सीखा था उस पर अमल भी किया या नहीं। धर्म का अर्थ है कि हम जो कुछ करें, जहां भी करें- खेतों में काम करें या खड्डी पर, या किसी मशीन पर काम करें, किसी फैक्टरी में काम करें या स्कूल में या दफ्तर में काम करें या किसी दुकान पर, हम जहां भी काम करें, जिस जगह करें, वो जगह हमारे लिए मन्दिर हो, गिरजाघर हो, मस्जिद हो और जो कुछ हम इस जगह पर करें, जो उत्तरदायित्व हमारे को सौंपें जाएं हम इन्हें प्रभु को प्रसन्न करने के लिए, सामग्री मानकर, घी और समिधा जानकार, इस जीवन यज्ञ की सम्पूर्ति के लिए करें। हमारा हर कर्म, हर खूबी, हर हरकत इस मन्दिर में, इस इबादतगाह में नज़राना मुहब्बत (प्रेम भेंट) हो, साधना की भेंट हो। ऐसे अनोखे मन्दिर में हम स्वंय ही पुजारी होंगे, हम स्वंय ही मौलवी और पंडित होंगे, हम स्वंय ही पादरी होंगे, स्वंय ही पुरोहित होंगें। हमारे सारे कर्म, सारे बोल समिधाएं होंगी, आहुतियां होगीं- निष्काम यज्ञ प्रेम की आहुतियां, श्रद्धा की समिधाएं ।

यही नहीं जीवन धर्म के अनुसार जो कुछ मैने प्राचीन ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों दिव्य आत्माओं से सीखा है, वो तो इससे कुछ आगे है। मैंने इससे सीखा है कि मेरा अपना जीवन भी एक आहुति है- प्रेम की आहुति। अनंतकाल से मेरी आत्मा जिस यज्ञ सम्पूर्ति के लिए हर यत्न कर रही है और सम्पूर्ति मेरे अपने कर्म से, आंख चुराने से, कुरबानी से ग्रेज़ करने से नहीं और भी पीछे पड़ जाएगी। इस सम्पूर्ति को मैं अपने जीवन में समीप से समीप लाऊंगा। यत्न करूंगा मेरा सारा जीवन एक अखण्ड प्रकाश बन जाए, जलती हुई सदा प्रज्वलित रहने वाली ज्वाला बन जाए।

मैं स्वंय ही यज्ञ करने वाला हूँ, स्वंय ही इस यज्ञ की समिधा हूं। मेरा सारा परम-धर्म इस आहुति के साथ पढ़े जाने वाला मंत्र है। आहुति और कुर्बानी के इस काम में प्रभु से यही वरदान मांगता हूं कि कहीं दिखावा न हो, कहीं आडम्बर न हो, कहीं किसी मानव की प्रसन्नता न हो, दिल के किसी कोने में किसी मनुष्य या किसी पुरूष की नहीं बल्कि भगवान की प्रार्थना ही मेरा जीवन लक्ष्य हो। मेरा यह सारा जीवन मन्त्र, सारा जीवन समिधा, सारा जीवन एक आहुति बलिदान और त्याग का । हो

मेरे इस जीवन पर किन-किन महापुरूषों की छाप लगी कह नहीं सकता। इन की गिनती नहीं कर सकता। मैं तो सच्ची बात कहूंगा और सच्ची बात तो यह है कि इन के नाम मैं गिनना चाहूं तो गिन नहीं सकूंगा। इन सबकी गिनती करना चाहूंगा तो कर नहीं पाऊंगा। वो अनगिनत हैं, अनन्त हैं, हर देश के लिए हैं, हर काल में हैं। सब महापुरूषों की शिक्षा और विद्या ने मेरे दिल को संवारा है और मैं इनका एक अनन्त भण्डार रहा हूं। इन की रोशनी (प्रकाश) सदियों से जल रही है और हमारे जीवन को अपने सांचे में ढालने की प्रेरणा दे रही है। यह महापुरूष, यह दिव्य आत्माएं प्रज्ञा ज्योति के भण्डार, रोशनी के चिराग, रोशनी के दीये, रोशनी की शमा जिनकी रोशनी आज भी हमारे कदमों को अन्धकार भरी राहों को छोड़कर उजालों की तरफ ला रही है, हमें रोशनी की तरफ बुला रही है। उन की यह रोशनी सब के लिए है सब धर्मों के लिए है, सब सम्प्रदायों के लिए है, मनुष्य मात्र के लिए है। यह रोशनी अक्ल की रोशनी नहीं, इस रोशनी को उन्होंने अपना जीवन त्याग करके, अपना बलिदान देकर स्वंय यज्ञ बनकर और समिधा बनकर स्वंय आहुति डालकर, स्वंय जिन्दा मिसाल बन कर हमें बताया कि अच्छा जीवन बनाना कहीं महान है। इनकी रोशनी केवल खाली ज्ञान नहीं, केवल ढोल की तरह शोर करने वाला धर्म नहीं है। इनकी रोशनी जीवन आहुति की उपलब्धि है जीवन बलिदान का फल है। इनकी फिलास्फी की रोशनी इनके जीवन को प्रकाशमान कर गई थी और आज भी हमें प्रकाशमान कर रही है। यह रोशनी भक्ति की थी- निष्काम भक्ति की, अखण्ड-यज्ञ अग्नि की। इन महापुरूषों ने अखण्ड ज्योतियों से क्या शिक्षा ली है। यही कि अपने आपको उस प्रभु के अर्पण कर दो, आत्मसर्मपण कर दो, अपने आप को जीवन यज्ञ बना डालो, घी और सामग्री न डालो, जीवन यज्ञ हमसे हमारी अपनी कुर्बानी मांगता है। सब कुछ तेरा है, तेरे ही अर्पण कर देना है। अपनी इच्छाओं, अपनी आरज़ुओं, अपनी तमन्नाओं, अपनी आशाओं, अपनी कमियों के साथ बस अपना आत्मसर्मपण कर देना ही सच्ची भक्ति है। आत्मसर्मपण सदा श्रेय नहीं रखता। जीवन को पाना चाहते हो तो जीवन को गवां दो, जीवन की आहुति दे दो।

हुक्म (आज्ञा) और रज़ा में चलना और सच्चे दिल से प्रत्येक की भलाई करने के लिए तत्पर रहना- जब हम ऐसा जीवन गुज़ारना सीख लेंगे, तब हम महसूस करेंगे कि जितने महापुरूष संसार भर के हो चुके हैं, जो अब भी हैं और होने वाले हैं, यह सब हमारे साथ हैं। इनकी रोशनी (प्रकाश) हमारी राहों को उजागर रख रही है। रोशनी की बारात है जिस में हमने जीवन व्यतीत करना है। अनुभव होना आरम्भ हो जाएगा कि कोई हमारे साथ है। हम किसी के साथ हैं, किसी ने हमारी उंगली पकड़ी हुई है। आत्माओं की डोर में बन्धे हुए हम धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए इस अमर जीवन की तरफ चल रहे हैं जो जीवन उन्होंने जीते-जी पा लिया था, तब अनुभव होना आरम्भ हो जाएगा कि इनकी दिव्य आवाज़ हमारे साथ है।

समझ जाना चाहते हो तो कुछ देना होगा, पर निर्वाण चाहते हो, सदा रहने वाला जीवन चाहते हो तो इस जीवन का त्याग कर दो। यही शिक्षा हमने दिव्य ज्योतियों से पाई है, यही शिक्षा आप ग्रहण करें।



अध्याय - 9

गुरू पूर्णिमा क्या आई है, आँखों में बरसात आ गई है। आंसू हैं कि रहबर, मुर्शिद-ए-कामिल, और पत्थर दिल इन्सान के लिबास में छिपे हुए 'कीट तथा पतंग' को नया जीवन देने वाले महापुरूष, सत्य पुरूष, दिव्य पुरूष के चरणों पर आंखों से बरबस बहते हुए अपने आप गिरते जा रहे हैं। हज़ार जान से उसके कुर्बान! करोड़ो बार अपना आप उस पर न्यौछावर! जिसने वह प्यार दिया जो हज़ारों जन्मों से कोई मां-बाप भी न दे सके थे। माता पिता मोह-ममता तो दे सकते हैं लेकिन रहमतों का खज़ाना वही लुटा सकता है, जिस शहनशाहे दिलो जान के पास रहमतों का खज़ाना हो, बेहिसाब, अनन्त, असीम, कृपा का भण्डार और दया का सागर हो।

गुरू पूर्णिमा को सर्व साधारणतः इसी तरह हम मनाते हैं कि नहा-धोकर, सजधज कर कुछ फल-मिठाई, रूपये और फूलों के हार लेकर श्री गुरूदेव के चरणों में पहुंच कर यह सब उपहार उनको अर्पित कर देते हैं। फिर मुजस्सम शफ़क्त और रहमत भरे मधुर होठों से आशीर्वाद का एक-आध शब्द सुनकर वापिस चले आते हैं। बस समझ लिया कि व्यास-पूजा हो गई। यह रस्मे अकीदत इसी तरह चलती है। गुरूदेव के संबंध में सिर अकीदत से झुकना चाहिए। उस मुकद्दस अहदे अकीदत को फिर ताज़ा दम करना चाहिए। बस इस कर्त्तव्य-निष्ठा से बंधे हुए कदम गुरूदेव के चरणों में पहुंचे और श्रद्धा के तौर पर कुछ भेंट किया तथा फिर इससे ही सन्तुष्ट हो गये कि हमारा कर्तव्य पूरा हो गया। एक रूहानी फर्ज जो दूसरे कर्त्तव्यों की तरह एक फर्ज़-ए-मुकद्दस है और इस कर्त्तव्य से कोताही रूहानी सिद्धांतों के विरुद्ध होगी, इसलिए हम पीरो-मुर्शिद और गुरुदेव के चरणों में यह फर्ज़ पूरा करने में गलती नहीं करते।

यह भेद तो इतने वर्षों के बाद जाकर धीरे-धीरे दिल पर खुला है कि व्यास-पूजा और गुरु-पूर्णिमा पर गुरुदेव के चरणों पर आकर नमस्कार-प्रणाम करके प्यार-भरा आशीर्वाद पाना ही फर्ज़ नहीं है, बल्कि ये हमारे ईमान और धर्म का छोटा सा हिस्सा है। फर्ज़ कितना भी बड़ा और महत्वपूर्ण क्यों न हो, ईमान नहीं होता। कर्त्तव्य बदल सकता है, उनके पालन करने की रस्में बदल सकती हैं लेकिन ईमान-धर्म तो रूह की रूह है, जिन्दगी की जिन्दगी है। इसमें न कोई परिवर्तन हो सकता है, न इस को पूरा करने की रस्म बदल सकती है और न ही स्थान बदल सकता है। कर्त्तव्य, कर्त्तव्य होता है, उसका सम्बन्ध दिल से नहीं होता उसका नाता शरीर और बाहर से होता है। जबकि ईमान का सबन्ध रूह से होता है दिल से होता है, अन्दर से होता हैं। जब तक गुरुदेव को पंच भौतिक देहधारी मनुष्य जाना, उनकी अज़मतें, उनके गुणों, उनकी करामातों और रहमतों को स्वीकार करते हुए सच्चे दिल से मानते हैं कि वे साधरण इंसान नहीं हैं, किन्तु जब गुरुदेव की कृपा से ज्ञान उदय होता है और जन्म-जन्मान्तरों से सोई हुई आत्मा को किसी ने झंझोड़ा तब एहसास के पदों पर हरकत हुई और चौंका देने वाले इस ख्याल ने अंगड़ाई ली कि इस कदर अज़मत देने के बाद भी निगाह-ए-अकीदत ने उनको एक इन्सान ही जाना, कुछ और नहीं।

सुना था कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने महर्षि बाल्मीकि के मुहँ से कहलवाया था कि हे राम !

तुम ते अधिक गुरहि जीय जानी।

सकल भायं सेवहिं सनमानी ।।

अर्थात् राम और कृष्ण को साक्षात ईश्वर जानता हुआ भी मैं उनसे बढ़कर अपने गुरूदेव की पूजा-अर्चना करता हूँ। वह चौपाई अनेक बार पढ़ी थी, सौ बार सुनी थी किन्तु इस भाव को अपनी निष्ठा का अंग न बना पाये और इस ऋषि वचन को अपना विश्वासपात्र न बना सके। जिन्होंने गुरूदेव को शरीरधारी मनुष्य न जाना, साक्षात् नारायण समझा, उनकी गुरू भक्ति की हद तो देखिए वे कहते थे कि "परमेश्वर रूठ जाये तो गुरू की छत्र छाया में विश्राम और आश्रय मिल सकता है, पर यदि गुरूदेव रूठ गये तो संसार भर में कोई भी जगह नहीं जहां विश्राम और आश्रय प्राप्त किया जा सके।" किन्तु अज्ञानता का मारा हुआ मन इस कथन की परम सत्यता को न समझ सका। गुरूदे व क्या हैं? गुरू न तो शरीर है, न पंच भौतिक नर देह। वे तो शुद्ध सत् चित्त आनन्द स्वरूप आत्मा हैं। गुरू अविनाशी ब्रह्मतत्व है। निर्गुण, अखिल ब्रह्माण्ड नायक स्वंय ही परम गुरू हैं और वही गुरू तत्व है। शरीरधारी गुरू के माध्यम से जन-कल्याणार्थ अपनी प्रक्रिया संचालित करता है। आवागमन से छुटकारा पाने के लिए, इस भव सागर से पार उत्तरने के लिए त्रस्त मानव को करूणा मूर्ति गुरूदेव की आवश्यकता पड़ती है। गुरू की खोज होती है। गुरू नर तन में साक्षात नारायण है। साधक की स्थिति और प्रकृति के अनुसार उसे विभिन्न स्थिति के गुरू की प्राप्ति होती है। तैत्तिरयापनिष्ट् के कथनानुसार अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय, विज्ञानमय, आनन्दमय स्थितियों की अनुभूतियां प्राप्त होती हैं और फिर कहीं जाकर साधक को यह जानकर आश्चर्य होता है कि जिसको मनुष्य जाना, देहधारी माना जिसकी नर लीला देखकर भ्रम में फसें रहे, यह तो स्वंय नारायण हरि ही थे। दिव्य नेत्र पाकर अर्जुन ने जब भगवान श्री कृष्ण के विराट रूप में दर्शन किये तो ज़ारो-ज़ार रोने लगा। ज़रा सोचिए तो अर्जुन की दशा, उसको आश्चर्य भी था, नदामत (पश्चाताप) भी थी। उसके आंसुओं में दोनों एहसास घुले हुए थे। हैरानी इस बात पर कि जिस को भाई बन्धु, हितैषी और संगी सखा समझा वे अक्षर पुरूष ब्रहम परमेश्वर निकले। नदामत इस बात की कि अज्ञानता में फंसा उन्हें इन्सान समझकर उनको यथोचित आदर-सम्मान न दे सका ।

जिसने गुरूतत्व को पहचान लिया, उसने सहसा यह कहा :-

गुरुब्रह्माः गुरू विष्णुः गुरूदेंव महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परब्रह्मः तस्मैः श्री गुरवे नमः ।।

किन्तु हर रोज़ गुरूवन्दना के इस महान श्लोक को सुनते हुए भी भ्रांति में जकड़ा हुआ मन वास्तविकता और हकीकत से परिचित नहीं हो पाता। उसका कारण यह है कि कहने को साधना पथ पर चलते हुए भी हम उस

परम सिद्धांत और पहली जरूरत को पूरा नहीं कर पाते कि साधना के मार्ग पर तर्क, दम्म, ईर्ष्या-घृणा और लोभ को नहीं छोड़ पाते और भूल गये कि जब गुरूमंत्र लेकर अपने विकारों और विषयों के विरूद्ध रणभूमि में निकले हैं, जब हमने दुश्मन को ललकारा है तो शत्रु भी प्रतिशोध की आग से जल-भुनकर कहीं अधिक शक्ति के साथ हम पर आक्रमण करेगा। परमहंस रामकृष्ण कहा करते थे कि जिसने सच्चे मन से गुरूदेव को साक्षात ब्रह्म जानकर उसके कथनानुसार अपने जीवन विधान को बदल लिया, उसने सबसे बड़ा तप किया। उसने सबसे बड़ा योग कमा लिया। एकनिष्ठ होकर गुरू की आज्ञा पालन शिष्य का कल्याण और परमहित है। कितनी बड़ी सच्चाई इस श्लोक में कही गई है:-

ध्यान मूलं गुरू मूर्ति पूजा मूलं गुरू पदं ।
मंत्र मूलं गुरू वाक्य मोक्ष मूलं गुरू कृपा ।।

शिष्य वही जो भक्ति, निष्ठा, सेवा और लगन का ही व्रत धारण करके निष्कपट भाव से गुरू के चरणों की सेवा और उनकी आज्ञा पालन करता है। शिष्य वही है जो अपनी साधना, निष्ठा, लगन, त्याग और वैराग्य से अपनी राह के सब कील-कांटे झाड़ कर साफ कर देता है।

ज्यूं-ज्यूं गुरू भक्ति के मार्ग पर कदम बढ़ाईए त्यों-त्यों अपनी ही कमज़ोरियां, कमियां, त्रुटियां, बुराईयां साफ-साफ नज़र आने लगीं और ज्यों-ज्यों इन बुराईयों की स्याही उतरती चली गई, अन्दर से गुरूदेव के साक्षात दर्शन होने लगे। सच्ची गुरू पूजा यही है कि हम अपने मन के सभी विकारों और विचारों की आहुति देकर समर्पण भाव सहित अपने गुरूदेव के चरणों में लिपट जायें। पर यह साधना होगी मन मन्दिर में, तन्हाई में, खामोशी में, आहो-जारी में।

यही कारण है कि गुरू पूर्णिमा क्या आई, आंखों में बरसात आ गई है।



अध्याय - 10

प्रभु चिन्तन में जीवन व्यतीत करने वाले अनामी बाबा के पास मुझे एक बार पन्द्रह दिन गुज़ारने का शुभ अवसर मिला। बाबा ने जो प्यार मुझे दिया, मैं कह नहीं सकता। उन्होंने इस प्रकार मुझ पर प्यार और रहमत न्यौछावर की जिस तरह दूध पीते बच्चे पर मां करती है। उन्होंने अपनी कृपा से मेरा दामन भर दिया। उन्होंने मुझे बताया कि उस प्रभु को पाने का सच्चा साधन और अच्छा संयम यह है कि खामोश होकर, दिल को सारी दुनिया से हटाकर हृदय की गहराईयों में उतर जाओ और नाम रूप जात-पात से परे जो ईश्वर है, अनादि है, अमर है, अजर है, अविनाशी है, उस में खो जाओ, उसमें लीन हो जाओ। जो काल और अस्थान दोनों की हर बन्दिश से परे और बे-न्याज़ है, जो अकाल है, अजन्मा है, अनादि है, नित्य है, सच्चिदानन्द है, इसमें लीन होने से तुम भी काल के फंदे से निकल अकाल बन जाओगे, जो मृत्यु और जीवन दोनों का स्वामी है, उसमें लवलीन होने से तुम भी अजन्मा बन जाओगे और आवागमन के चक्कर से छूट जाओगे और जहां तक आत्मा का संबंध है, वो अनादि है, नित्य है, आनन्द रूप है परन्तु चूंकि भ्रम से तुम अपने असल स्वरूप को भी भूलकर अपने आपको जिस्म और शरीर बना बैठे हो इसलिए तुम भी आनन्दधन, सच्चिदानन्द बन जाओगे। बाबा प्रत्येक को यही उपदेश देते थे कि नाम-सिमरण करो, नाम जपो। पूछा गया कौन सा नाम लें। कहने लगे - कोई भी नाम लो, जो अच्छा लगे, जिसमें मन ठहरे। तुम्हारा विश्वास, मन्त्र जप गोया इस विश्वास को सींचने के बराबर है और फिर उसका कोई नाम नहीं। सब नाम उसके हैं जिस नाम से लोग उसको ही तो याद करते हैं। याद में सब शक्ति है, रहमत है और बरकत है। नाम और नामी दोनो अभेद है। जहां भी, जैसे भी किसी भी नाम से उनको याद करो, वे वहीं विराजमान और निवास रखते हैं। उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय उस प्रभु को याद करो। उनका ध्यान करो। यही सब धर्मों का निचोड़ है। यही सत-शास्त्रों का रहस्य है। इसके भेद को जानने का यही एक भेद है।
उस अनामी को पुकारने की यही एक विधि है। उससे बढ़कर दूसरी भक्ति अच्छी नहीं और फिर वो दिन आ गया जब मुझे उनसे विदा होना था। मैंने झुककर उनके श्री चरणों को पकड़ लिया। आंसुओं की एक न टूटने वाली धारा मेरी आंखो से बहने लगी और इनके श्री चरणों को धोने लगी। रोते-रोते मेरी सिसकी बन्ध गई। मैंने उखड़े उखड़े से शब्दों के साथ कहा कि मैं बेहद मायूस हूं समय आ गया है कि मैं आपसे विदा लूं, आपसे रूख्सत मांगू । १५ दिन आपके ज़ेरे-साया रहा हूं। आपकी दिव्य रोशनी और प्रकाश में यह समय किस कदर सुहाना गुज़रा, किस कदर आनन्द से गुज़रा मैं कह नहीं सकता। जाते समय मुझे ऐसी कोई शिक्षा अवश्य दें जिसको मैं अपने हृदय मन्दिर में धारण कर लूं, जिससे मेरे मनको जब भी अंधेरे का रूख लगे मैं उस उपदेश रूपी प्रकाश और आनन्द में आ सकूं। मैं उस दुःख भरे संसार से सुख और आनन्द को लौट सकूं।

बाबा ने हंसते हुए कहा- बिछड़ने का गम तो मुझे भी है लेकिन हम बिछड़ कहां रहें हैं। शरीर ही दूर जाएगा, मन से तो सदा मेरे पास रहेगा। मैं मन से सदा तुम्हारे पास रहूंगा। फासला धरती का है, तन का है, मन का नहीं है। मैं तुम्हें पांच उपदेश देना चाहूंगा जिनके अनुरूप आपका हर रोज़ का जीवन होना चाहिए। इस उपदेश

के अनुरूप जीवन व्यतीत करोगे तो आपके अन्दर प्रभु का मधुर संगीत सुनाई देने लगेगा और उस प्रेम-प्यार के तुम्हें दर्शन होने शुरू हो जाएंगे।

(1) सदा याद रखो कि सब इस धरती पर एक यात्री की तरह आए हैं, एक ऐसे यात्री की तरह जो अपनी मंजिल से बिछुड़ चुका हो, जो खोई हुई मंजिल को फिर से तलाश कर रहा हो। यह जीवन उस मंजिल की खोज और जुस्तजू (लग्न) में लग जाना चाहिए। जितने दिन यहां रहना हो उस मंजिल की तलाश में रहना चाहिए। यात्री का इस सराय में दिल नहीं लगता। इसका दिल प्रभु चरणों में लीन होता है। संसार के इस नश्वर सुख और नाशवान सुख के पीछे न पड़ना। इस संसार के भोगों का आनन्द नश्वर हो जाने वाला है। प्रभु करे आपका मन इस सदा रहने वाले अविनाशी सुख में लीन रहे।

(२) संसार के दुःख-सुख, हर्ष और सोग में, लाभ और हानि में दोनों में अपने मन को स्थिर रखो। शान्ति में रखो और विश्वास करो कि यह दुःख और सुख रहने वाला नहीं, मिट जाने वाला है। यहां का मज़ा झूठा, यहां का आनन्द नाश होने वाला है। दुःख और सुख में सदा याद रखो कि यह सब रंग हैं जो उड़ जाने वाले हैं, मिट जाने वाले हैं, इनमें कुछ भी सदा स्थिर रहने वाला नहीं, नाशवान है। इस प्रकार सोचते हुए हर बात पर भगवान का धन्यवाद करो, ईश्वर का शुक्रिया अदा करो।

(३) हर रोज़ मौत को याद रखो। संसार को दो चीज़े सदा याद रहनी चाहिए - कि ईश्वर सदा अविनाशी है। जीवन का प्रत्येक पल मौत को करीब लाता है। जो लोग मौत को याद रखते हैं वे लड़ाई, नफरत, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष अपने दिल में नहीं पालते । जीओ तो इस तरह कि आज जीवन का अन्तिम दिन है, ईबादत और मनन में ही नहीं, जीवन के प्रत्येक काम को इस तरह निपटा लो कि इस का बोझ कल तक के लिए शेष न रहे।

(४) सब की सेवा करो। सब के काम आओ। विशेष कर बीमारों, कोढ़ियों, अपाहिजों, अन्धों, लूले, लंगड़ों, अनाथों, विधवाओं की सेवा करो और इनके साथ गुनाहगारों, खराब और बुरे मनुष्यों की भी सेवा करो, कौन जाने किस घड़ी किस का कल्याण हो जाए। यह सब लोग इस पारब्रह्म परमेश्वर की ही बनाई हुई मूर्तियां हैं फिर उनकी सेवा करने में संकोच क्यों किया जाए।

(५) सदा सद्पुरूषों, महापुरूषों, सन्तों, साधुओं, फकीरों और दरवेशों की सेवा में रहो, उनकी सेवा करो आपको जीवन के वो भेद बताएंगे जो आपको जानने चाहिए। वे आपको आत्मविश्वास और छोटी-मोटी बातों से ऊपर उठने का उपदेश देंगे। अविनाशी और अनादि जीवन केवल उनको मिलता है जो "मैं" और "मेरी" के तंग संसार से बाहर निकल कर सबके हित और कल्याण की भावना रखकर सबकी सेवा पूजा करते हैं। मैंने उनके चरणों को छुआ और अलविदा कही। उनका उपदेश आज भी मेरे जीवन का उजाला और सरमाया है। वे १५ दिन जो इनके चरणों में गुज़ारने का अवसर मिला वे मेरे जीवन के सबसे अधिक मुबारिक दिन थे। उनकी बातें आज भी रह रह कर याद आती हैं। उनकी कुछ बातें इस तरह की थी।

(१) उस ईश्वर को पाने की इच्छा में जीना इससे बढ़कर कोई भी चीज़ मूल्यवान नहीं।

(२) मन्दिरों में सोने चांदी की बनी मूर्तियों से भगवान नहीं मिलेगा। भगवान मिलेगा- गरीबों, अनाथों और सर्दी में ठिठुरे बे-ईलाज मोहताज़ों में।

(३) ईश्वर प्राप्ति के लिए यत्न करने से पहले अपने मन के विकार और अहंकार को मिटा लो।

(४) स्वंय ऊंचा उठना चाहते हो तो दूसरों को ऊंचा उठाना शुरू कर दो।

(५) दौलत के अम्बारों में सुख की तलाश करने वाले कहीं अपने दिल की दौलत से परिचित हो जाएं तो इस संसार के लिए पागल नहीं बनेंगे।

(६) आज एक की, कल दूसरे की खुशामद करके सुख ढूंढने से कहीं अच्छा है कि एक सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान ईश्वर की सेवा की जाए।

(७) संगमरमर की दीवारें चिनने वालो अपने हृदय सिहासन पर ईश्वर को बैठाओ।

(८) सबसे बड़ी दौलत ईमान है, श्रद्धा है, निष्ठा है।

❀❀ ❀❀ ❀❀ ❀❀

अध्याय - 11

द्वैत-भाव से ऊपर उठकर देखें तो यह बात साफ हो जाती है कि यशु मसीह का निज जीवन और उनका अमर उपदेश उन्हीं मूल्यों का बे-शुमार (अत्यधिक) खज़ाना है जो हिन्दू सस्कृति के प्राण आधार हैं। इनका जीवन आदर्श किसी भी महान हिन्दू ऋषि, परमहंस या महापुरूष से कम नहीं है। सच्चिदानन्द प्रभु के इस अनन्य भक्त ने ईश्वर प्राप्ति का सरल और सही मार्ग उपनिषदों, ब्रह्म सूत्रों के उस भेद को ही बताया है कि नाम जपो, आत्मसमर्पण करो और दीन दुखी और असहाय पीड़ितों, बिमारों और कोढ़ियों की सेवा करो। यही उपदेश भगवान राम ने दिया। इसी उपदेश की ध्वजा भगवान श्री कृष्ण ने संसार में फिराई। जो कुछ करो ईश्वर के लिए करो, फल की इच्छा छोड़कर निष्काम भावना से करो। इन्होंने न केवल इस उपदेश को विश्व के सामने रखा बल्कि इसको अपने जीवन की आहुति देकर निभाया। जिस संसार को तबाही से बचाने के लिए उन्होंने अपने जीवन की आहुति दे दी, उस संसार ने कभी इनकी चरण धूलि माथे पर न लगाई और एहसान फरामोशी की इन्तहा करते हुए मांग की कि इन्हें फांसी पर लटका दिया जाए। सूली पर इन्हें कील गाड़कर बांध दिया गया और इन्हें हत्यारों और बदमाशों जैसी मौत मारा गया लेकिन इन का यह खून विफल नहीं गया। इस खून से धरती की काया पलट गई। आज विश्व भर में इसाई धर्म सबसे बड़ा धर्म है। संसार भर की सब भाषाओं और सब देशों में इनका उपदेश फैल चुका है और ईश्वर प्रेमी मनुष्य इन्हें आज भी मुक्ति दायक समझते हैं।

भारत और यूनान से आए हुए दार्शनिकों और फिलासफरों, विद्वानों और ज्योतिषियों ने स्वंय वहां के अभिमानी राजा को बताया कि एक बच्चे का जन्म यरूशिलम के समीप बैथिलियम में होने वाला है जिससे इसके राज्य को खतरा है। राजा ने आदेश दिया कि इन नगरों में दो वर्ष से कम आयु के सब नर बच्चों को मौत के घाट उतार दिया जाए लेकिन यशु मसीह के माता-पिता को आकाशवाणी हुई कि बच्चे का जीवन खतरे में है, इसे कहीं बाहर ले जाओ। जन्म के साथ ही संसार की बेवफाई और देश निकाला देखना पड़ा। गरीब मां-बाप का यह बच्चा मां-बाप के साथ भेड़-बकरियां चराता । कुएं से पानी भरता। सूखी टहनियों और जंगली लकड़ियों का ईंधन लाता और रूखी-सूखी खाकर भी खुश रहता। इसके मां-बाप मिस्र चले गये थे लेकिन प्रत्येक वर्ष यह भंडारे पर यरूशिलम आता तो मां-बाप को बिना बताए ही पंडितों और पुरोहितों के साथ विचार-विमर्श करते देखा जाता।

इनके जीवन के अगले अठारह वर्ष उन्होंने कहां बिताए और कैसे बिताए यह किसी की पता नही। ऐतिहासिक तत्वों से पता चलता है कि बारह-तेरह वर्ष की आयु में हज़रत यशु मसीह भारत आ गए और बौद्ध वैदिक ऋषियों के सम्पर्क में रहे और ब्रह्म विद्या सीखते रहे। इतिहास इनको तीस वर्ष की आयु में फिर से अपने देश में दिखाता है, जहां एक महान संत जॉन लोगों को सदाचार और सत्य धर्म का उपदेश देते थे। यशु मसीह ने इनसे गुरू-मंत्र लिया और फिर रात-दिन एकान्त में, गुफाओं में छुपकर भजन अभ्यास करते रहते। एक बार मरूस्थल में जहां भयानक जानवर घूमते रहते थे, यशु मसीह ने लगातार चालीस दिनों तक एक ही आसन पर

बैठकर कठोर तप किया। यहां इन्हें वही अनुभव हुआ जो भगवान बुद्ध को बौद्ध गया में बौद्ध वृक्ष के नीचे कठोर तप करते समय हुआ था। इन्हें पहले ही डराने का प्रयत्न किया गया, फिर तरह-तरह के लालच देकर, संसारी सुख देकर और फिर ऋद्धियों-सिद्धियों का लालच दिया गया लेकिन प्रभु-प्रेमी इन झांसों में न आया। इस पर इन्हें ईश्वर दर्शन हुए। अपने निज अनुभव को संसार के तप के लिए, जन कल्याण के लिए, बांटने के लिए इन्होंने लोगों को ईश्वर उपदेश देना शुरू कर दिया। इनका पहला उपदेश ही मन्दिर के पुजारियों और मसजिदारों से निराला था। इन्होंने कहा- "वो धन्य है जो मन के अधीन नहीं। उन्हें स्वर्ग धाम मिलेगा। वो धन्य है जो सरल सहन शीतल हैं। उन्हें धरती का राज्य मिलेगा। वो धन्य है जो पवित्रता के लिए भूखे और प्यासे की तरह बिलखते हैं, उन्हें मुहं मांगा सुख आनन्द मिलेगा। वो धन्य है जो दयालु है, उन्हें भरपूर करूणा मिलेगी। वो धन्य है जो शान्त हैं, उन्हें परिवार की सन्तान माना जाएगा। वो धन्य है जो मन से पवित्र है, उन्हें ईश्वर दर्शन होंगे। वो धन्य हैं जो सत्य के लिए दुख झेलते हैं, स्वर्ग उन्हें मिलेगा। वो धन्य हैं जिनको मेरे लिए लोग बदनाम करते हैं, बेइज़्ज़त करते हैं, झूठे इल्ज़ाम लगाते हैं, जी भर कर प्रसन्न हो जाओ क्योंकि स्वर्ग में आप सब को भारी इनाम व सिला मिलने वाला है।

यशु मसीह का उपदेश क्रान्तिकारी था। मन्दिरों में ग्रन्थ पढ़ने वाले और बेजान आरती उतारने वाले और दिखावे की प्रभु भक्ति करने वालों के विरूद्ध इनके आन्दोलन ने लोगों में हलचल पैदा कर दी। इन्होंने कहा - दीन दुखी की सेवा करना मन्दिर की बेजान मूर्ति के आगे प्रशाद चढ़ाने से कहीं अधिक लाभदायक है, रोगियों और कोढ़ियों, अनाथों और असहाय लोगों में ईश्वर को देखो और रूप धारण करके सामने खड़े नारायण की तन-मन-धन से सेवा करो। इनका आदेश था कि उस धर्म को तिलांजलि दे दो जो भावनापूर्वक कर्म का स्वरूप धारण न कर सके। वो प्रभु प्रेम क्या जो सेवा की शक्ल में व्यक्त न हो सके। रस्मों, रिवाजों और भजनों के धर्म के दम्भ को समाप्त करो। मानव मात्र की पीड़ा हर लेने और जीवन की आहुति देकर दूसरों की सेवा करने के धर्म का उपदेश सुनकर धर्म के ठेकेदारों ने भड़क कर इनके विरूद्ध पाखण्ड और झूठ भरे इल्जाम लगाए। इन्हें नास्तिक, पाखण्डी, धोखेबाज़, अंहकारी और लालची कहा गया। इल्जाम लगाया गया कि वह देश और धर्मद्रोही है। यह राजा बनना चाहता है इसलिए इन्हें पकड़ कर फांसी देने का फैसला किया गया।

अहिंसा, विनम्रता, दीनता, करूणा, सदाचार और निष्काम सेवा के माध्यम से ईश्वर प्रेम का उपदेश देने वाले इस महापुरूष के साथ इस बेवफा और मतलबी संसार ने जो व्यवहार किया इसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और नेत्रों से अपने आप आंसू गिरने शुरू हो जाते हैं। प्रभु प्राप्ति और पाप ग्रस्त लोगों के मोक्ष के लिए जीवन आहुति देने वाले इस सच्चे त्यागी और सन्यासी, योगी और तपस्वी को सत्य प्रेम का मूल्य चुकाना पड़ा। जानकर कलेजा मुंह को आता है। सबसे पहले कोड़े मारने का दण्ड दिया गया। मुजरिमों, डाकुओं, हत्यारों और बेरहम कातिलों को बेरहमी के साथ कोड़े मारने वालों ने इन पर बुरी तरह से कोड़ों की वर्षा की। पहले शरीर पर काले निशान पड़ गए फिर खून बहने लगा, शरीर की चर्बी निकल आई। कोड़े मारने वाले थक गए। इनके स्थान पर नये जल्लाद आ गए। उन्होंने भी उसी तरह कोड़े मारने शुरू किये। सारे शरीर से खून के फव्वारे फूट पड़े। चर्बी नंगी हो गई, लूथड़े गिरने लगे लेकिन क्राईस्ट थे कि ज़बान से उफ तक न निकली। मौन रह कर सब कुछ सह लिया। कोड़े मारने वाले थक गए और उन्होंने हंटरों और कोड़ों को फेंक दिया। सारी रात

चाबुकों से निढ़ाल, खून बह जाने के कारण उठ न सके फिर भी क्राईस्ट को कहा गया कि लकड़ी का वो टुकड़ा जिस पर इन्हें फांसी पर लटकाया जाना था स्वंय अपने कन्धों पर उठाकर नगर के बाहर ऊंची पहाड़ी पर लेकर जायें। सूली को उठाए जब ऐसी पहाड़ी पर चढ़ रहे थे, बोझ और शारीरिक कमज़ोरी के कारण लड़खड़ा कर गिर पड़े। जहां तमाशा देखने वाले साथ गए थे वहां नेक मनुष्य भी रोते हुए जलूस में शामिल हो गए। स्त्रियां छाती पीट रही थीं। जीवन देने वाले के जीवन का अन्त करने के लिए, दया सिखाने वाले को संगदिल और बेरहमी के साथ मृत्यु के घाट उतारने के लिए ले जा रहे थे।

क्राईस्ट ने फांसी पर ईश्वर के सम्मुख प्रार्थना करते हुए कहा- "प्रभु तुमने दीन-दुखियों की सहायता की, मेरी सहायता भी करो। हम कीड़े-किरम तुम्हारी शरण में आये हैं। लोग मेरा मज़ाक उड़ा रहे हैं। मुझको पत्थर मारकर अधमरा कर दिया है, मेरे मुंह पर थूका गया है, मेरे मुंह पर थप्पड़ मारे गए हैं, मेरे शरीर को छेद दिया गया है, मेरा खून पानी की तरह बहाया गया है, भूखे शेर के आगे जिस प्रकार बेज़ुबान गाय फेंक दी जाती है, उसी प्रकार में कातिलों और बेरहमों के बीच घिरा हुआ हूं। देख लो आपके प्यार के कारण मुझे क्या दुख उठाना पड़ा। तुम्हारे चरणों में शत-शत् प्रणाम। मेरी इस अन्तिम आहुति को स्वीकार करो।" क्राईस्ट के शरीर की मृत्यु हो गई लेकिन इनकी आत्मा को कौन मार सकता था। इनके अमर संदेश और जीवन की पवित्रता को कौन मार सकता था? इस तप, त्याग और बलिदान का परिणाम यह निकला कि आज संसार भर में हज़रत यशु मसीह का नाम लेने वालों की संख्या सबसे अधिक है, जो ईसाई नहीं वो भी इनको सम्मान देते हैं, इन्हें ईश्वर का अवतार मानते हैं, इनकी पूजा करते हैं। कितने ही हिन्दू मन्दिरों में क्राईस्ट की मूर्ति देखी जा सकती है। कितने ही हिन्दू आश्रमों में इनका जन्मदिन मनाया जाता है।

विनीत मन के साथ हम आज फिर इस योगीराज, प्यार के दाता, सेवा के उपदेशक, ईश्वर की ज्योत, महा-अवतार के श्री चरणों में आंसुओं की पुष्पांजलि अर्पित करते हैं।



अध्याय - 12

गुरूदेव से मौन (खामोशी) की शिकायत करने वाले मन-मुख होते हैं, गुरमुख नहीं। जहां शब्दों की सीमा समाप्त होती है, वहां से मौन का राज्य आरंभ होता है।

मेरी आंखों को पोंछते हुए पूज्यपाद गुरूदेव ने शहद जैसी मीठी आवाज में कहा-'तुम्हें याद होगा कि जब आप पहली बार मुझे मिले थे, तुमने मुझसे प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी, कुछ-कुछ पढ़े हुए, कुछ-कुछ सुने हुए और कितने ही प्रशन। जब आप के शक दूर हो गए और जो कुछ आपने कहना था कह लिया और मैंने सुन कर जो कुछ बताना था बता दिया, तब आपने मुझे गुरू मंत्र देने के लिए कहा था। मैंने आपसे कहा था जो कुछ पूछना हो पूछ लो। मन को हर भ्रम और भ्रान्ति से खाली करके निष्ठा और विश्वास के साथ ग्रहण किया हुआ गुरूमन्त्र बहुत अधिक फलीभूत होगा, नहीं तो गुरूमन्त्र का हाल उस बीज जैसा होगा जो बंजर और पथरीली धरती में होता है। वह बीज उगना तो चाहता है पर पथरीली धरती की कठारेता उसके विकास में रूकावट डाल देती है। भ्रम-भ्रान्ति और अहंकार विकार से भरे मन में गुरूमन्त्र लाभदायक नहीं होता। आपको याद होगा आपने ही कहा था कि नहीं, अब और कुछ नहीं पूछना, और तब मैनें कहा था कि अब मन को शान्त, मौन और एकाग्र करके मेरी बात को ध्यान से सुनो। भजन का पहला दस्तूर है कि अपनी जुबान को बन्द करना, मौन धारण करके सारी एकाग्रता के साथ गुरू वचनों को ग्रहण करना। आपको भजन अभ्यास की युक्ति बताने के बाद मैंने आपसे कहा था कि आंखों और कानों को बन्द करके मौन रहकर एकाग्रता और संजीदगी के साथ बताए हुए ढंग से सुर्त शब्द योग का अभ्यास करो, जाप करो।

यह पहला भाग जुबान और शब्द का भाग था। इसमें हमने शब्दों पर भरोसा किया और आप जानते हैं कि हर शब्द कुछ अक्षरों के मेल से बनता है। इन अक्षरों और शब्दों की सीमा में आप बन्द थे और आपके लिए मुझे भी शब्दों का ही सहारा लेना पड़ा। अब इस नए भाग में जुबान से कोई काम नही लेना। अब हम मौन के संसार में चले आए हैं जहां सबसे पहले जुबान को चुप करना होता है और फिर मन को उस अवस्था में ले जाना होता है। जुबान मौन रहे परन्तु मन बोलता रहे तो यह मौन नहीं होगा। सच्चा मौन वही मौन होता है जिसमें मन और वाणी दोनों मौन ग्रहण कर लें। ऐसा मौन मानो भजन अभ्यास की पहली मंजिल है। तब आप भी चुप थे और मैं भी मौन हो गया था। आप आए थे तो शब्दों के जाल में फसें हुए थे। परन्तु मेरा रास्ता अपनाने के बाद दिल की दुनिया के अन्दर आध्यात्मिक सफर आरम्भ करने के लिए आपने वाणी का प्रयोग छोड़ दिया।

कहिए ठीक है न, हमारा असली रिश्ता यहीं से आरंभ हुआ था। आपको तब मेरे मौन पर कोई शक नहीं था क्योंकि आप स्वंय मौन हो गए थे। साधना पथ के कुछ मार्ग में हमने वाणी का सहारा लिया लेकिन फिर हमें मौन रास आ गई। बातचीत छूट गई और इस मौन की हालत में शान्त और मौन मन ने आध्यात्मिक सफर

शुरू किया। आश्चर्य की बात है कि मेरी शिक्षा ही आपको जब वाणी के संसार से निकाल कर मौन के संसार में ले गई थी, इतना लम्बा समय बीत जाने के बाद आपको मेरे मौन होने पर शक होने लगा। तुम्हें शिकायत है कि मैं तुम्हारे साथ नहीं बोलता। मैं तुम्हारे साथ बातचीत क्यों नहीं करता? गुरूदेव ठाकुर जी महाराज की बात काटते हुए मैंने कहा- "लेकिन तब तो आप शरीर के साथ, साक्षात मेरे सामने विराजमान थे।"

कृपा सिन्धु गुरूदेव ने कहा- "लेकिन मैंने आपको आंख बन्द करने की तरकीब बताई थी जिसकी उपस्थिति के एहसास का संबंध आंख के साथ नहीं, दिल के साथ होता है और जब आपने आंखों और कानों को बन्द कर लिया, मेरी तरह आप भी खामोश हो गए थे। उस समय ही तुमने आंखों के बिना देखना सीखा, वाणी के बिना बोलना सीखा और कानों के बिना सुनना सीखा।

चुप और वाणी बन्द रहकर भी हमने बातचीत की। मौन के संसार में आए तो आप पर यह राज खुला कि जब तक हम आंख, कान और जुबान के अधीन थे, हम कुछ हद तक ही देख सकते थे, कुछ हद तक ही सुन सकते थे और कुछ गिने-चुने शब्दों का प्रयोग कर सकते थे परन्तु इस तंग सी सीमा के बाहर जो कुछ था, न हम उसे देख सकते थे, न सुन सकते थे, न व्यक्त कर सकते थे। एक बच्चे की तरह जो अभी शब्दों का भरोसा रखे बगैर अपनी लक्ष्यपूर्ति में कामयाब हो जाता है उसकी तोतली, लडखड़ाती जुबान को भी मां समझती है और उसकी मौन वाणी को भी मां समझती है और यह क्या सच्चाई नहीं कि ज्यों-ज्यों बच्चे की जुबान सर-सर चलना सीखती है, त्यों-त्यों ही बच्चा मां की नजरों से दूर हटता चला जाता है। यह दूरी उस समय समाप्त हुई जब आपने मेरे आदेशानुसार बोलना बन्द किया और वाणी के बिना बोलने का ढंग सीखा ।

जब तक हम वाणी और उसके व्यक्त करने के संसार में थे, मानों हम सागर के किनारे पर थे। कुछ सीप, कुछ घूंघे ही हमारे हाथ आए थे। कुछ गहरे पानी में उतरे, मौन के समुन्दर में कदम रखा तो देखा कि नीचे तो मानक और मोती भरे पड़े थे। इसलिए हमारे बड़ों ने, हमारे ऋषियों और महापुरूषों ने हमें मौन रहने का उपदेश दिया और कहा- कुछ शब्दों रूपी सीपों और घूंघो पर ही विश्वास करने वाले मौन के गहरे पानी में उतर कर देख, मोतियों का एक खजाना तुम्हारे स्वागत के लिए बेताब है। बोलचाल तुम्हें बाहर-मुखी बनाती है। अध्यात्म विद्या का सम्बन्ध इन इन्द्रियों का विषय नहीं, अन्तःकर्ण का विषय है और अन्तःकर्ण न वाणी से शब्द उच्चारण करता है, न कानों से सुनता है, न नाक से सूंघता है। स्थूल शरीर की इन्द्रियां स्थूल ज्ञान ही बनाती है। अध्यात्म विद्या, ब्रह्म विद्या अन्तःकर्ण की अनबोली भाषा है। भाषा और बोलचाल बाहर के संसार से सम्बन्धित और मौन अवस्था अन्दर के अन्तःकर्ण से सम्बन्धित है।

उपनिषद् कहते हैं कि जिसे मौन के साथ बातचीत करनी आ जाती है उसे संसार की सारी विद्याएं आ जाती हैं। उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र कहते हैं कि यह ब्रह्म और वाणी से परे है। जब तक उसे मन और वाणी से जानने का प्रयत्न किया, नाकाम रहे लेकिन जब खामोशी (मौन) में बातचीत करना सीख लिया, ब्रह्म विद्या के अधिकारी बन गए। ब्रह्म को जानने के लिए न बोलने की, न सुनने की आवश्यकता है। ब्रह्म विद्या को जानने का अधिकारी बनने की पहली शर्त यह है कि मन शांत और मौन हो जाए।

ब्रह्म विद्या के लिए मौन अवस्था की आवश्यकता पर बल देते हुए हमारे सद्-ग्रन्थों और धर्मशास्त्रों ने बताया है कि मौन अवस्था में ही ब्रह्म विद्या सीखी जा सकती है, सिखाई जा सकती है। आपने सुना होगा कि अरूणाचल के महाऋषि रमन के बारे में। कहा जाता है कि वे न तो किसी को मन्त्र दीक्षा देते थे और न भाषण। लोग श्रद्धा से उन्हें मौन भगवान कहा करते थे। इंग्लैंड के प्रसिद्ध विद्वान पाल ब्रन्टन उनके चरणों में उपस्थित हुए। वे अब तक जिस किसी को मिलते थे उनसे सवाल-जवाब करते थे। पाल ब्रन्टन को हिम्मत न हुई कि वे कोई प्रश्न पूछे। सोचने लगे कौन सा प्रश्न पहले पूंछू, कौन सा बाद में। लेकिन उसके अन्दर उथल-पुथल सी मच गई। आश्चर्य की बात यह है कि उधर यह प्रश्न सोचते, उधर लगता कि भगवान रमन अपने मौन के द्वारा ही उनके दिल में उनके प्रश्न का उत्तर दे देते थे। पाल ब्रन्टन मन्त्रमुग्ध हो गए। जिस पूर्ण सन्त की खोज में इंग्लैंड से निकले थे वे उन्हें महाऋषि रमन के रूप में मिल गए। जो प्रश्न उनके दिमाग में उलझन बने हुए थे उन सभी प्रश्नों का उत्तर महाऋषि रमन ने जुबान खोले बिना खामोशी की जुबान में दे दिया।

सभी सूफी और सन्त एक ही जुबान कहते हैं कि ब्रह्म विद्या वाणी का विषय नहीं, यह वह ज्ञान है जो किसी महापुरूष के स्पर्श या दृष्टि या दया से प्राप्त होता है। सच्चा ज्ञान हृदय से निकलता है। वार्तालाप का सम्बन्ध बाहर से, ब्रह्म ज्ञान का सम्बन्ध अन्तःकर्ण से।

पशु-पक्षी भी जुबान रखते हैं लेकिन अन्तःकर्ण नहीं रखते, इसलिए उनके पास ब्रह्म ज्ञान नहीं। एक तोते-मैना या चिड़िया तक को किसी का नाम सिखाया जाए तो वो सीख लेंगे लेकिन पहचान नहीं कर सकते, ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं। कुत्ता अपना नाम जानता है और दूसरी कितनी ही बातें सीख लेता है। अन्तःकर्ण केवल मुनष्य को ही अता किया गया है लेकिन वह मनुष्य वास्तव में भाग्यशाली होता है जो मौन की जुबान सीख लेता है। इसलिए तो मैंने आपको मौन रह कर भजन अभ्यास करने की युक्ति बताई है। सुजाता इनके रूप पर मोहित हो गई। किस तरह वो हर रोज़ घर से खीर पका करके इनके चरणों में रख जाती लेकिन ईश्वर प्राप्ति के लिए अपने आपको तप की भट्टी में जलाने वाले मुनि देव ने इसकी तरफ न देखा। साधु भी इनके तप और त्याग को देखकर चकित हो गए और इनके चरणों में रहकर इस तपस्वी की सेवा करने लगे। लेकिन जब उन्होंने देखा कि इस तपस्वी ने एक दिन सुजाता के हाथों खीर ग्रहण कर ली है तो शक्य मुनि के बारे में गलत बातें सोचकर इन्हें छोड़ कर चले गए। फिर किस तरह इन्होंने बौद्ध-गया में यह दृढ़ निश्चय करके समाधि ग्रहण कर ली थी कि यदि मुझे ईश्वर के दर्शन न हुए तो मैं इस आसन पर शरीर त्याग दूंगा और फिर किस तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार ने एक-एक करके और फिर मिलकर इन्हें पराजित करने का प्रयत्न किया लेकिन नाकाम रहे और इन्हें बढ़ के वृक्ष के नीचे प्रभात के समय ईश्वर के दर्शन हुए।

इस जीवन ने सदा ही मुझे आकर्षित किया था, क्यों? मैंने एक दिन अपने गुरूदेव श्री अनन्त वैष्णव महाप्रभु ठाकुर श्री चन्द से कहा - कि मैंने अनेकों महापुरूषों के दिव्य चरित्र देखे हैं, सबको महान पाया है, सबने मेरे दिल पर अमिट छाप लगाई है लेकिन यदि मुझे किसी के जीवन ने सबसे अधिक अपनी तरफ खींचा है तो वो हैं भगवान बुद्ध । क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा रूहानी रिश्ता क्यों कर जुड़ा, क्यों कर कायम हुआ?

त्रिकालदर्शी महाप्रभु बोले- कि मोहमाया के बन्धन को तोड़कर परमपद प्राप्त करने वाले हर साधक को बुद्ध भगवान की तरह कठोर तप करना होगा और फिर हम सबके अन्दर एक बुद्ध सोया हुआ है, वो भी सब बन्धनों को तोड़कर मुक्त होना चाहता है। इस चरित्र को देखकर उसे प्रेरणा मिलती है, बुद्ध -बुद्ध को देखकर आकर्षित नहीं होगा तो कौन होगा। सच्चा साधक और सच्चा जिज्ञासु तो वही होगा जिसे भगवान बुद्ध के इस दिव्य चरित्र में झांककर अपने अन्दर एक ऐसे बुद्ध को मूर्ति मान करने की इच्छा जागेगी। यम, नियम, संयम से भरपूर कठोर तप की दिव्य मूर्ति को सदा अपना रहनुमा बनाकर साधना पथ पर चलोगे तो कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ प्राप्त कर लोगे। यह चिराग राहे हाथ से छूट गया, नज़रों से ओझल हो गया तो रास्ते में मर खप जाओगे।

वर्षों बाद गुरूदेव की गुप्त प्रेरणा से जब मैंने भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले दो प्रमुख तीर्थ स्थानों की यात्रा करने की ठान ली तो हृदय मन्दिर में भगवान बुद्ध के सामने सर झुकाकर यही प्रार्थना की कि ऐ देवों के देव- भगवान बुद्ध देव! तेरे चरणों में हूँ तो मुझे दर्शन देना। मेरे यह चरम-चक्षु तो आपके दर्शन नहीं कर पाए। अब मन की आंखो से आपको देखना चाहता हूं। जानता हूं आपके तीर्थों पर सुबह से शाम तक दर्शकों और यात्रियों की भीड़ लगी रहती है। आप इस भीड़ को आज से नहीं सदियों से देख रहे हैं। यह तान्ता न जाने कब तक बन्धा रहेगा लेकिन प्रभु! मुझे इन साधारण जिज्ञासुओं और दर्शकों में एक यात्री समझकर नज़र अन्दाज़ न कर देना। ज़रा दूरी हटाकर मेरे करीब आकर मुझे दर्शन देना और हो सके तो मेरे कानों में अपने प्यार और अपने आर्शीवाद का एक आध शब्द बोलकर अमृत घोल देना।

सबसे पहले कुशी नगर की यात्रा का प्रोग्राम बना। इस तीर्थ स्थान के दर्शन करने की ठानी जहां भगवान बुद्ध ने जीवन की आखिरी घड़ियां गुज़ारी थीं। कुशी नगर लुम्बनी से बहुत अधिक दूर नहीं जहां भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। गोरखपुर से लुम्बनी जाने के लिए बसें मिलती हैं। लेकिन प्रभु जाने क्यों लुम्बनी की बजाए कुशी नगर जाने का प्रोग्राम कैसे बन गया। गोरखपुर से बस पर सवार होकर जब कुशी नगर जा रहा था, शरीर दूसरे यात्रियों के साथ बैठा हुआ था, मन बार-बार उड़-उड़कर भगवान बुद्ध के श्री चरणों में पहुंच जाता। स्थान कैसा होगा यह मालूम नहीं था और न ही सोचा था। बस मन में रह-रह कर यह विचार आ रहा था कि जितनी जल्दी हो प्रभु के चरणों में पहुंच जाऊं। इनके चरणों से लिपट जाएं और रो-रो कर ढाएं मार-मार कर इनसे दया और आर्शीवाद की भीख मांगू ।

जिन्होंने हत्यारों को भिक्षु बना दिया, जिन्होंने हिंसकों को भक्त बना दिया। जिन्होंने वैश्या को अपनी बेटी बनाकर नया जीवन दे दिया, जिन्होंने नास्तिकों को आस्तिक बना दिया, जिन्होंने कातलों को देखा, तो उनके हाथों से तलवारें गिर गई, जिन्होंने राजा-महाराजों को देखा तो वो भिखारियों की तरह इनके सामने दोनों हाथ बांधे खड़े हो गए, जिन्होंने विद्या अभिमान में फंसे हुए कोरे ज्ञानियों को देखा तो उनके अभिमान चकनाचूर हो गए, जिन्होंने बड़े-बड़े विद्वानों, ज्ञानियों को मिथ्या भ्रम के अन्धेरों से निकाल कर सच्ची रोशनी दिखाई, मैं इनकी तरफ जा रहा था। मेरे शरीर को बस ले जा रही थी लेकिन मेरे मन की भावनाओं को, मेरे मन को, मेरी श्रद्धा को गुरू कृपा उड़ाए लिए जा रही थी और बेकरार होकर कभी-कभी अपने साथी मुसाफिरों से पूछ लेता

कि अभी कुशी नगर आया है या नहीं। लगता था कि बस चलते हुए भी खड़ी हो, आगे न सरक रही हो। मन का वेग बस की तेज़ रफ्तार से भी कहीं तेज़ था।

बस रूकी तो सामने नज़र आए साल के वृक्ष । साल के ऐसे दो वृक्षों के बीच भगवान बुद्ध ने जीवन की अन्तिम घड़ियां गुज़ारी थीं। छः-सात मील दूर यहां से किसी की दावत पर भगवान तथागत् वहां गए थे। उन्हें ज़हर दे दिया गया। बौद्ध शास्त्रों में कहा गया है कि पाखण्ड और धर्म के विरूद्ध भगवान बुद्ध के संघर्ष से चिढ़े हुए पंडितों और ब्रह्मचार्यों ने इन्हें ज़हर दिलवा दिया था जिसकी आवाज़ सुनकर जन्म-जन्म की सोई हुई लाखों आत्माएं अंगड़ाई लेकर जाग उठी हैं। उनकी आवाज को हमेशा के लिए खामोश कर देने के लिए संसार के पास ज़हर ही तो था लेकिन सदा-शिव भगवान बुद्ध इस ज़हर को हंस कर पी गए। आनन्द के साथ कुशी नगर पहुंच कर लेट गए, बोले- मैं आज रात के पिछले पहर इस शरीर को छोड़ जाऊंगा। अब मुझे अन्र्त्तात्मा के आनन्द में मग्न रहने दो। पता नहीं कि कब तक रोता रहा। हां इतना याद आ रहा है कि किसी ने अपना प्यार भरा हाथ मेरे सिर पर सहलाते हुए कहा था कि उठो ! रोते क्यों हो, रोने से मंजिल नहीं मिला करती। सफर करने से ही मंजिल पाई जा सकती है। हिम्मत बांधो। पराज्य को पक्के निश्चय से जीता जा सकता है। पहाड़ों के सीने चीर देने वाले, सागर को फाँद जाने वाले, संकल्प को धारण करके आगे बढ़ो, साधना पथ पर आरूड़ हो जाओ, मेरी कृपा न केवल तुम्हारे साथ साथ रहेगी, तुम्हें राह दिखाएगी, तुम्हें हर खतरे से बचाएगी, तुम्हे संभालते हुए आगे से आगे मंजिल-प-मंजिल निरन्तर आगे ले जाती चलेगी। मैंने बिलख कर कहा लेकिन आप तो यहां रहेंगे विश्राम शैय्या पर लेटे हुए। मैं यहां से सैंकड़ो मील की दूरी पर आपकी उपस्थिति को कैसे अनुभव करूंगा?

अनाधि और करूणा की मूर्ति भगवान तथागत के कंवल नयनों में प्यार ठाउँ मार रहा था। इनके गुलाब से होंठ ज़रा हिले और इन्होंने मेरी तरफ ममता भरी निगाहों से निहारते हुए कहा- तू पगला है। कृपा शरीर से नहीं हुआ करती, अन्तः कर्ण से हुआ करती है और फिर जिस शरीर को मेरा शरीर समझ बैठे हो, यह शरीर कब मेरा है। सदियों पहले मैंने पंच भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया था। हां! तुम्हारी खातिर अब मैं नए चोले को ग्रहण करके फिर संसार में आया हूं। श्री महाप्रभु ठाकुर जी के शरीर में तथागत बुद्ध का ही निवास है, इनमें मुझे देखो ।

यात्रा के बाद जब वापिस आ कर गुरूदेव श्री महाप्रभु ठाकुर जी के चरणों में उपस्थित हुआ तो देखकर हैरान रह गया कि मेरी अनुपस्थिति में श्री ठाकुर जी की वेशभूषा बिल्कुल बदल चुकी थी। वो तप, त्याग, वैराग्य और विवेक के कैलाश पर शिव अवस्था में विराजमान थे। लगता था कि बुद्ध गया में कठोर तपश्चर्या में मग्न महाप्रभु बुद्ध देव मेरे सामने ठाकुर जी की मूर्ति में विराममान थे।



अध्याय - 13

इश्क के मस्तानों और प्रेम के पुजारियों को लाख-लाख मुबारिक हो। वह त्योहार आ गया है जो इनके इश्क की सोज़ और तपश को और भी तीखा कर दे और इनके प्रेम की मन्द मन्द अग्नि को प्रचण्ड कर दे। जो लोग गुरू भक्ति को इश्क हकीकी (वास्तविक लग्न) जानते हैं और जो लोग इसे दिव्य आध्यात्म प्रेम समझते हैं यह दिन इनके लिए लाखों खुशियां लेकर आएगा। परन्तु जो लोग धर्म को केवल कर्मी राह व रस्म विचार करते हैं उनको प्रसन्नता तो अवश्य होगी परन्तु उनके मन, अन्तःकरण उस दिव्य आनन्द और उस आलौलिक प्रेम को कभी भी अनुभव नहीं कर सकते जो अर्न्तात्मा में ही पैदा होता है। सागर के किनारों से घूंघे और सीप तो मिल जाते हैं, मोती तो सिर्फ उन्हें मिलते हैं जो जान को नज़राना समझ कर हथेली पर रखकर सागर की गहराईयों में छलांग लगा देते हैं।

व्यास पूजा या गुरू पूजा का पर्व सारे संसार में किसी न किसी रूप में अवश्य मनाया जाता है। जब से सृष्टि की रचना हुई है गुरू और शिष्य का रिश्ता अटूट रहा है, अमर और अविनाशी रहा है और जब तक सृष्टि कायम है यह रिश्ता कायम रहेगा। हर युग में अनादिदेव, पार ब्रह्म-परमेश्वरं और जगत के सूत्रधार को जानने की जिज्ञासा बनी रही है। यह जिज्ञासा सदा बनी रहेगी। ईश्वर तलाश के लिए सूफियों और सन्तों ने निराकार को साकार करने वाले ऋषियों और मुनियों ने गुरू धारण करना आवश्यक बताया है। हम संसार की कोई विद्या और ज्ञान गुरू धारण किए बिना नहीं जान सकते तब ब्रह्म विद्या कब और क्यों कर गुरू धारण किए बिना जान सकते हैं। वैज्ञानिक बनने के लिए किसी वैज्ञानिक से विद्या सीखनी होगी, डाक्टर बनने के लिए किसी डाक्टर को गुरू बनाना होगा, इस प्रकार प्रत्येक विद्या सीखने के लिए उसके पास जाना होगा जो इस विद्या और राज़ को जानता होगा। अनन्त और अगोचर को पाने के लिए उनके चरणों की रजू बनना होगा। उनको गुरू धारण करना होगा जो साधना और तप से उस पार-ब्रह्म परमेश्वर से साक्षात्कार कर चुके हों। संसार भर के दुःखों और तृष्णा रोगों से बचने के लिए जो सच्चा सुख दिव्य आनन्द अविनाशी आत्मा को दिखला दे, जो स्वंय इस भू-सागर को पार कर चुका हो और हमें पार लगा दे, ऐसे गुरू पर तो तन मन और धन सब कुछ न्यौछावर कर देना चाहिए। धन और ज्ञान कमाने के साधन बताने वाला हर विद्या पर धन खर्च करके प्राप्त हो सकती है परन्तु मन पर मूंधने और आत्म ज्ञान सिखाने की साधना न धन देने से मिलती है और न इसको किसी भी दौलत से खरीदा जा सकता है। आदि शंकराचार्य ने अपने दिव्य आध्यात्म ग्रन्थ में लिखा है -जो गुरू धन लेकर यह ज्ञान बेचते हैं कि वे सच्चे गुरू नहीं और न ही किसी का कल्याण कर सकते हैं। एक पहचान उन्होंने और भी बताई है। जो सच्चे गुरू होते हैं वो कभी नहीं कहते कि वो गुरू हैं, या कुछ जानते हैं। यह गुप्त ज्ञान और गुप्त विद्या है, गुप्त ही रखी जाती है। कालिज में पश्चिम के फिलासफरों की किताबें पढ़ने वाले विद्यार्थी नरेन्द्र की आदत थी कि हर बात को विद्या की कसौटी पर, अकल और दलील के तराजू पर तोलकर देखा करता था। वह कई वर्ष तक दक्षिणेश्वर के अवतार परमहंस रामकृष्ण को पागल, सर-फिरा और दिवाना समझा करता था और

बात-बात में इनका मज़ाक उड़ाया करता था। इनके स्वांग उतारा करता था। लोगों ने कहा जब तुम परमहंस रामकृष्ण को कम-अकल और पागल समझते हो तो फिर इनके पास क्यों आते हो। तो नरेन्द्र ने कहा कि जीवन की जितनी पवित्रता और शुद्धता इनमें देखी है, ऐसी किसी दूसरी जगह नहीं देखी और फिर यह कभी नहीं कहते कि वे कुछ जानते हैं। इसलिए मुझे विश्वास हो गया है कि यह सब कुछ जानते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने ईष्टदेव के बारे में जो प्रंशसा की है गुरू ग्रन्थ साहिब में पंचिम पादशा ने इसे किस कदर सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। इनका कहना है कि आत्म दृष्टि, तत्वेता, ब्रह्म ज्ञान और प्रकाश भी धन-दौलत लुटाने से नहीं मिला करते । अनन्त जन्मों के पुण्य कर्म जब उदय होते हैं तब कहीं जाकर ऐसा गुरू मिलता है जो दिव्य वैरागी और अलमंस्त फ़कीर हो। उन्होंने फरमाया है:- "पूर्व कर्म उत्तर जब परघटे। भयो बरखे रसक बेरागी मिटयो अन्धेरा जन्म- जन्म की सोई जागी।।"

जिस गुरू ने माया जीत ली है, जो माया के चक्रव्यूह को तोड़ चुका हो, भला वे क्यों कर उस आत्मज्ञान को चन्द सिक्कों और चन्द टुकड़ों की खातिर बेचने लगा। जहां भी चन्दे लिए जाते हों, चढ़ावे स्वीकार किए जाते हों, धन देकर किसी का सत्कार किया जाता हो, सुन्दर महल खड़े किए जा रहे हों, इमारतें बनाई जा रही हों, वहां और तो सब कुछ होता है, ब्रह्म-ज्ञान और आत्मिक सुख नहीं होता। जन्म-मरण का बन्धन काटने वाले कब मखमली गद्दों और शानदार कोठियों और कारों में रहे। वैराग्य, त्याग और तत्तीक्षता के तीन गुण रखने वाला ही सच्चा गुरू होता है और ऐसा गुरू न किसी की दौलत देखता है, न किसी की ऊंची पूंजी देखता है। उसने जीवन अर्पण करके यह विद्या सीखी थी। वे जीवन लेकर किसी को यह विद्या देता है। यह दौलत जिस भाव मिली थी, उसी भाव दी जाती है। खुले बाज़ार में यह वस्तु न बिकती है, न बेची जाती है।

सच्चे जिज्ञासु की भी यही पहचान है कि वह इस दौलत को न दौलत और न माया के किसी लालच से इसे खरीदना चाहता है। सच्ची जिज्ञासा जब जागती है तो मनुष्य माया के प्रपंच और मोह जाल को तोड़कर हर प्रकार के मिथ्या अभिमान से ऊपर उठ जाता है और उस ब्रह्म विद्या को प्राप्त करने के लिए प्राणों की बाज़ी लगा देता है। जो शिष्य और जिज्ञासु यह समझता है कि यह दौलत और आनन्द करन्सी नोटों, सोने के अम्बारों, फूलों और कारों के नज़राने चढ़ाकर खरीद सकता है वह स्वंय फ्रेब में फसा होता है और अपने आपको धोखा देता है और गुरू को भी धोखा देने का यत्न करता है।

इब्राहीम अद्म भ्रम में फंसा हुआ था कि महल-माड़ी, धन-सम्पत्ति और सुख-आराम के साधन छोड़ने की आवश्यकता नहीं, महलों में रहते हुए ब्रह्म-विद्या मिल जाएगी। फकीर और दरवेश जब समझा कर थक गया, तब एक दिन महल की छत पर चढ़कर दौड़ने लगा । इब्राहीम ने अद्म से पूछा- छत पर कौन भाग दौड़ रहा है। दरवेश बोला- मैं हूं। पूछा ऊपर क्या तलाश कर रहे हो। कहने लगे ऊंट। इब्राहीन अद्म बोला- कहीं ऊंट महलों की छतों पर मिलते हैं, मरूस्थल में जाओ । फकीर बोला- ब्रह्म विद्या नर्म गद्दियों और माया के आडम्बरों में मिल सकती है? चोट काम कर गई। इब्राहीम अद्म ने राजपाठ को लात मारकर सन्यास ले लिया। हज़रत मज़ीद और मौलाना नारदी दोनों के बारे में एक ऐसी कथा आती है जब दोनों ने ईष्टदेव से ब्रह्म-विद्या प्राप्त

करनी चाही तो पीरो-मुर्शिद ने फरमाया कि बहुत महंगी मिली थी, बहुत महंगी दूंगा। उत्तर मिला- कोई भी कीमत क्यों न हो हम देने को तैयार हैं। आदेश हुआ, राज दरबार में जाओ जहां नौकरी करते हो। नौकरी से त्यागपत्र दे दो। शाही वस्त्र उतार दो, फिर संसार का चोला उत्तार फेंकों, फिर नंगे बदन (शरीर) बाज़ारों में होते हुए मेरे पास आओ। मजीद ने तो कमाल कर दिया। पांव का एक जूता उतार कर अपने सिर पर मारते जाते थे। लोगों ने पागल समझ कर मज़ाक उड़ाया। यह लोगों को दूसरा जूता देकर कहते- मेरे सर पर मारो। वापिस आए तो देखा कि गुरूदेव उठकर, आगे बढ़कर उनका स्वागत करने के लिए दिवाने हुए जाते थे। बोले- मज़ीद मैंने जो दौलत तीस वर्षों में पाई, तुमने तीन घंटों में पा ली।

शायद कबीर जी ने राजा धर्मदास को उपदेश देते हुए कहा था-"लेना चाहे प्रेम रस, रखना चाहे मान, एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।" महाऋषि वेदव्यास ने अपने लड़के शुकदेव जी के भ्रम भ्रान्ति को दूर करने के लिए इन्हें ब्रह्म-विद्या प्राप्त करने के लिए जंगलों में ऋषियों के पास भेज दिया। वर्षो बाद वो वापिस आए तो देखा कि लड़का ग्रन्थों की विद्या पर अभिमान और अहंकार कर रहा है तब इन्होंने शुकदेव जी को कहा था-

“ब्रह्म विद्या ग्रन्थों से नहीं मिलती, दिल से मिलती है। यह कुछ याद करने की विद्या नहीं, सब कुछ भूल जाने की विद्या है। इस पर अभिमान नहीं किया जा सकता। यह मिट्टी के समान निमाना बनने पर मिलती है।"
इस सच्चाई को एक बार माता रेहाना से, चाचा श्री गुरदयाल मलिक और श्री सन्त गुलाब सिंह की उपस्थिति में बहुत प्यारे शब्दों में सुनने का अवसर मिला। उन्होंने कहा था- “इश्क किताबों को पढ़कर कैब होता है। न जाने किस की आंख कब किसी को कत्ल कर दे, कब किसी की हंसी किसी का दिल चुरा ले, कब किसी की चाल पर कयामत बनकर टूट पड़े। इश्क किया नहीं जाता, इश्क हो जाता है।"

सच्ची गुरूभक्ति न ग्रन्थ आधीन में न किसी रस्म और रीति की पाबन्द है। यह तो दिल का सौदा है, सब कुछ लुटा देने और फना हो जाने का रास्ता है। जो शिष्य बनते हैं, अहंकार भी करते हैं, माया में विलीन और विषय वासना के अधीन भी रहते हैं और ब्रह्म-ज्ञान के अभिलाषी भी कहलाते हैं, इन्हें जान लेना चाहिए कि वे अभी गुरू-भक्ति से कोरे खाली हैं। गुरू-भक्ति की पहली शर्त यह है कि जो मन का कहना नहीं मानते हैं- मनसुख होते हैं और जो गुरू शिक्षा के सांचे में ढलना शुरू हो जाते हैं- गुरूमुख होते हैं। हम अक्सर गुरू धारण करने के बाद भी इस तरह से पापी, अधर्मी, बेईमान और कुकर्मी रहते हैं तो इसका कारण यह है कि हम गुरू-भक्त कहलवाते हुए भी मनमुख बने रहे, गुरूमुख न बन पाए। आमतौर पर हम से यही पाप होता है कि गुरू की केवल उन बातों को मानते हैं जो हमारे मन की कसौटी पर पूरी उतरती हैं, जो हमारी दलील, हमारी अक्ल के तराजू पर पूरी उतरती है। जिन बातों को हम पसन्द करते हैं केवल इन्हें ग्रहण करते हैं। इस प्रकार हम गुरूमुख कहलाने के अतिरिक्त वास्तव में गुरमुख नहीं बन पाए। मन-मुख थे, मन-मुख बने रहे। शेर की खाल ओढ़ लेने से गधा जैसे शेर नहीं बन सकता, इसी प्रकार केवल लेबल बदल लेने या अपने आप को गुरू का सेवक कहलाने से बात नहीं बनती, बात तब बनेगी जब हम मन, वचन और कर्म से गुरू उपदेश पर चलें, मन के कहे को ठुकरा दें। गुरू की प्रत्येक आज्ञा को ब्रह्म शब्द समझ कर धारण करें और इस प्रकार अपने जीवन को साधना की भट्ठी में चढ़ा देवें ।

पूजा केवल गुरू के आगे नमस्कार करने, इन्हें अपनाने, इन्हें कुछ रूपये फल या मिठाई भेंट करके मोक्ष खरीदने वाले शब्दों से हम यह कहेंगे कि ईश्वर के लिए अपने शब्दों पर तरस खाओ, अपने गुरू पर भी तरस खाओ। स्वंय कुछ बनो ताकि जो भी आपको देखे उसको आपकी सूरत में आपके गुरू की झलक दिखाई दे। आपके जीवन की छाया गुरू छाया बन जाए, आपका जीवन प्रकाश का स्तम्भ बन जाए। गुरू पूजा तो सच्चे शब्दों में तभी गुरू पूजा होगी यदि हम अपने एक-एक वचन, कर्म और मन की एक-एक गति ध्वनि को गुरू अर्पण कर दें। साधना किसी एक की जागीर नहीं, जो कोई चाहे जिस पथ पर चलते-चलते पांवो के तलवे छलनी हो जाएं, खून बहने लगे परन्तु दिल प्रसन्नता से झूम-झूम जाए और इश्क का मस्ताना और ब्रह्म पुजारी संसार के यश, लाभ और हानि से अपरिचित होकर आगे बढ़ता जाए। व्यास पूजा हमें इस पथ पर चलने का संकेत है।



✤✤ ✤✤ ✤✤ ✤✤

अध्याय - 14

प्रभु प्राप्ति की पहली सीढ़ी-तप । परन्तु तप किसको कहते हैं। शरीर को कठोर दुःख तथा पीड़ा देना तप नहीं है। तप मन का रूख मोड़ देने का नाम है।

तप से अलग-अलग लोग अलग-अलग अर्थ निकालते हैं। किसी के समीप तप का अर्थ भूखे-प्यासे रहना, किसी के समीप है हर समय आग की धूनी के सामने बैठकर जप-ध्यान करना। किसी के समीप पानी में खड़े रहकर मन्त्र-उपासना करना। किसी के समीप व्रत रखना, किसी के भोगों से शरीर में जो विकार पैदा हो गए हैं- इन्हें दूर करें। आत्मदर्शी महापुरूषों ने तो शरीर को कष्ट देना, तरह तरह के संकटों की चक्की में पीसने को तप कहने का विरोध किया है। इनका कहना है कि सब कुछ शरीर के साथ ही करना, शरीर को ही दुख दर्द देना, इस तरह से शरीर के साथ लगाव रखना है जिस प्रकार भोग-विलास-शत्रुता हो या मित्रता, बाह्मी सम्बन्ध का ही रिश्ता तो है। तप का अर्थ इस रिश्ते को बनाये रखना नहीं, इस रिश्ते को समाप्त करना है। मैं शुद्ध, सत्-चित्, आनन्द स्वरूप आत्मा हूँ - शरीर नहीं हूँ। ऐसे महापुरूषों ने शरीर की मज़मत (विरोध) और बुराई नहीं की बल्कि इसे मंजिल तक पहुंचने के लिए यन्त्र, साधन, माध्यम भी कहा है और इसे आत्मा का देवाल्य कहा है।

तप की जो व्याख्या गीता में की गई वह विशेषकर उल्लेखनीय है। सतरहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में कहा गया है- देवता, ब्राह्मण, गुरू और ज्ञानी-जनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा- यह शारीरिक तप कहलाता है। अगले श्लोक में शारीरिक तप को बताते हुए कहा गया है ऐसी वाणी बोलें जो दूसरों को भड़काने वाली, चुगली-निन्दा से रहित, मीठी, हितकारी और भावार्थ भाषण और स्वाध्याय में लगे रहने वाली वाणी बोलना तप है। सोलहवें श्लोक में कहा गया है-मन की प्रसन्नता, स्वमेव भाव, मननशीलता, संयम और अन्तःकारण की शुद्धि, यह मन का तप कहलाता है। सत्तरहवें श्लोक में लिखा गया है कि फल की इच्छा न रखने वाले युक्त पुरूषों के द्वारा परम श्रद्धा से किए गए ऐसे तप को करना सात्विक तप है। अठाहरखें श्लोक में लिखा गया है जो तप सत्कार, मान, पूजा प्राप्त करने के लिए या केवल पाखण्ड से किया जाता है उसको अस्थिर, अनिश्चित तप, राजस तप कहते हैं। उनीसवें श्लोक में कहा गया है-मूर्खता से भरे हुए हठ के साथ शरीर और मन को दुःख देकर या दूसरों का बुरा करने के लिए जो तप किया जाता है, उसे तामस तप कहते हैं।

स्पष्ट है कि तप का अर्थ शरीर को दुःख देना नहीं, कर्म-इन्द्रियों को नष्ट करना नहीं बल्कि कर्म इन्द्रियों को ज्ञान-इन्द्रियों का रूप जानकर इन्हें काबू में लाना है अर्थात् शरीर को कष्ट देना नहीं है बल्कि मन को बस में करना है। इस तरह सात्विक तप इच्छाओं के दमन में नहीं, इच्छाओं को लगाम-दार घोड़ों की तरह काबू में रखने का नाम है। मन, चित और अंहकार जब काबू में आ जांएगे, तब कर्म भी अच्छे हो जायेंगे और सात्विक हो जायेंगे।

ज़बान को मौन रखना, न बोलना, तप नहीं बल्कि मन में पूरी भावनाओं का उठना रोक देना, मन को भटकने से मना कर देना ही वास्तविक तप है।

मनु महाराज ने मन और इन्द्रियों को सत्य और धर्म में केन्द्रित करने को सब से बड़ा तप कहा है। ब्रह्मचर्य शरीर का तप है तो श्रद्धा मन का तप हैं। ऐसा दो तरह का तप करने के बाद आत्मिक शक्ति जाग उठती है। भला और बुरा क्या है इसकी पहचान हो जाती है और झूठ को सच से, धर्म को अधर्म से अलग करने की विवेक शक्ति और क्रियात्मक शक्ति जाग उठती है।

भृगों जब अपने पिता वरूण से ब्रह्मज्ञान पूछते हैं तो महाऋर्षि वरूण कहते हैं कि ब्रह्म को तप के साथ जानो। ब्रह्म क्या है इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं- ब्रह्म वह अनादि अविनाशी सत्ता है जिस से प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति हुई। जिसके कारण सब कुछ स्थिर है और जिसमें सब कुछ लय हो जाता है, मिट जाता है। यही नहीं वरूण भृगों से कहते हैं कि तप ही ब्रह्म है।

केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं, संसार प्रसिद्ध दूसरे सभी धर्मों में तप को वो दरवाज़ा कहा गया है जिसमें से गुज़र कर (निकल कर) साधक अपने ईष्ट के दर्शन कर सकता है। ईसाईयत, इस्लाम, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, हिन्दू धर्म सब धर्मों में तप को ईश्वर तलाश की पहली सीढ़ी कहा गया है।

बाल्मीकी रामायण की शुरूआत दो शब्दों- तप और स्वाध्याय से शुरू होती है। तप को मन की सम्पूर्ण एकाग्रता कहा जा सकता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस कदर एकाग्रचित के साथ तल्लीन हो जाना, जुट जाना कि संसार की होश तक शेष न रहे- इस तरह सम्पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण करना सबसे बड़ा तप कहलाता है। आत्म-समर्पण की सही रूप रेखा समझने के लिए यह याद रखना होगा कि अपने मन, अपने अंहकार, अपने चित और अपनी इच्छाओं को पूरी तरह से समाप्त करके अबोध बालक की तरह उसे परम्पिता की ऊंगली पकड़ लेना होता है। कहां जाना है? क्या मंजिल है? क्या मिलेगा? इन सब विचारों का न उठना ही समर्पण होता है। ईश्वर इच्छा के अधीन अपने आपको इस तरह से हवाले कर देना जिस तरह टहनी से टूटा पत्ता हवा के कंधों पर उड़ता है।

तप का अर्थ है कि अपने आपको मन बुद्धि के घेरे से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र करके ईश्वरीय इच्छा के घेरे में ले जाना। विचार शक्ति के प्रभाव और गुरूत्वाकर्षण से छूटकर देव इच्छा के आकर्षण घेरे में रहना है। इसमें कठिन प्रयास करना पड़ता है एक बार इस आकर्षण घेरे को तोड़ दिया तो फिर थोड़ी सी शक्ति और प्रयोग में लाकर चाँद की तरफ मुहँ (चेहरा) करना होता है। उसके बाद उसे चाँद अपनी तरफ खींच लेता है। चाँद के आकर्षण से यह उड़ने लगता है। एक बार साधक इस शरीर, मन, बुद्धि और विचार शक्ति से परे उठ जाए और एकाग्र मन से प्रभु चिन्तन करे, स्वंय प्रभु शक्ति इसको अपने आप अपनी ओर खींच लेगी।

- ऐसे तप के लिए बहुत से शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं। अबोध मन की सम्पूर्ण निष्ठा की आवश्यकता है। ऐसे तप का उदाहरण परमहंस रामकृष्ण के जीवन से मिल सकता है। वो शास्त्रों के विद्वान और ज्ञानी नहीं थे। लेकिन केशव चन्द्र सेन जैसे संसार भर में माने गए बुद्धिमान, ज्ञानी इन के चरणों में बैठने को अपना सौभाग्य समझते थे। स्वामी विवेकानन्द जैसे पढ़े लिखे और कुछ हद तक नास्तिक हो चुके मन की धारा और जीवन परिवर्तन का कारण श्री राम कृष्ण के तप त्याग ने जादू का असर किया। महाऋषि रमन का जीवन भी इस संबंध में शानदार उदाहरण है। उन्होंने कहा था कि सबसे बड़ा तप यह है कि यह जाना जाए कि मैं कौन हूँ? इस विचार चिन्तन से और सभी विचारों को मन्त्र में लीन कर देने का तप करते हुए साधक परम् लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

❀❀ ❀❀ ❀❀ ❀❀



अध्याय - 15

जिनके वियोग में एक पल युग के समान पीड़ा देने वाला लगता था, उनको (परम पूज्य पापा जी महाराज) को बिछुड़े हुए १६ वर्ष बीत गए। बहुत रोये, बहुत फरियाद की, विरह के वेग में हृदय पागलों की तरह बेकाबू हो गया। कितने ही दिन तक आंखों से नींद उड़ गई और भूख प्यास खत्म हो गई। भरी दुनिया भी उजड़ी-उजड़ी सी दिखाई देती थी। वे स्थान जहां वे निवास करते थे, उनके जीते जी तीर्थ समान पवित्र तपोभूमि बना हुआ था, परन्तु विरह के मारे वही स्थान, अब खाने को दौड़ता है। हर एक वह वस्तु जो उनके स्पर्शमात्र से ही प्रिय लगती थी, अब वही न केवल प्राणहीन दिखाई देती है, बल्कि आंखों को डरावनी लगती है। जुदाई ने नज़रों को इस हद तक बदल कर रख दिया है कि खुद अपने-आप से घृणा होने लगती है और जिस तरह कोई यतीम बच्चा अपना जीवन अन्त करने के लिए किसी दरिया में कूद जाना चाहता है, इसी तरह मन ने सौ तरह से अपने कठोर जीवन का अन्त कर देने की बातें सोची। तब इस विरह को सहन कर लेना बेहद कठिन प्रतीत होता था। एक-एक घड़ी बीतने में नहीं आती थी।

उनकी स्मृति की सुगन्धि ने जीने की प्रेरणा दी। हम जी तो रहे हैं, लेकिन उजड़ी हुई अयोध्या नगरी की तरह जिसमें से प्रभु राम जा चुके थे। यदि सांस लेने को जीना कहते हैं तो यह जिन्दगी हमारे पास है लेकिन उसी तरह से निष्प्राण, जिस तरह से श्रीकृष्ण भगवान के निजस्वरूप में लीन हो जाने पर द्वारका नगरी थी।

वे आंखों के सामने दिखाई देते थे तो हमने उनकी लीला को न जाना, न पहचाना। माया का सबसे विलक्षण प्रभाव यही होता है कि ये मन न चाहता हुआ भी लीला को सच समझ बैठता है और लीला करने वाले की लीला में रंगा हुआ खुद तमाशे का एक हिस्सा बन कर रह जाता है और जिस तरह लीला समाप्त होने पर वेशभूषा उतारे हुए, अभिनेता को देखकर मनुष्य चकित रह जाता है, इसी तरह से हमने अपने हर महापुरूष की लीलाकाल में न जाना, न पहचाना और जब वे चले गए तब बहुत पछताये, बहुत रोये। अपने पर अफसोस आया कि नर तन रूप में वे तो स्वंय नारायण थे लेकिन माया से अन्धी हुई आंखों को उनका तत्व स्वरूप दिखाई न दिया।

उनका व्यक्तित्व बड़ा अनोखा था, बड़ा अनुपम । पूर्ण सद्गुरू होने के बावजूद मित्रों की तरह मित्र, बेतकल्लुफ दोस्तों की तरह बेतकल्लुफ दोस्त, जन्मदाता पिता के समान ममता और स्नेह से भरा हुआ हृदय रखने वाले पिता। कई बार हमें प्रतीत हुआ कि उनसे बढ़कर कोई सखा नहीं। सौ बार जाना कि वे पिता से भी बढ़कर कृपालु हैं। उन्होंने इस कदर स्नेह और दुलार दिया कि उनके वास्तविक स्वरूप को पहचानना कठिन हो गया। माया के मारे हम भूल गए कि कुछ दिन के लिए स्वरूप धारण किये हुए भगवान हमारे मध्य में आये हुए हैं और ज्यों ही वह नाटक खत्म होगा तो वे अपना अभिनय संसार रूपी स्टेज को छोड़कर भाग जाएंगे। उनके लाड

प्यार में खोये हुए हम उस स्वप्न को ही सच मान बैठे और जब वह स्वप्न टूटा तो हमारी दशा वही थी जो एक स्वप्न में राजा बना बैठा था।

कितनी अनोखी बात है कि हमने उनकी गैर-हाज़िरी में जीना न चाहा, पर जी रहे हैं। हमने मर जाना चाहा, पर मर न सके। वर्षों को बीतते कितनी देर लगी होगी, यह आज हम सोचें तो अपने पर हैरानी होगी। एक क्षण की जुदाई सहन न हो पाई और अब १६ वर्ष बीत गये हैं और हम सांस ले रहे हैं, जी रहे हैं। यह अपने साथ धोखा किया था, उनके साथ जिन्हे बिलखते हुए सौ बार हमने आंसुओं से भरी आंखों के साथ आश्वासन दिया था कि आपके बिना मर जाएंगे। आज हमारी दशा वही है जो भरत की ननिहाल से लौटने पर अयोध्या में पांव रखते समय हुई थी। दीवारों से सिर फोड़कर भरत ने मर जाना चाहा लेकिन गुरूजनों ने, माताओं ने, नगरवासियों ने, नीतिवानों ने भरत से यही अनुरोध किया तुम जिनको प्राणों से प्रिय समझते थे, अपने प्राण उनके अर्पण क्यों नही कर देते? आत्महत्या तो ग्लानि का मार्ग है। शरीर का अन्त कर लेने से जुदाई दूर नहीं होती। वो जो काम आपके ज़िम्मे छोड़ कर गये हैं, उसे पूरा करो। कुएं में नहीं, या आग की भेंट होकर नहीं, शरीर की आहुति उनकी स्नेह अग्नि में भस्म कर डालो। स्वांस तुम्हारे रहें, जीवन किसी दूसरे का बन जावे। तन तुम्हारा कहलाये, मन उनका हो जाये। इस संसार में जीते जी मर कर रहोगे तो अमर और अविनाशी पद को प्राप्त करोगे ।

लगता है हमारे गुरूदेव जो आज से १६ वर्ष पहले हमें ज़िन्दगी की जिन राहों पर छोड़ कर चल दिये, मुड़-मुड़ कर हमें यही कह रहे हैं कि तुमने अपना जीवन मुझे देने का वादा किया था, उस वादे से मुकर न जाना। तुम्हारा जीवन मैं तुम्हारे पास अपनी अमानत समझ कर छोड़ आया हूँ। यह मेरी अमानत है, कब किसने और किस समय इसे तुम्हें मुझ को लौटाना है, इसका निर्णय मैने करना है। जिसने जीवन अर्पण कर दिया, उसने निर्णय करने की शक्ति को भी अर्पण कर दिया। मेरे हो तो मेरे बन कर रहो। अपनी मनोकामनाओं के बड़े वेग से दौड़ने वाले घोड़ों के पीछे मत भागो । शान्त मन के साथ मेरे आदेश को सुनो और उसे पूरा करो। मुझे तुम्हारे जीवन की आहुति सर्वप्रिय है लेकिन मैं नहीं चाहता कि मेरी अमानत को तुम नष्ट कर डालो। मेरी मौज मुताबिक चलो और जीवन के हर क्षण को प्रेम आहुति समझकर मेरे अर्पण कर दो।

आप जानते हो कि सामग्री को एक ही दफ़ा हवन कुण्ड में नहीं डाला जाता है। ज्यों-ज्यों समिधा के साथ और सामग्री छोड़ी जाती है, त्यूं-त्यूं और सामग्री की आहुतियां तेज़ी से डाली जाती हैं। इस यज्ञ अग्नि को मैं प्रचण्ड करने वाला हूं, देखना चाहता हूं कि तुम अपनी आहुति को किस प्रकार देना चाहते हो।

आज का दिन उनकी पुण्य स्मृति में केवल संकल्पों-विकल्पों की मनोकामनाओं में सो जाने का नहीं, गहन शपथ ग्रहण करते हुए आगे बढ़ने का है और एक बात तो सदा ही स्मरण रहनी चाहिए कि यदि उन से सच्चा प्यार है तो उनके बताये हुए कर्त्तव्य को पूर्ण करना ही हमारा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। माने उनकी करें अपनी, यह समर्पण के विरूद्ध होगा।



अध्याय - 16

गुरू पूर्णिमा और व्यास पूजा के दिन नई श्रद्धा और अगाध विश्वास की भेंट चढ़ाओ। एकान्त में बैठकर आत्म - निरीक्षण की आवश्यकता है। सोचो गुरू धारण करने के बाद आपने क्या पाया। न खुशामद से, न सिफारिश से, न रिश्वत से काम बनेगा। गुरू प्राप्ति होगी तो सम्पूर्ण आत्म समर्पण से। पूजा की थाली में कोई सकामता, कोई दुर्वासना और कोई अहंकार न रखो, अपनी आहुति दे दो।

गुरू पूर्णिमा वो परम श्रेष्ठ पर्व है जिस दिन जिज्ञासु अपने संत गुरूदेव से अपने विश्वास, अपने प्रेम और अपनी निष्ठा के रिश्ते को ताज़ा दम करता है और अपने रूहानी (आध्यात्मिक) सफर, कट चुकी मंजिलों और रास्तों की जानकारी के सहारे नये विश्वास, नए हौंसले, नई हिम्मत और नए भरोसे के साथ अगली मंजिलों की तरफ कदम बढ़ाने और लक्ष्य प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प के साथ अग्रसर होता है। साधक और सच्चे श्रद्धालु को चाहिए कि इस दिन व्रत रखे और बहिर्मुखी होने की बजाए अर्न्तमुखी बनकर आत्मनिरीक्षण करे। किस ध्येय और किस कामना की प्राप्ति के लिए गुरूदेव की शरण ग्रहण की थी। अभी लक्ष्य कितनी दूर है और किस कमी ने पांवों में जंजीरें डाल रखी थी, किन दिवारों ने रास्ता रोके रखा था। अब इन कमियों और त्रुटियों को कैसे दूर किया जाए। आवश्यकता है कि गुरू पूर्णिमा के दिन साधक इन सब बातों पर विचार करे और पिछली असफलताओं, पिछली गलतियों और पिछली बे-हिम्मतियों और निराशा की परछाईयों को दूर करके इसी तरह अपने लक्ष्य की ओर बढ़े, जिस तरह रात के बाद सूर्य अपने पथ पर आगे बढ़ता है।

जिन साधारण लोगों के समीप गुरू धारण करना भी एक रीत और रस्म बन जाता है और गुरू धारण करने के बाद आम लोग परमार्थी, पराक्रमी साथक ओर सच्चे जिज्ञासु बनने की बजाए बस इस बात से ही सन्तुष्ट हुए मस्त गफलत में फंसे रहते हैं कि बस गुरू धारण करना था कर लिया, अब गुरू जाने और उसका काम। हमें न कुछ करना है, न कुछ कराना है। वास्तव में गुरू धारण इसलिए किया जाता है कि हमारे मन का अन्धेरा दूर हो, मल विक्षेप से ढका हुआ दिव्य प्रकाश जो मन्द पड़ गया है मन रूपी चिमनी को साफ करके इसके चारों तरफ उजाला और प्रकाश फैलाने वाला दीपक बनाकर प्रज्जवलित किया जाए। परन्तु यदि देखा-देखी लकीर के फकीर बने, भेड़-चाल की तरह सिर्फ किसी आश्रम, किसी सन्त महापुरूष से सम्बन्ध जोड़कर भी साधना-युक्त न हुए, विषय ग्रस्त मन भोग वासनाओं को तज कर योग की तरफ प्रेरित न हुए, मन में पहले की तरह अन्धेरा, मैल और आवरण पड़ा रहा तो जान लेना चाहिए कि गुरू धारण ही नहीं किया गया। गुरू वाणी के शब्दों में गुरू धारण का अर्थ यह होना चाहिए कि सब भ्रमों और सब बुराईयों की धुन्ध मिट जाए और सत्य और विवेक का दिव्य प्रकाश फैल जाये।

भ्रांति और अज्ञान के वश हर समय बाहर वृत्ति रखने वाला मन गुरू को भी बाहर देखता है और उसे एक शरीरधारी मनुष्य देखता है और समझता है - बस ज़रा श्रद्धा के साथ सर झुका दिया, ज़रा अन्धेर-सवेर चलते-फिरते कोई मन्त्र उच्चारण कर लिया और बहुत हुआ तो कभी आश्रम में जाकर व्याख्यान और उपदेश सुनकर सिर हिला दिया और लोक दिखावे के लिए थोड़ा बहुत दान दे दिया और वर्ष के बाद व्यास पूजा के दिन चन्द रूपये, कुछ फल, कुछ मिठाई गुरूदेव को अर्पण करके नमस्कर कर दिया। जो कुछ किया बाहरी वृति से किया, दिखावे के लिए किया और यदि दिखावे की भावना नहीं थी तो महज़ एक रस्म और रीति पूरी करने के बराबर निष्प्राण भक्ति तो जरूर थी। हालांकि गुरूदेव से रिश्ता शरीर या तन के साथ नहीं होता। गुरूदेव ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया कि उनके शरीर को, न उनके लिबास (पहरावा) को, उनके भेष को, न उनके किसी दूसरे बाहरी काम को गुरू निष्ठा का केन्द्र बनाओ बल्कि शिष्य तो वही जो अपना मन गुरूदेव के पास बेच दे, अपना आप उनके हवाले कर दे और समस्त कामनाओं और इच्छाओं का पूर्ण रूप से दमन करके गुरू समर्पण हो जाए। बहिर्मुखी मन जिस तरह संसार को रूपये पैसे से, झूठी प्रंशसा और चापलूसी से, खुशामद और रिश्वत से अपने वश में करना चाहता है, इसी तरह गुरू चरणों में भी पहुँच कर अपनी चतुराई, फरेबकारी और धोखेबाज़ी से बाज़ नहीं आता और घट-घट और पट-पट की जानने वाले अन्तर्यामी गुरूदेव को भी अपनी दौलत से, अपने प्रशाद और अपनी भेंट और नज़राने से अपने बस में करने के यत्न करता है। दूसरे शब्दों में जिस साधना का निर्माण करने के लिए गुरू शरण को ग्रहण किया था उसकी बुनियाद (आधार) ही गलत रखनी शुरू कर देते हैं। हम स्वंय उनके बनने की अपेक्षा इन्हें अपने छल-कपट से अपना बनाने का यत्न करते हैं और शरणागत और दीन -हीन बनने की अपेक्षा हम धर्म-स्थान और गुरू-चरणों में भी इज़्ज़त, मान, बढ़ाई, पद और कुर्सी की ही कामना रखे रहते हैं। गए थे पूजा करने, वहां पहुंच कर अपनी पूजा और अपनी मान प्रतिष्ठा कराने में उलझ जाते हैं।

गुरू ही सबसे बड़ा तीर्थ है परन्तु इस तीर्थ मन और तीर्थ दर्शन से क्या लाभ है जिसके बाद मन की मैल उतरने की अपेक्षा हमने और चढ़ा ली। आवरण और पर्दे हटाने की बजाए मन के ऊपर और पर्दे डाल लिए। भ्रम निकालने की बजाए और भ्रम में फंस गए। गुरू धारण का मतलब यह नहीं कि जिस तरह मनुष्य किसी दफ्तर में हो जाता है उसी तरह मन्दिर में भी हो। सलाम भी किया सजदा भी किया, नज़राना भी दिया, अदब से बातचीत भी की परन्तु बाहर निकलते ही फिर वही खुराफात (बकवास) और फिर वही टेढ़ी-तिरछी बातें। गुरू धारण का अर्थ है कि चौबीसों घंटे जो मन रूप-रंग, रस और विषय विकार की माया भरी भ्रांति में डूबी दुनिया में फंसा रहता है इसे अब गुरू अर्पण कर दिया जाए। गुरू कान में मन्त्र फूंकते ही शिष्य को सम्मार्ग, ब्रह्म-पथ पर आरूढ़ होने का उपदेश देते हैं और जन्म-जन्मान्तरों से सोये मन के आवरण और भ्रान्ति की नींद में सोई आत्मा को कहते हैं कि तुम यह शरीर नहीं हो, आत्मा हो, दिव्य ज्योति का ही भाग हो। हज़ारों लाखों सूययों को प्रकाश देने वाले सूर्य की किरण हो, प्रकाश का सन्देश हो, सतचित-आनन्द राशि प्रभु का ही अंश हो। जो मैं हूं वही तुम हो। अपनी सिंह गर्जना से गुरूदेव हमारी सिंह रूपी आत्मा को जगाते हैं और हमारे दिलों के अन्दर राख के ढेरों में छुपी हुई जो चिंगारी होती है उसे कुरेद कर बाहर निकालते हैं, चमकाते हैं और फिर उस दबी बुझी-बुझी सी चिंगारी को प्रचण्ड अग्नि का स्वरूप प्रदान करते हैं। जलता दीपक बुझे दीपक को जलाता

है और फिर देखते ही देखते अन्धेरे में डूबी मुण्डेर पर जैसे दीयों की कतार जलकर दीप माला हो जाती है, इस प्रकार अनन्त ज्योति स्वरूप गुरूदेव अनेक आत्माओं का अनुष्ठान करते हैं, परोपकार करते हैं, नये दिव्य आध्यात्म जीवन का संचार करते हैं।

दूसरे शब्दों में गुरूदेव मन्त्र दीक्षा देते हुए जीव के अन्दर सोये हुए गुरू को जगाते हैं और जब वो गुरू जाग उठता है, साधक के सम्मुख हो जाता है तो साधक का मन, वचन और कर्म ही बदल जाता है। यानी साधक का मन गुरू कृपा का आईना (शीशा) बन जाता है। शिष्य का वचन मधु सूदन गुरूदेव की मिठास और प्रेम का प्रतीक बन जाता है और जिज्ञासु के प्रत्येक कर्म में गुरूदेव की कान्ति उभरने और चमकने लगती है।

यदि गीता में गुरूदेव धारण करने को पूर्ण रूप से शरणागति हो जाना कहा गया है- तो रामायण में भगवान राम कहते हैं कि जो साधक भरत की तरह बन जाता है, मैं उसे प्यार ही नहीं करता, स्वंय उसकी पूजा करने लग जाता हूँ। श्री अंगद देव जी, श्री अमरदास ऐसे ही भरत रूपी साधक बने थे, तभी तो गुरू नानक ने अपने हाथों से भाई लहने को गुरू-गद्दी सौंपकर स्वंय उनकी पूजा सेवा की थी। और इसी तरह भाई अंगद ने श्री अमरदास जी को गुरू आसन पर बिठाने के बाद उनके चरणों में बैठने का हठ किया था। सब कामनाओं, सब वासनाओं की आहुति देकर जब तक सच्चा साधक सच्चा यज्ञ नहीं कर लेता, तब तक गुरू कृपा का नाद नहीं बजता और लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती ।

गुरूदेव के लिए व्यास पूजा के शुभ दिन अपने प्यार और विश्वास के रिश्तों को फिर से जोड़ते हुए आईए, हम यह देखने का यत्न करें कि पूजा की थाली में कोई सकामता न हो, कोई विकार न हो, कहीं ऐसा न हो कि गुरु कृपा का अमृत कुपात्र में पड़ जाने से अमृत ही न रहे, ज़हर बन जाए, जैसे गन्दे नाले में गिरकर गंगा जल की बूंद नष्ट हो जाती है। गुरूदेव की सच्ची खुशी हमारा धन माल लेने में नहीं होती, इस बात में होती है कि हम उनकी कृपा और उनके सन्देश उपदेश की सरिता बन जाए। गंगा से मिलकर गंगा जलधारा बन जाएं, दीपक से जलकर दीपमाला बन जाएं।



अध्याय - 17

हिन्दू धर्म के प्राणाधार भगवान श्री कृष्ण के शुभ जन्म महोत्सव पर साधना पथ के पाठकों, ईश्वरीय जिज्ञासा रखने वाले हर एक सच्चे साधक को हमारी हार्दिक शुभकामनाएं। सच तो यह है कि भगवान श्रीकृष्ण में वह सभी गुण थे जो एक नीतिज्ञ और ब्रह्म स्वरूप, ईश्वरीय स्वरूप में होते हैं। उनके दर्शाय हुए मार्ग से हिन्दू समाज

तो क्या, सकल ब्रह्माण्ड विश्व भर के दार्शनिकों को प्रेरणा का वह अपूर्व स्रोत मिला है, जो शताब्दियों तक नापा नहीं जा सकेगा। विनोबा जी के शब्दों में गीता सागर में- श्री कृष्ण उपदेश में ज्यों-ज्यों कोई नीचे उतरा त्यों-त्यों उसकी जिज्ञासा और बढ़ती गई। श्री परमहंस रामकृष्ण कहा करते थे, गीता एक उद्यान की तरह है। पहले साधारण वृक्ष, फिर चन्दन के बाग, फिर सोने-चांदी की खानें और उनके पश्चात हीरे-माणिक मोतियों की भरी खानें। ज्यों-ज्यों जिज्ञासु बढ़ता जाता है, असमंजस में खोया हुआ फिर वापिस लौटने का नाम ही नहीं लेता।

सबसे बड़ी खूबी जो भगवान श्री कृष्ण में थी, कि वे वचन और कर्म के महान तपस्वी, महान योगीराज, केवल उपदेशक नहीं, उनका जीवन भी गीता के मूल्यों से भरा हुआ था। राजनीति तो थी लेकिन छल-कपट नहीं था। दूर-अन्देश तो थे और चतुराई में उनका मुकाबला नहीं किया जा सकता लेकिन नीले आकाश की तरह सदा ही निर्मल और स्वच्छ रहते थे। उन्होंने कभी धनवानों से प्यार नहीं किया, धर्मपरायण निधनों से प्यार किया। धर्मावतार होने के नाते उन्हें धर्म ही श्रेष्ठ था। वे धर्म परायण जीवन पर अपना आप न्यौछावर कर देते थे। श्रीमद्भागवत में उनका कथन है कि मैं सौ जन्म तो क्या हजारों जन्म अपने प्रेमियों के प्रेम के लिए बिक जाने को तैयार हूं। कितना उज्जवल जीवन होगा जब मनुष्य रूप में वे इस प्रकृति में, इस धरती पर सबसे हिलते-मिलते थे। निर्धन ग्वालों के संग जब खेलते थे, कौन कह सकता था एक दिन संसार इनको सबसे महान योगीराज समझकर पूजा करेगा। राह जाते हुए छेड़खानी की भी कोई हद होती है। वे इनमें किसी से मार नहीं खा सकते। मटकी फोड़ देना, दूध पी जाना, माखन चुरा लेना यह सब कौतुक पढ़-सुन कर आश्चर्य होता है कि इनके करने वाला विश्वनायक भगवान श्रीकृष्ण होगा। गुरूदेव के आश्रम में एक आज्ञाकारी शिष्य बनकर दीन और हीन निश्छल मन रखने वाले सुदामा के सखा बन गये और जब सुदामा धर्मपत्नी के बहुत आग्रह करने पर अपनी दुःख भरी कहानी श्रीकृष्ण को सुनाने द्वारका जी में पहुँचे, तो श्रीकृष्ण नंगे पांव आंखों में आँसू लिये जैसे सुध-बुध खो बैठे हों, भागे चले आये। सुदामा को प्रेम पाश में बांध लिया। चन्दन की चौकी पर बिठाकर अपने हाथों से स्नान कराया और द्रवित मन ने तीन लोक उनके श्रीचरणों पर ढ़ेर कर दिये। तब त्याग नहीं देखा, ज्ञान ध्यान की बात नहीं, विशुद्ध प्रेम पर ही रीझ गये, टूटे तन्दुल चटखारे लेकर खाये और अपनी महिमा को गुप्त रखते हुए यही कहा- प्रभु कृपा होगी, दुःख मिट जायेंगे। जल्दी-जल्दी मिलने के लिए आया करना। जब सुदामा वापिस गये तो टूटी-फूटी झोंपडी की बजाये महल माड़ी को देखकर दंग रह गये। मित्रता का स्वरूप बताते हैं कि अपना आप लुटा दो लेकिन जताओ नहीं।

हर वक्त साथ रहने के बावजूद पाण्डव भी उनकी परख न कर सके, कौरवों ने तो क्या करनी थी? अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण के नीतिवान होने पर बहुत गौरव था। वे उनकी मित्रता पर अभिमान भी करते थे लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि श्रीकृष्ण के अन्दर स्वंय आनन्दकन्द सच्चिदानन्द भगवान् विराजमान हैं और कृष्ण और ईश्वर कोई दो स्वरूप नहीं, एक ही है।

भला हो कुरूक्षेत्र की रणभूमि का कि पहले अर्जुन को फिर अर्जुन के माध्यम से सारे संसार को पता चला कि भगवान श्रीकृष्ण धर्म-मूर्ति हैं। रणभूमि में अर्जुन कोई ब्रह्म उपदेश लेने के लिए नहीं गया था। साधारण बुद्धि

मोह-माया के द्वन्द्व में पड़ गई। भ्रम के मारे अर्जुन ने कहा- मैं नहीं लड़ूंगा और तब बन्द कली की एक-एक पत्ती खिलनी शुरू हुई और गीता के स्वरूप में महकता हुआ फूल बनकर सारे संसार को न मिटने वाली खुश्बू दे गई। तुम्हें लड़ना चाहिए, लड़ना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम योद्धा हो, कायरता तो कलंक है। इन शब्दों के साथ गीता के उपदेशक ने अर्जुन को वह उपदेश देना शुरू किया। संसार में जिस किसी ने भी उसको पढ़ा, मोहित हो गया। भारत भूमि ही क्या, संसार में कोई ऐसा देश नहीं है जहां भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश न पहुँच पाया हो। जर्मन फिलास्फर शोपन हावर ने कहा था- सारी दुनिया का धर्म ज्ञान एक तरफ, अकेली गीता एक तरफ ।

गीता पर असंख्य अनगनित टीकांए और भाष्य लिखे जा चुके हैं। बड़े-बड़े महान धर्माचार्यों ने गीता पर बहुत ही सुन्दर माला तैयार की। गीता से हरेक ने अपनी बुद्धि, अपनी वृत्ति, अपने स्वभाव और अपनी शिक्षा के अनुसार मन चाहा उपदेश ग्रहण किया। गीता में सब कुछ तो है। महासागर की अनगिनत तरंगों की तरह गीता में भी बहुमूल्य ज्ञान रत्न भरे पड़े हैं। जो जिसको अच्छा लगा उसको उसने पसन्द किया। किसी ने ज्ञान मार्ग को प्रधानता दी। भगवान् श्रीकृष्ण गीता का सार अठाहरवें अध्याय में देते हुए अर्जुन से कहते हैं कि सत्य के भिन्न-भिन्न स्वरूप मैंने तुम्हारे सामने रखे हैं। जिसे तुम चाहते हो, अपना लो। अर्जुन का उत्तर था कि मैं तो पहले से ही बौखला गया हूँ। आप ही बतलाइए इन सबका सार तत्व क्या है? भगवान श्रीकृष्ण जी कहते हैं- सब धर्मों को छोड़ मेरी शरण में आ जाओ। देखा जाए तो यही शरणागति का उपदेश संसार भर के उपदेशों का बीज मन्त्र बन गया। बुद्ध, जैन, ईसाइ और इस्लाम यही सब धर्म हैं। इन सबका निचोड़ अपने आपको सम्पूर्ण रूप से प्रभु अर्पण करो।

श्री रामकृष्ण ने भगवान् श्रीकृष्ण और गीता की महिमा गाते हुए कहा था- गीता के अक्षरों को उल्ट दो तो त्याग बन जायेगा। अपने आप का त्याग, अपनी बुद्धि की चतुराई का, मान-बड़ाई का, धन-धाम का, कर्म-धर्म का जो कुछ भी अपना समझते हो बल्कि यूं कहो जिसे भी अपना कहते हो त्याग दो, यह है गीता का अर्थ । अपने आपको एक अबोध बालक की तरह प्रभु चरणों में, श्री गुरूदेव के चरणों में सौंप दो। हार होगी या जीत होगी, इस सोच से बहुत ऊंचे उठकर अपने आपको उनके हवाले कर दो- इसे समर्पण कहते हैं।

सेन्ट फ्रान्सिस से किसी ने पूछा था समर्पण की कोई दिल को छू जाने वाली तस्वीर दिखाइए। एक दिन सेन्ट फ्रान्सिस अपनी शिष्य मण्डली को साथ लेकर कब्रिस्तान गये और बोले- इसके मृतक शरीर पर रेशमी कपड़े न होते, चीथड़े होते तो क्या यह मुर्दा बोलता? कोई कब देगा, क्या देगा, कितना देगा ये मुर्दा कोई सवाल करता है। धूप में रखो, छांव में रखो, छत के नीचे रखो, खुले मैदान में रख दो, उसे कोई परवाह नहीं। कोई ठोकर मार जाये, कोई पांव तले रोंदता हुआ ऊपर से गुज़र जाये इसके मुंह से शिकवा और शिकायत का कोई हर्फ नहीं निकलेगा। समर्पण का जीवन ऐसा होता है। हम और आप अत्यंत भाग्यशाली हैं कि हमें ऐसे गुरूदेव मिले जिनका अपना समर्पण का जीवन था। जो सदा समर्पण की शिक्षा ही देते रहे।

एक बार हजूर गुरूदेव जी से कृष्ण जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर एक भक्त ने विनम्रता से प्रश्न पूछा था- महाराज, इस शुभ अवसर पर आपका हमारे लिए क्या सन्देश है? आपने फरमाया था- गीता पढ़ने से नहीं, गीता पर अमल करने पर जितना ज़ोर लगायें, जीवन उज्जवल हो जायेगा। सब बन्धनों से मुक्त आनन्द का भण्डार बन जायेगा।



अध्याय - 18

जब तक जीवन में क्रान्ति नहीं आयेगी, जप-तप, यज्ञ-हवन और तीर्थ यात्रा से कुछ नहीं बनेगा। इस गुरू प्राप्ति से क्या लाभ, जिसके बाद भी दिल ने पिघलना न सीखा, आंखों ने रोना न सीखा।

शास्त्रों में कथा आई है कि ईश्वर ने जब पृथ्वी बनाई तो वह हिल रही थी। तब उन्होंने उस पर बड़े-बड़े पर्वत खड़े कर दिए और पृथ्वी का हिलना बन्द हो गया। पर्वतों की शक्ति को देखकर देवता हैरान रह गए। उन्होंने ईश्वर से पूछा कि प्रभु, क्या पर्वत से भी अधिक शक्ति रखने वाली कोई वस्तु आपने पैदा की है। हां, ईश्वर ने उत्तर दिया। लोहा पर्वत को तोड़ सकता है। क्या लोहे से भी अधिक कोई शक्तिशाली वस्तु है? हां, अग्नि, जो लोहे को पिघला सकती है ईश्वर ने उत्तर दिया । तो क्या अग्नि से बढ़कर कोई शक्तिशाली वस्तु है? देवताओं के प्रश्न पर ईश्वर ने कहा- पानी। पानी अग्नि को बुझा सकता है। पानी से अधिक शक्ति किस में है। ईश्वर ने कहा- हवा में, वायु जो पानी में बहाव (गति) पैदा करता है। फिर तो निश्चय ही वायु से बढ़कर कोई भी शक्तिशाली वस्तु नहीं होगी, देवताओं ने प्रभु से प्रश्न किया। ईश्वर ने कहा- नहीं, वायु से भी अधिक शक्ति रखने वाली एक वस्तु है। वह क्या है? देवताओं ने पूछा। प्रभु बोले- और वह है मनुष्य। विशेषकर उस समय मनुष्य की शक्ति असीम हो जाती है, अनन्त हो जाती है जब वह अपना समस्त सुख सम्पूर्ण तौर पर संसार में बाँट देता है और मेरे गुणों के साथ तन्मयता पैदा कर लेता है।

यह तो प्रभु की अपार कृपा है कि हमें यह उपदेश गुरूदेव से नाम-दान लेने के शीघ्र बाद सुना दिया गया और बता दिया गया कि जो कुछ ईश्वर है वही जीव है। हम में भी वही गुण और वही शक्ति जाग सकती है। यदि हम अपने अहंकार को, अपनी ममता और अहंता (अभिमान) को गुरू चरणों में रख दें और अपने सम्पूर्ण सुखों को संसार में बांटना शुरू कर दें। पानी और बुलबुले में जो भेद है, आग और प्रकाश में, सूरज और गर्मी में, बर्फ और ठण्डक में जो भेद है, वही जीव और जीवन देने वाले प्रभु में है। बुलबुला पानी में बनता है, पानी में तैरता है और अन्त में फूटकर पानी में समा जाता है। बून्द जब तक सागर से अलग है तड़पती रहती है, वह

स्कून व शान्ति के लिए बेचैन रहती है। महासागर में मिली बूंद में तूफान कहाँ, वहाँ तो शान्ति ही शान्ति है। अनगिणत नदियों का जलप्रवाह आ गया तो भी सागर की लहरें शान्त रहीं और जब न जाने कितनी नदियों का पानी भाप बनकर नीले गगन में बादलों की सूरत (शक्ल) बनकर के उड़ने लगा, तब भी वह अशान्त नहीं हुआ। "जो ईश्वर है वही मैं हूँ" का ब्रह्म शब्द गुरू वाक्य मनुष्य को यही उपदेश देता है कि हम अपने जीवन को सीमित न करें। असीमित बनायें, अनन्त बनायें। अनन्त और असीम बनने के लिए जो परिश्रम किया जाता है, उसे हम साधना कहते हैं। यह साधना का प्रताप है कि मनुष्य महापुरूष बन जाता है, देवता बन जाता है, जीवन-मुक्त ब्रह्मज्ञानी बन जाता है, एक ऐसे जीवन को पा लेता है जिस जीवन को पानी गला नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, हवा उसे उड़ा नहीं सकती, तलवार काट नहीं सकती।

स्वामी रामतीर्थ ने एक दिन कक्षा में पढ़ाते हुए बोर्ड पर एक लकीर खींची और कहा कि इस लकीर को छोटा करो। एक लड़का उठा। उसने लकीर को एक तरफ से मिटाने के लिए हाथ उठाया। स्वामी जी ने कहा- मैंने लकीर को छोटा करने के लिए कहा है, मिटाने के लिए नहीं कहा। सब लड़के सोच में पड़ गए। स्वामी जी ने इस लकीर के पास ही एक बड़ी लकीर खींच दी और कहने लगे कि देखो यह लकीरें बताती हैं कि जीवन में महान बनने के लिए किसी दूसरे जीव को मिटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके लिए आपको अपने जीवन में महान कार्य करने पड़ेंगे।

महान कार्य करने से ही महान जीवन बनता है। महापुरूष की महानता के पीछे उनकी कठोर तपश्चर्या छिपी होती है। जितना बड़ा वृक्ष, उतनी गहरी उसकी जड़ें धरती में छुपी होती हैं। इनकी महानता तो सबको नज़र आती है परन्तु जड़ रूपी वो साधना कहां नज़र आती है जिसके बल-बूते पर यह परवान चढ़े। महापुरूष या सतगुरू की यह कृपा क्या कम है कि वो अपनी सफलता और कामयाबी का अनमोल गुर (रहस्य) हमें बता देते हैं। जिस रहस्य की बदौलत (कारण) वो साधारण से व्यक्ति होने के बावजूद देखते ही देखते प्रगति करके कहाँ से कहाँ पहुँच गये।

जिस तरह हम महान बने हैं आप भी बन सकते हो परन्तु शर्त यह है कि जो साधन हमनें अपनाए, जो तप हमने किया, जो योग हमने कमाया, आप भी उसे अपनाओ। महापुरूषों का यह उपदेश कहीं साधनायुक्त होने के लिए प्रेरणा देता है, परन्तु हम केवल महापुरूषों की कथा-कीर्तन, भजन-उपदेश और व्याख्या, तथा सत्संग सुन लेने, किसी मन्दिर या दूसरे धर्म-स्थान तक रस्मी तौर पर जाने और थोड़ी बहुत सेवा कर लेने को ही सब कुछ समझ लेते हैं और न कठिन तप करते हैं, न कोई त्याग करते हैं। अपने अमली जीवन में कोई परिवर्तन पैदा नहीं करते। गंगा के निर्मल प्रवाह को तीर्थ समझकर स्नान करते हैं, उस गंगा जल को मूर्तियों पर चढ़ाते हैं, मगर पत्थर की तरह बरसों के बाद भी हम देखेंगे कि यह सब कुछ करने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। पत्थर की तरह खुश्क बने रहे। जीवन में थोड़ा सा भी परिवर्तन न ला सके और जो दीवार हमें मंजिल तक पहुंचाने से दूर-दूर रोके हुई थी, उस दीवार को तोड़ना और गिराना तो दरकिनार उसे उल्टा और भी ऊँचा करते जाते हैं।

जिन्हें हम आदर्श जीवन जानकर पूजा करते हैं, उनमें किसी भी सत्पुरूष के जीवन को देख लें, एक बात सब ज्योतियों में मिलेगी कि उनकी महानता का रहस्य था- त्याग, वैराग्य, प्रेम और सेवा। बार-बार उन्होंने एक ही उपदेश को हमारे सामने दोहराया और यह बात हमारे दिल और दिमाग पर बिठाने का प्रयत्न किया कि जीवन देने के लिए है, लेने के लिए नहीं। जिन्होंने दूसरों के हित के लिए, दूसरों के जीवन के लिए और दूसरों के सुख के लिए, दूसरों के कल्याण के लिए सब कुछ लुटाया, सब कुछ न्योछावर किया, आज उनकी पूजा होती है, उनकी याद आते ही विश्वास और श्रद्धा से अपने आप सिर झुक जाता है। बदले में क्या मिलेगा? कितना मिलेगा? कब मिलेगा? यह सब प्रश्न उनके मन में उठते ही नहीं। उनके किसी भी काम में भूले से भी स्वार्थ की ज़रा सी छाया नहीं होती। जब तक सुरमें की तरह पत्थर के नीचे पिस नहीं जायेंगे तब तक सच्चे प्रीतम की आंखों तक नहीं पहुंच सकते। जब तक मोती की तरह लोहे की तार से छेदे नहीं जाते, तब तक प्यारे के गले की माला में जगह नहीं पाते। जब तक बांसुरी की तरह न केवल तमाम इच्छाओं से खाली नहीं हो जाते और जब तक गर्म आंच से इसमें सुराख नहीं हो जाते, उस कृष्ण रूपी भगवान का स्वर-नाद नहीं बन सकोगे। जब तक कलम की तरह अपना सिर चाकू के नीचे नहीं रख दोगे, इस प्यारे की प्यारी उंगलियों तक नहीं पहुँच सकते। कोई भी संगीतकार साज़ को हाथों में लेकर जादू भरे नगमें नहीं निकालता जब तक बाजा हो या बांसुरी अपनी प्रत्येक आवाज़ से खाली नहीं हो जाती।

उपासना, प्रार्थना, मुंह की, होंठ की, जुबान की मोहताज़ नहीं। इसका वास्तविक स्थान दिल है, हृदय है। जुबान पर अमृत हो मगर हृदय में विष हो, तो ज़बान का अमृत भी ज़हरीला बन जाता है। हृदय को सम्पूर्ण रूप से तमाम विकारों से खाली कर देने, सच्चे दिल से दूसरों के सुख, दूसरों के आनन्द को अपना सुख, अपना आनन्द समझने पर ही सच्चा सुख और सच्चा आनन्द मिल सकता है। दूसरों के जीवन का मान करने वाले अपने जीवन का मान करवा सकते हैं। इन्द्रिय-रस, लोभ-रस, शरीर के भोग, इनकी खातिर किसी की हत्या न करना, बुरे विकारों का त्याग कर देना, शुद्ध वैष्णव आचार, व्यवहार और विचार जब तक धारण नहीं किए जावें, उस अनन्त वैष्णव गुरू देव की कृपा को हम कैसे ग्रहण कर सकेंगे।

ऊषा-किरण को छू जाने से जैसे काले पत्थर सोने की तरह जगमगा उठते हैं, इसी तरह हमारा जीवन भी गुरूदेव की कृपा पात्र बन जाने के बाद जगमगाहट भरा चमकीला और उज्जवल बन जाना चाहिए। जब तक हमारे और हमारे प्रीतम के दिलों में जो दूरी है, मिट नहीं जाती, हम उनके समीप नहीं हो सकते। भक्ति का मतलब, राम उपदेश ग्रहण करने का असली फल इन तमाम दूरियों को समात कर देना है जो हमारे मन, वचन, कर्म में और वह हमारे गुरूदेव के मन, वचन और कर्म में है। गुरूदेव तो सदा यही कहते रहे कि मुझे पाकर तुम तुम न रहो, मेरा स्वरूप बन जाओ, मेरा जलवा बन जाओ, मेरा चमत्कार बन जाओ, मेरे से जुड़ जाओ और फिर मुझ में ही समा जाओ । पूर्ण कल्याण तो सम्पूर्ण आत्म-समर्पण में है। शरणागति ऐसी हो कि भक्त को देखकर भगवान के सामने सर झुक जाये।



अध्याय - 19

कैसे कहूं? किन शब्दों का सहारा लूं, मैं असमंजस में घिरा किसी निश्चय पर नहीं पहुंच रहा। स्मृतियों की एक बारात सी मन के नेत्रों के सामने से विलक्षण झांकियां लिए हुए गुजर रही है। चिन्तन शिखर पर खड़े होकर झांक कर देखा तो लगा कि जहां तक याद की पहुंच है, जहां तक दुर्बल स्मृति अपने कांपते हुए हाथों को फैला सकती है, उससे भी कहीं परे यादें ही यादें नये-नये चेहरे लेकर खड़ी हैं। मन के राजपथ पर इन झांकियों में खोया हुआ दर्शक मन यह समझ ही नहीं पा रहा कि यह क्या हो रहा है? बरसों की भूली-बिसरी कहानियां कितने मासूम से चेहरे लेकर आज सन्मुख खड़ी हैं। हर चेहरा बोलता है, हर आंख में यादों के दीप झिलमिला रहे हैं, हर होंठ फड़क फड़क कर जैसे कुछ कहना चाह रहा है। यही नहीं धड़कते दिलों की धड़कन तक सुनाई दे रही है।

वे अतीत थे-त्रैगुणातीत, उनकी लीला भी अतीत दिखाई दे रही है। शरीर के साथ-साथ रहे तो आंखे समझ न सकी। कई बार नेत्रों ने हृदय का साथ न दिया और कई बार हदय ने आंखो का ऐतबार न किया। बुद्धि के भरमाने की कोई हद न रही। शरीर के हर एक अंग ने सत् तत्व को जानने और परखने में भयानक भूल की। जो देखा, जो सुना मन्द बुद्धि ने झूठ और कपट की कसौटी पर परखना चाहा। भला जब उन्हें पास रहते हुए न पहचान सके, उस वक्त जब वार्तालाप करके शंका समाधान किया जा सकता था, मेरे दिल की कोठरी पर ताले पड़े रहे। कई बार चाहा ये सारी बातें पूछ लूंगा। कई बार निश्चय और साहस के साथ उनके चरणों के समीप पहुंचा भी पर ये क्या हुआ? सूर्य मण्डल की एक हल्की सी किरण उनके मुखारविन्द से, उनके दिव्य नेत्रों से, उनके दमकते हुए ललाट से निकली और मेरे मन के जितने भी अन्धेरे थे, उड़ गये। सत्य के जीवनमय प्रकाश ने मेरे भ्रमों, मेरे वहमों, मेरी गलत फहमियों, मेरी कटु-भावनाओं सबको एक क्षण में भस्म कर दिया। जो पूछना चाहा, पूछ न सका। जो जानना चाहा, जान न सका। ये क्या हुआ? सपने में आंखें खुली, सपने में ही आंखें बन्द हो गई। कुछ-कुछ देखा, कुछ न देख पाया। कुछ-कुछ सुना लेकिन वह तत्त्व जिसे आज तक महान से महान ग्रन्थ भी शब्दों का रूप न दे सके, वह मेरी आंखों से ओझल रहा।

क्या यह स्वप्न था?तब तो नहीं सोचा था लेकिन आज उनकी कृपा की पुरवाई चली तो मेरे मन की बन्द कली मुस्कराई। एक महक सी निकली, ज्योति में नहाई हुई महक जिसने धीरे से अपनी मूक भाषा के साथ कहा - तुम स्वप्न की बात करते हो, क्या स्वप्न केवल उसी वक्त आता है जब आंखें मूंद कर निद्रा की गोद में शरीर सोया होता है। भौतिक संसार की रात्रियों में जो स्वप्न आया करते हैं, वह तो सुप्रभात में पूर्व से उगने वाले सूर्य की किरणों को देख कर टूट जाया करते हैं। लेकिन अज्ञानता की निद्रा में सोया हुआ मन जाने- अन्जाने पन में जो स्वप्न देखता है, वह बड़ी मुश्किल से छूटा करते हैं। वह स्वप्न बन्द आंखों में आते हैं परन्तु भ्रान्ति के स्वप्न जागती आंखों में दिन के समय जब सूर्य पूरी शान के साथ चमक दमक रहा होता है, मन के स्थल पर आया

करते हैं। हर सोये हुए को तो जगाया जा सकता है लेकिन जो देखता हुआ भी स्वप्नों में खोया रहे, भ्रम - भ्रान्तियों की जंजीरों के साथ अपनी कल्पनाओं को बांधे रखे, विषय वासनाओं की निद्रा में सोया रहे, उसको कौन जगाये?

अदृश्य चकाचौंध सी नूरानी सूरत वाले श्री महाराज जी के यह शब्द बार-बार मन से टकराते हैं। स्मरण आया कि उन्होंने कितनी ही बार अपने सत्संग में मन की इस भ्रान्ति के बारे में कितनी रोचक कथायें सुनाई। मन की छल कपटता को देखिए कि उन सत्संग प्रवचनों से कोई शिक्षा प्राप्त न की और उसे दूसरे व्यक्तियों की कहानियां समझ कर एक कान से सुन कर दूसरे कान से निकाल दिया।

मैं सोच में डूबा यह फैसला नहीं कर पाया कि सत्य क्या है, असत्य क्या है, तभी चौंक कर सुना कोई बहुत ही मधुर भाषा में कह रहा था - सत्य और असत्य की परख बड़े-बड़े योगी, सन्त और तपस्वी न कर पाये फिर तुम कैसे कर पाते? जब नारद जी जैसे हार गये, जब अष्टावक्र जैसों ने अपनी बुद्धि को पराजित देख लिया, जब चौबीसों घन्टे साथ रहने वाले अर्जुन जिस सत्य और असत्य की परख न कर पाये फिर तुम्हारी क्या मजाल कि तुम सही नतीजे पर पहुंच सकते और ठीक फैसला करते। मैंने हंस कर कहा - गुरूदेव, यह तो आपकी डाली हुई माया थी जिसने मुझे भरमा दिया। वह करूणा की मूर्ति हंस पड़ी, कहने लगी - माया क्या है, पहले यह बता दो फिर मैं बताऊंगा कि माया से परे कौन है? मैं निरूत्तर हो गया। कहने लगे - ज़रा सा अन्धेरा हो तो रस्सी सांप नज़र आती है। रात को आंख खुली, खिड़की के शीशों पर बाहर के पौधों की परछाईयां देखकर भयभीत होकर तुम रोने लगे। डर गये कि सांप ने तुम्हे डस लिया। हड़बड़ा कर बत्ती जलाई। रौशनी में देखा तो भय दूर हुआ। गुरू आते ही इसलिए हैं कि मन के अन्धेरे को दूर करें। पर तुम जैसे श्रद्धालुओं का क्या करें, गुरू तो मुझे बनाया, गुरू गद्दी पर मुझे आसीन कर दिया। शरणागत होने की शपथ भी ली। पर सत्य तो यह है कि स्वप्न, भ्रान्तियों, तृष्णाओं, अपनी वासनाओं और अपने अंहकार के अन्धेरों से बाहर न निकल पाये। केवल शरीर को शरीर के सामने ढेर कर दिया। मैंने तुम्हे सौ बार कहा था- गुरू तत्व को समझो और गुरू तत्व शारीरिक रूप-रेखा का नाम नहीं। यह शरीर कुछ काम करने के लिए मिला था, तुम गाड़ी पर रीझ गये, गाड़ीवान को भूल गये। मेरे शरीर के रथ पर तुम मोहित हो गये। इतना प्यार तो मैं भी अपने शरीर से नहीं कर पाया। मैं कहीं भी गया तुमने मेरे शरीर की इस तरह से पूजा की जैसे इस शरीर में राम हो, कृष्ण हो, नानक हो। पर यह चन्द घड़ियों की पूजा थी। मैं तुम्हारी आंखो से ओझल हुआ तो तुमने मुझे मन से ओझल कर दिया। मैंने तारीक अन्धेरों को मिटाना चाहा, परन्तु तुमने मेरी ही स्मृतियों को तारीक अन्धेरों की कोठरियों और शहरी गुफाओं में डाल दिया। मेरे बड़े-बड़े चित्र बनवाये गये, एक-एक रंग देखकर मैं खुद दंग रह गया। जो मैं नहीं था, वह बना दिया गया, जो मैं था, वह छिपा दिया गया। तस्वीरें बनवाने वाले भूल गये कि हर तस्वीर में भरा हुआ रंग पेन्टर और आर्टिस्ट का था इसमें तुम्हारी कल्पना तो शामिल नहीं थी। कितना अच्छा होता -

गुरू की मूरत मन में ध्यान।

कहीं मेरा ऐसा चित्र तुम्हारी भावनाओं के साथ श्रद्धा-निष्ठा के रंग भर कर बनाया जाता। तुम यह जानते हो हर रंग बाज़ार से खरीदा जा सकता है लेकिन श्रद्धा और निष्ठा का रंग भरने के लिए दिल का खून करना होता है और जिगर को लहू-लुहान करना पड़ता है। मेरे जलूस निकाले गये, बाज़ारों में जैकारे लगाये गये तब भी मैंने देखा यह सब कुछ करते हुए तुम सोये-सोये रहते हो मेरे इस शरीर को ही तुमने सब कुछ समझे रखा।

विश्वास करो वह इस मोह-निद्रा की रात्रि से जाग गये, जिन्होंने मुझे अपने हृदय मन्दिर में आसीन कर लिया। वे आज भी मेरे साथ जुड़े हुए हैं और मैं उनके साथ जुड़ा हुआ हूं। मेरे शरीर की मृत्यु मेरी मृत्यु नहीं थी। मिट्टी का हर खिलौना टूटा करता है, पर वह जो सत्य था, अमर है, अजर है, अविनाशी है, जिसे मृत्यु खा नहीं सकती, आग जला नहीं सकती, वायु बहा नहीं सकती। मेरी वह परम सत्ता तुम्हारे अंग-संग घूम सकती है। तुम रो-रो कर कहते हो कि मैंने पागलों की तरह देखना चाहा, पर आप नज़र नहीं आये। पर मेरे प्यारे, यह बताओ मेरे शरीर को ही तलाश कर रहे हो न। सच तो यह है कि जितनी निराशा तुम जैसे शरीर के पुजारियों को देखकर हुई जो मेरे जगाने के भरसक यत्न के बावजूद अपनी मोह-ममता की, भ्रान्ति की नींद को तोड़ न पाये। तुमसे गिला और शिकवा नहीं, तुम्हें प्यार का आश्वासन देता हूं कि मैं आज भी तुम्हारे साथ हूं। मैंने कहा था जिस परम तत्व का मैं सन्देश वाहक हूं, वह परम तत्व तुम्हारे अन्दर भी है। जहां तक आत्मा का सम्बन्ध है, हम दोनों एक हैं। अविनाशी महाप्रकाश का अंश। भेद तो केवल यह है कि मैंने गुरूदेव की कृपा का पात्र बन कर भ्रम की हर दीवार को तोड़ दिया। परन्तु आप कल्पित सीमाओं से बाहर न निकल पाये। तुम कहते हो कि मैं न बन्द आंखों से दिखाई देता हूं न मैं खुली आंखों में समाता हूं। मेरे प्यारे, मन के मुंदे नेत्र खोलकर मेरी ओर निहारो, तुम मुझे अपने सन्मुख साक्षात् पाओगे। मैं मरने वाला नहीं हूं। वह जो मरने से परे है, वह मैं हूं। यह तुम किस वहम में खो गये कि मैं चला गया। जब तक संसार बाकी है, जब तक चांद और सूरज जिन्दा हैं, मैं तुम्हारे साथ रहूंगा। मुझे देखो, मुझे पहचानो ।

स्मृतियों के इस हजूम में संसार के इस शोर-ने-गुल में वह अलबेला प्रीतम जिसके साथ मेरी आत्मा का जन्म जन्मांतरों का सम्बन्ध है, आया, कब बातें कर गया मुझे याद नहीं। मैं आज भी उसी प्रकाश में, उसी महक में जी रहा हूं जो उनके चरण छूते ही मुझे प्राप्त हुई थी।



अध्याय - 20

चिन्तन के साथ सेवा जोड़े बिना साधना लंगड़ी रह जायेगी। ज्यों ज्यों काम बढ़े, ज्यों ज्यों कठिनाई अधिक आए, त्यों-त्यों ईश्वर कृपा मांगो । समर्पण वही स्वीकार होगा जिसमें साधक की कोई इच्छा शामिल नहीं होगी।

स्वभाव से ही मैं कुछ एकान्त वासी हूं लेकिन गुरूदेव और ईश्वर की इच्छा के अनुसार काम करने के लिए हमें अपनी इच्छाओं का त्याग करना पड़ता है। ईश्वर जहां कहीं भी हम से कोई काम करवाना चाहे, जो कार्य सौंपे पूरे साहस, लगन और प्रेम के साथ इसे करना चाहिए और ईश्वर के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए कि वो हमें रास्ता बताते रहें।

ईश्वर प्राप्ति और ईश्वर के साथ अखण्ड एकपन की प्राप्ति के लिए जो साधक परिश्रम कर रहे हैं उनके लिए दिव्य इच्छा शक्ति के आगे आत्म समपर्ण करना बेहद आवश्यक है। मेरे जीवन में ऐसे मौके आए जब मैंने, जो कुछ गुरूदेव ने कहा, अपने आप को इसके असमर्थ समझ कर उनसे कहा कि वो यह जिम्मेदारियां किसी और के कन्धे पर डाल दें। तब उन्होंने समझाया कि मेरा काम इन फरायज़ को प्रसन्नता पूर्वक और साहस के साथ पूरा करने का फैसला करना है, हिम्मत वो देंगे जिन्होंने जिम्मेदारियां सौंपी हैं।

सबसे अच्छा रास्ता यह है कि जो भी कार्य हमें सौंपा जाए उसे यह कहकर कबूल कर लें कि प्रभु इच्छा के आगे सर झुकाता हूं। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि वो काम जिससे चाहेंगे करवा लेंगे। सुखी जीवन और आध्यात्मिक उन्नति की इस कुंजी को हमें गुम नहीं कर देना। ईश्वर का ध्यान, इनसे हर समय बातचीत करते रहना और पूरी हिम्मत के साथ बख्शे हुए, सौंपे गए कार्य को निभाने के बाद, उसके फल की इच्छा और कामना को उनके श्री चरणों में चढ़ा देने की आदत मज़बूत बनाने के लिए, हमें लगातार कड़ा परिश्रम करना होगा। और कितनी भी कठिनाई क्यों न पड़े। याद और ईबादत के लिए तर्क नहीं करना चाहिए। गुरूदेव बार बार कहा करते थे भजन अभ्यास किसी कीमत पर न छोड़ो। सुखी जीवन जीने के लिए आवश्यक है कि सब कार्य करते हुए भजन अभ्यास करना चाहिए।

अपूर्ण मन से चिन्तन करना और सत्संग में जाकर शान्ति और सुख के लिए व्याख्यान सुन लेना ही काफी नहीं। बिना सच्ची जिज्ञासा और धर्म उत्साह के हम यूं ही बैठे रहते हैं और कभी-कभी सोचते हैं कि इधर किस लिए लगे थे, हमें क्या मिलेगा और क्या प्राप्त हुआ है। ऐसी हालत का सामना प्रत्येक साधक को किसी-न-किसी समय अवश्य करना पड़ता है। साधक के मन में जब ऐसे प्रश्न जागें तो उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राप्ति का सम्बन्ध चिन्तन और सेवा से है। अध्यात्म पथ पर वही साधक सफल होता है जो चिन्तन के साथ साथ सेवा का योग दान भी करता है। बहुत काम हो तो चिन्तन करने से मन और शरीर में नई सफूर्ती आती है। चिन्तन और सेवा उत्साह पूर्वक करके ही साधक सफलता को प्राप्त कर सकता है। यह कहना सरासर गलत है कि ईश्वर चिन्तन के लिए हमारे पास कोई समय नहीं है। हमारे पास कितना फालतू समय होता है जो हम यूं ही फालतू गवां बैठते हैं। सुबह-सुबह सवेरे उठने से लेकर रात को सोने तक यदि हम सारे समय के विचारों और कामों का निरीक्षण करें तो हम इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि हमने कितना ही समय यूं ही गवां दिया यद्यपि यही समय हम ईश्वर चिन्तन में लगा सकते थे।

ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध पक्का बनाने के लिए हमें तीन संकल्प धारण करने होगें -

१. पहला संकल्प यह है कि हम लाज़मी तौर पर भजन चिन्तन पर बैठें।

अपनी उन्नति के लिए हमें यह संकल्प करना होगा - हे भगवन! मैं वचन देता हूं कि मैं कितने ही कामों में, कितनी ही जिम्मेदारियों में क्यों न घिरा हुआ हूं और भले ही थोड़े समय के लिए मेरी रूचि भंग हो गई हो परन्तु में हर रोज निष्ठा के साथ चिन्तन करूंगा।

२. दूसरा संकल्प हमें एकाग्रता लाने के लिए धारण करना होगा। इस का अर्थ है कि जब हम चिन्तन पर बैठें तब एक मात्र उस ईश्वर के विचार के दूसरे सभी विचारों को मन से दूर कर देंगे। चिन्तन भजन का समय चिन्तन भजन में ही लगे और दूसरी कोई बात हमारे ध्यान को अपनी ओर न खींचे। एकाग्रता के लिए सामूहिक कीर्तन और भजन अभ्यास में भाग लेना बहुत लाभदायक होता है। दूसरों के देखा-देखी हमारे विचारों पर भी प्रभाव पड़ता है और फिर वातावरण बहुत गहरा प्रभाव डालता है, लेकिन चिन्तन चाहे अकेले किया जाये चाहे सामूहिक रूप में, केवल एकाकी एकाग्रता ही हमें दिव्य आनंद और दिव्य उपस्थिति के निकट ला सकती है।

३.

तीसरी बात है जो साधक के लिए अति आवश्यक है- वह यह है कि भजन और चिन्तन से उठकर जब हम अपनी दूसरी जिम्मेदारियों को हाथ में लें तब हमें अपने ध्यान को ईश्वर की तरफ रखना और सेवा को ईश्वर की पूजा के रूप में करना चाहिए। जब भी कुछ उलझनें और समस्याएं आपको घेर लें, शीघ्र आंखे बंद करके कहें और पुकारें- क्या ईश्वर आप इस समय भी मेरे साथ हैं और काम करते हुए कहिए- प्रभु जो कुछ करूं आपकी इच्छा के अनुसार हो। मैं इस काम को अपनी पूरी अक्ल, पूरी शक्ति और पूरी एकाग्रता से करूंगा और इसके फल की इच्छा भी आप पर छोड़ दूंगा। सबसे बड़ी यही मनोदशा है। यह मत सोचिए कि दूसरा इस काम को पूरे मन के साथ नहीं कर रहा, तो क्या आप भी इस काम में मन लगाना और परिश्रम करना बन्द कर देंगे। याद रखिए हम उस काम के जिम्मेदार हैं जो काम हमने किया है। हम दूसरों के काम के लिए जिम्मेदार नहीं है। ईश्वर यह देखते हैं कि हम चिन्तन और सेवा कितने समर्पण से करते हैं। उस साधक को ईश्वर अधिक प्रेम करते हैं जो निष्ठापूर्वक चिन्तन करता है वह प्रसन्न मन से सेवा करता है। कोई प्रशंसा करे तो क्या और कोई निन्दा करे तो क्या और उसके लिए यह प्रार्थना कीजिए - प्रभु, मैं आपकी सन्तान हूं, न प्रशसां चाहता हूं और न मान की चेष्ठा रखता हूं, मैं केवल तुमको प्रसन्न करना चाहता हूं। यदि सारा जगत भी मुझसे प्रसन्न हो जाए लेकिन आप प्रसन्न न हों तो भगवन में कहीं का नहीं रहूंगा और चाहे सारा संसार मुझसे बे-मुख हो जाए लेकिन मुझे आपकी प्रसन्नता मिल जाए तो मेरा जीवन धन्य हो गया। ईश्वर और साधक के बीच ऐसा सम्बन्ध जुड़ जाना चाहिए।

ऐसा सम्बन्ध उस ईश्वर से जुड़ जाए इसके के लिए हमें उन सब आदतों और मसरूफियतों का त्याग कर देना चाहिए जिन से समय ह बेकार नष्ट होता है। फजूल समय गुजारना हमें उससे दूर कर देता स है। इस तरह जीवन धर्म निष्ठ बनाने की साधना मर जाती है। ह गुरूदेव ने हमें हर हालत में ईश्वर पर निर्भर होने की शिक्षा

दी। जब गुरूदेव श्री ठाकुर जी महाराज ने शरीर छोड़ दिया तब मैंने महसूस किया कि गुरूदेव और ईश्वर का आर्शीवाद पाने, इनका निर्देश पाने के लिए गहरी प्रार्थना पर ही भरोसा करना होगा और मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि जब प्रार्थना की गहराईयों में उत्तरा तो गुरूदेव की कमी या ईश्वर कृपा से वंचित रहने का शिकवा तक बाकी न रहा। बहुत बार जब हम ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करते हैं तो इसमें एक दोष रह जाता है। हम उनके चरणों में प्रार्थना करते हैं कि प्रभु यह कार्य इस तरीके से हो जाना चाहिए। आप भले इसे प्रार्थना कहें, मैं तो इसे प्रार्थना नहीं कह सकता। आप तो ईश्वर को हुक्म दे रहे हैं कि वो इस काम को आपकी मर्जी और इच्छा के मुताबिक करे। सच्ची प्रार्थना तो वही होती है जब आप सब इच्छाओं को त्याग कर सब कुछ ईश्वर अर्पण करते हैं और उन पर कोई कैद या पाबन्दी नहीं लगाते । ऐसा ईश्वर पर भरोसा, ऐसा ईश्वर समर्पण ही सच्चे और पवित्र आध्यात्मिक जीवन का आधार है।



अध्याय - 21

हर्ष उल्लास की महकती हुई अथखिली कलियों की शर्मीली मुस्कराहट के साथ नववर्ष उदय हुआ है। मानिए सच्चिदानन्द परब्रह्म परमेश्वर के हमारी कमियों, त्रुटियों, पापों, दुर्व्यसनों को अनदेखा करते हुए अहेतुकी कृपा का भण्डार खोला है और अधम से अथम पाप ग्रस्त जीवों को भी एक नये जीवन के निर्माण के लिए नववर्ष की खुशियां प्रदान की हैं। कितने बड़े दयालु हैं वे प्राणदाता, दीन दयाल सच, अगर उनकी कृपा न हो तो हममें से शायद ही कोई जीवन के एक और वर्ष की मोहलत पा सके और बख्शनहार इस तरह से छूट दे दे जैसे ममता की मारी मां मल-मूत्र से लथपथ अपने बच्चे को उठाकर छाती से लगा लेती है। ऐसे दातार क्षमा भण्डार प्रभु की स्तुति किन शब्दों में और किन अक्षरों से की जा सकती है? उनकी दया की कोई अगर हद नहीं तो हमारे भी गुनाह और पापों का कोई शुमार नहीं। ईश्वर की इस करूणा से प्रेरणा लेते हुए जितने भक्तिरस के सन्त कवि हुए हैं, उन्होंने अनुपम भजनों को और अभंगों को जन्म दिया। बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि सम्राट का भजन गाते हुए परमहंस रामकृष्ण पहरों रोते रहते थे। सूरदास के पद सोये हुए मन के अन्दर भक्ति की नई तरंग पैदा करते हैं, जीवन को नई प्रेरणा देते हैं और पथ-भ्रष्ट पथिक को जिज्ञासा के सच्चे मार्ग पर और आगे कदम बढ़ाने के लिए उकसाते हैं।

नववर्ष को आधी रात के वक्त ही लोग खुशी के मारे पागल होकर नाचते हैं, गाते हैं परन्तु जो शुभ अवसर हमें उस विधाता ने दिया था, उसका दुरूपयोग करते हुए उसे शरीर पूजा, व्यसन सेवन और दुराचार के अर्पण कर देते हैं। बिल्कुल उस महामूर्ख अज्ञानी नौजवान की तरह जिसे बाप खून-पसीने की कमाई से जोड़ा हुआ खजाना सौंप दे लेकिन वह दुराचारी मौज बहार उड़ाने में बर्बाद करके रख दे।

नवजीवन के संसार के लिए संसार के सभी सुखों को तिलांजलि देकर एक उसकी प्रभुताई पर भरोसा रखते हुए क्रिसमिस के दिन ही राम कृष्ण मिशन की आधारशिला रखी गई। श्री ठाकुर के बारह शिष्यों ने सारी रात जाग कर पौ फट के समय हवन कुण्ड में अन्तिम आहुत्ति के साथ अपने जीवन की आहुति भी दे दी और नव निर्माण के लिए सिर पर कफन बांध, सिर धड़ की बाजी लगा देने का संकल्प धारण किया। नये धर्म की स्थापना के लिए नहीं, सनातन वैदिक धर्म की ही सुरक्षा के लिए उन्होंने यही दृढ़, संकल्प लिया था। बाद में जब स्वामी विवेकानन्द भ्रमण करते हुए पंजाब आये तो उन्होंने गुरू गोविन्द सिंह की जीवनी से बहुत प्रेरणा ली और "वाहेगुरु जी की फतेह" को मानों अपने जीवन का आदर्श बना लिया। भारत में क्या और अमेरिका में क्या उनके अनेकों पत्रों में अपने गुरूभाईयों को, अपने देशवासियों को धर्म प्रेरणा देते हुए उन्होंने "वाहेगुरू जी की फतेह" के साथ ही अपने पत्र शुरू किये। उस वक्त तक हर पत्र पर "श्री गुरू देवाय नमः" लिखा जाता था, पर अब “वाहेगुरू जी की फतेह" लिखा जाने लगा। अपने एक पत्र में उन्होंने व्याख्या रूप में लिखा था- गुरू उपमा ही ईश्वर उपमा है। गुरू वन्दना ही ईश्वर पूजा है और यही नहीं उन्होंने कहा था कि जिस तरह असंख्य योद्धा यह नारा लगाते हुए, गुरू की जय बुलाते हुए रणभूमि में उत्तर पड़े थे, हमें भी इसी तरह अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी मुश्किलों का सामना करना होगा और तब तक कदम बराबर आगे बढ़ाना होगा जब तक विजय नहीं मिल जाती । छान्दोग्य उपनिषद् के महामन्त्र की उन्होंने हिन्दू फिलास्फी में एक नई रूह डाल दी और ललकार कर कहा-जब तक मंजिल न पा लो, बढ़ते चलो। यह सुनहरी अक्षर किसी एक सन्यासी के लिए नहीं, हर साधक के लिए है। हर साधक इन अमूल्य शब्दों से नई प्रेरणा पा सकता है।

नववर्ष पर हम अपने हृदय की सभी शुभ कामनाएं पढ़ने वाले सभी गुरू प्रेमियों और धर्म अनुरागियों को देते हैं और उनसे कहेंगे कि मन्त्र लेने, गुरू धारण करने का अर्थ केवल यही नहीं कि हम आराम से सो जायें और सब कुछ यहां तक कि साधना करने का कार्य स्वयं करने की बजाय गुरूदेव पर ही छोड़ दें और किसी अपंग की तरह गुरूदेव के लिए बोझ बन जायें। इस मृत्युंजय अमृतमय मन्त्र के साथ गुरू की वन्दना करते हुए हमें साधना पथ पर अपने जीवन का स्वयं निरीक्षण करना होगा कि बीते वर्ष में हम ने क्या खोया, क्या पाया। हमें यह योजना बनानी होगी कि जो नववर्ष का अवसर हमें प्रदान हुआ है, हम कौन से विचार दूर करने का प्रयास करेंगे और गुरूदेव की अनुपम कृपा प्राप्त करेंगे। कितने प्यारे शब्द स्वामी विवेकानन्द ने कहे थे - जैकारे लगाने वाले हजारों व्यक्तियों में से उस एक व्यक्ति को ज्यादा श्रेष्ठ समझता हूं, जो जैकारों की बजाय अपना ही जीवन किसी महालक्ष्य की प्राप्ति के लिए अर्पण कर दे। एक ऐसा जीवन जिससे गुरूदेव को हर्ष हो, गर्व हो। सच्चे गुरू नारों और जैकारों को नहीं, ठोस साधना चाहते हैं। जो करेगा, वह श्री गुरूदेव की असंख्य अहैतुकी दया और करूणा से अपनी झोलियां भर लेगा।

एक दृश्य बार-बार आंखो के सामने आता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पहले आलम बाजार में फिर बड़े नगर में (कलकत्ते के दो मुहल्लों के नाम) स्वामी विवेकानन्द और उनके गुरू भाई रात भर जागते, कीर्तन करते, स्वाध्याय करते, शुभ संकल्पों भरे जीवन को व्यतीत करने का व्रत लेते और जब पौ फटने वाली होती तो गुरूदेव की जय बुलाकर गंगा में स्नान करने जाते। फिर मधुकरी मांगने को निकल पड़ते। कुछ मिल गया तो भला न मिला तो भला, कई बार जो थोड़ा बहुत मिलता, वह इतना कम होता था कि एक-एक निवाला भी

हिस्से में नहीं आता था। दिन भर की प्यास-भूख और तप फिर रात को जागना यहां तक कि फाकों के मारे कई एक से उठकर चलना भी मुहाल हो गया था लेकिन जैसे तेल डालने से आग के शोले और भड़कते जातें हैं, उसी तरह उनके विवेक और वैराग्य की अग्नि रोज मन्द पड़ने की बजाय तेज बढ़ती चली गई और तप की भट्ठी में पड़कर सोना कुन्दन बन गया। स्वामी विवेकानन्द के गुरू भाई और रामकृष्ण मिशन के पहले अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द कहा करते थे जो एक दफा कुन्दन बन जाता है फिर संसार की कोई शक्ति उसे मानूर (जंग से खाया हुआ लोहा) नहीं बना सकती। हमें भी अपने आपको अगर ऐसे कठोर तप में से न सही, तो इस मार्ग पर तो अग्रसर होना ही होगा। जब तक साधना की डगर को नहीं पकड़ेंगे, तितिक्षा के साथ सच्चे मुमुक्षु बन कर भजन अभ्यास नहीं करेंगे तब तक हमारे जीवन में से विकार नहीं जायेंगे और न ही जन्म-जन्मान्तर से पांवो में पड़ी हुई आवागमन की बेड़ी कट सकेगी। निःसन्देह गुरू कृपा जरूर प्राप्त होगी, परन्तु उनके लिए ही न जो इसके हकदार हैं जो इस लाल जवाहरात से भी ज्यादा दुर्लभ सम्पति की रक्षा कर सकें और इसे आगे बढ़ा सकें। क्या गृहस्थी और क्या सन्यासी साधना का यह रास्ता सभी के लिए खुला है। सभी इस पर चल सकते हैं। शर्त केवल दृढ़ संकल्प धारण करने की और अपने प्राणों के साथ इस हारी हुई बाजी की जीतने का प्रण लेने की है। गुरूदेव की हम पर यही सबसे बड़ी कृपा होगी कि हम नववर्ष के इस प्रज्वलित प्रकाशमय जीवन की ओर बढ़ना शुरू कर दें।



अध्याय - 22

कृष्ण कन्हैया के साथ जब होली खेली गई तो सांवरे ने रंगा-रंग पिचकारियों से तन-मन रंग दिया । आंख मिचोली खेलने वाले ने खुशबू भरे गुलाल से निहाल कर दिया।

"होली पर बृज भूमि आओ", मेरे परम स्नेही मित्र ने कहा। वो मित्र संत थे, गुप्त साधना में लीन रहते थे। जिस तरह अर्जुन श्री कृष्ण को न पहचान सका और उनको सखा, मित्र, बन्धु और भाई कहकर पुकारता रहा, मैं भी उसी तरह नहीं जानता था कि मेरे मित्र किस उच्चकोटि के आत्म ज्ञान को पा चुके थे और निज आनन्द में लीन और सलग्न रहते थे। वो स्वभाव से बहुत सरल और मधुर थे। उन्होंने कभी अपनी बढ़ाई मुझ पर व्यक्त नहीं की। मैं इन्हें मिलने न जाता तो वो मेरे पास आ जाते। उन के साथ पहरों धर्म चर्चा चलती रहती थी। मुझे इनकी बातों से बेहद रस और आनन्द अनुभव होता था।

होली समीप आई तो घर आकर कहने लगे होली पर मैं मथुरा वृन्दावन जरूर जाता हूं। तुम भी बृज भूमि की यात्रा करने आओ। होली पर भगवान कृष्ण मथुरा वृन्दावन में रास रचाने, रंग और गुलाल डालने, पागल बना

देने वाली छवि लेकर अपने प्रिय भक्तों के साथ होली खेलने आते हैं। रंग फेंकते हैं कि तन और मन दोनों रंग जायें। गुलाल फेंकने से तो हवा में खुशबू बिखर जाती है। गीत छिड़ते हैं तो ओज सुगन्ध होकर मस्ती में आकर दीवानों की तरह नाच उठती है।

मैंने कहा क्या सचमुच भगवान कृष्ण आते हैं? क्या शरीर धारण करके आते हैं? क्या इनको पहचाना जा सकता है? मेरे पागल और नासमझी भरे प्रश्नों पर हंसते हुए मेरे सन्त मित्र बोले - जिनका कोई अपना शरीर नहीं, सब शरीर जिनके हैं, वो जिस शरीर को चाहें धारण करके आ जायें। शरीर तो बदलने वाला चोला है, निरन्तर बदलता रहता है और फिर कृष्ण के अनेकों रूप हैं। कोई मक्खन चुराने वाले घनश्याम का पुजारी है, कोई यमुना तट पर नहाने वाली गोपियों के साथ रास रचाने वाले कृष्ण का उपासक है, कोई गाय चराने वाले मधुसूधन का श्रद्धालु है, कोई सुदर्शन चक्रधारी श्याम का भक्त है, कोई पीला पिताम्बर पहने एक टांग के सहारे खड़े होकर बंसरी बजाने वाले कन्हैया का नाम लेवा है, कोई अर्जुन को उपदेश सुनाने वाले परम योगेश्वर श्री कृष्ण का अनन्य सेवक है और कोई सुदामा जैसे दीन-हीन गरीब निर्धन मित्र के पांव धोने वाले घनश्याम को चाहता है। जिसको उस भगवान की जो छवि भायी, उस पर मर गया। न जाने आप उनके कौन से रूप में दर्शन करना चाहें और दूसरे किस रूप में दर्शन करना चाहें। इसलिए वो जो निराकार है गुप्त रूप धारण करके होली पर आते हैं और अपने प्यारों पर प्यार का रंग फेंक कर अपने कर कमलों से सुगन्धी बिखेर कर अपने अनहद शब्द से दिल के तारों से निकलने वाले नगमें और राग से जादू जगा कर सब को पागल और दीवाना बना देते हैं।

क्या आपको भगवान कृष्ण के दर्शन हुए हैं, कैसे हुए थे। यह प्रश्न मैं आज तक न कर पाया था। उस दिन प्रेम दीवाना होकर उनसे पूछा था। कृष्ण के भक्त कृष्ण से क्या कम थे। मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर देने की बजाये बोले- मैं इतना खुशनसीब नही हूं, हां एक ब्रह्मवेता, आत्म-दर्शी कृष्ण भक्त ने मुझे बताया था कि वो सांवरा सलोना नन्द-दुलारा, मक्खन चोर, पार्थ सारथी मुरारी श्याम सुन्दर ने इनको अनेक रूपों में दर्शन दिये थे। उनका सबसे प्यारा और न्यारा रूप था सुगन्धी बनकर, खुशबू बनकर, महक बनकर आपके सामने बारम्बार आना। दयालु जब पहली बार खुशबू की सूरत में प्रकट हुए तो यह चकित रह गए, इधर-उधर देखने लगे। तब किसी के बड़े ज़ोर के साथ हंसने की आवाज आई। मधुर मीठी आवाज़ में किसी ने कहा- मुझे पहचान नहीं सके। सारे संसार में जिसकी महक फैली हुई है, जिसकी महक से खुशबूदार फूल खिलते हैं, जिसकी सुगन्धी से संसार पागल हो जाता है, निजभौतिक प्रकृति की देन नहीं, यह महक मेरी देन है, मेरी बख्शी हुई रहमत की निशानी है। यह कहकर मेरे इष्ट मित्र कुछ रूक गए और फिर बात को जारी रखते हुए बोले- हो सकता है कि यशोधा नन्दन आपको इस रूप में दर्शन दें।

इस आत्म विश्वास ने मुझे मन्त्र मुग्ध कर दिया और जब मैं होलियों के दिनों में मथुरा वृन्दावन गया तो पागलों की तरह गली गली में इस दिव्य सुगन्धी को, उस महक को उस खुशबू की लज्जत को प्राप्त करने के लिए धूमने लगा। जितने प्राचीन मन्दिर हैं सब में गया। खुशबू कुरूर आई लेकिन मैंने यही जाना कि मन्दिर के अन्दर जल वैशा अगरबत्ती और धूप की सुगन्धी होगी। यह मेरी भूल थी जिसका सुधार भगवान श्री कृष्ण ने खुद ही उस

समय किया जब मैं गौवर्धन धाम की यात्रा को गया। जंगल बीयाबान में जहां दूर व समीप कहीं भी कोई मन्दिर नहीं था, कोई आश्रम नहीं था और तो और कोई वृक्ष या कोई पेड़ भी नहीं था। लगा कि किसी ने खुशबू की पिचकारी मार दी हो। तन मन की सुध भूल गई। उस सुगन्धी की मन मोहित करने वाली, होश हवास को चुरा लेने वाली खुशबू ने पागल सा बना दिया। नेत्रों से जल-धारा बह निकली और मैंने उस मिट्टी और धूल को उठाकर अपने माथे से लगाया जिससे यह खुशबू बराबर फूट रही थी। मेरे आस पास और दूर समीप जो बहिन भाई यात्रा कर रहे थे उस खुशबू को पाकर चकित हो गये। पूछने लगे यह खुशबू कहां से आई है और अभी अक्ल इस सुगन्धी की गुथ्थी को नहीं खोल पाई थी जब अचानक बिल्कुल दूसरी प्रकार की खुशबू का तेज़ झौंका आया और हमारे तन मन को इस खुशबू में डुबो गया। यह महक कई गज़ के फासले तक हमारे साथ रही और फिर न जाने कहां अलोप हो गई। हैरत से अभी सोचा ही रहा था तभी ऐसा लगा जैसे एक और निराली खुशबू का गुब्बारा किसी ने हमारी नाक के सामने फोड़ दिया हो। इस तरह सारी गौवर्धन यात्रा में १२ मील के फासले में न जाने कितनी बार यह अलग अलग प्रकार की महक तरह तरह की तेज सुगन्धि रास्ते भर में हमारे साथ मौज़ मस्ती करती चली गई।

यात्रा से वापिस आकर जब मैंने अनन्त वैष्णव महाप्रभु श्री ठाकुर जी महाराज के श्री चरणों पर नमस्कार किया तो मेरी हैरानी की कोई सीमा न रही। जब अद्वैत अवस्था में पिछले २२ वर्षों से संसार से मुंह मोड़ कर निज आनन्द में लीन रहने वाले उस त्रिकालदर्शी साक्षात कृष्ण स्वरूप की खिड़की से खुशबू की यह लपटें अपने आप उठ रही थी। जैसे कोई पागल हो गया हो, मैंने कभी इधर देखा, कभी उधर देखा। कभी वस्त्रहीन शिव स्वरूप सन्त की और कभी लोहे के उस जंगले को जो खिड़की पर लगा हुआ था, देखा कि श्री महाराज जोर-ज़ोर से हंस रहे थे। जैसे किसी भूल भुलईयों में गुम हुए बच्चे को देखकर कोई मज़ाक उड़ा रहा हो।

कुछ दिनों के बाद वही परम मित्र फिर मिले। इससे पहले कि मैं उन्हें बताता कि होली पर भगवान कृष्ण ने महक भरा गुलाल और रंग कहां-कहां, कैसे फेंका। वो सन्त स्वरूप मित्र हंसकर कहने लगे उस खुशबू को मिट्टी के कण का समूह न जानो। दिव्य ईश्वरी सत्ता को जड़ वस्तुओं का स्वरूप न दो। यह इत्तर उसकी रहमत का होता है। यह किसी बाग में खिले फूलों से निकाला हुआ नहीं होता। यह उत्तम अनुसन्धान, उत्तम दर्शन और निज आनन्द का अनोखा स्वरूप है।

और यही नहीं, और भी एक बात सुनो, मेरे यह सन्त मित्र बोल उठे, - योग अभ्यासी अच्छी तरह से जानते हैं कि अध्यात्म प्रगति के जो निशान और चिन्ह हमारे परम योगियों ने हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिख दिये हैं उनमें अलग अलग भान्ति की सुगन्धी और महक अलग-अलग मंजिलों की निशानी है। इस तरह से भिन्न भिन्न प्रकार का प्रकाश जब अन्तः करण और आत्म दर्शन करने वाले उपासकों और अभ्यासियों को नजर आता है तो उन्हे इस रोशनी, इस आवाज़ और खुशबू से साफ पता लग जाता है कि वो अब किस मंजिल और मुकाम पर पहुंच गये हैं। यही राग अन्दर से अन्तः करण की सुरों से निकलता है। यह खुशबू अन्तः करण के कमल दिल से फूटती है। यह रोशनी अन्तः करण से प्रकाशमान होती है। बिल्कुल सही बात तो यह है कि इसका वास्तविक स्रोत निज आत्मा है। अन्तः करण तो केवल उसे महसूस करता है। उसकी खबर दूसरी इन्द्रियों को देता है।

जब आत्मा को उस प्रभु की कृपा प्राप्त होती है तब अन्दर से ही झंकार उठनी शुरू हो जाती है। अन्दर से ही खुशबू जाग उठती है और अन्दर से ही प्रकाश हो जाता है। इस आवाज़ के राग के आगे संसार भर के बाजों और साजों की आवाज़ हेय है बल्कि बाहर के साज़ तो महज़ अन्दर की आवाज़ की अलामत और निशानी हैं। यही कफीयत (दशा) खुशबू की है और यही नूर और रौशनी, ज्योति और प्रकाश की है। कृष्ण मिलन की इस सुगन्धि का वर्णन कैसे किया जा सकता है। कृष्ण मिलाप के इस प्रकाश की प्रशंसा कैसे की जा सकती है।



अध्याय - 23

गुरू पूर्णिमा पर गुरू-चरणों पर मिठाई, फल-फूल और रूपए चढ़ाने से क्या बनेगा। विकार भरे जीवन को देखकर भी जो गुरु शिष्य का सुधार नहीं करता, वैश्या जैसा है। गुरू की प्रशंसा करने वाले, झूठी तारीफों के पुल बांध कर आस्था (आकबत) नहीं खरीद सकते ।

गुरू-पूर्णिमा पर आप सबको लाखों बार बधाई। लाखों बार मुबारकबाद (धन्यवाद) आदरणीय पाठकों से कृपा की एक भीख मांगनी है। इस लेख को वो बहन-भाई बिल्कुल पढ़ने का प्रयत्न न करें:-

(i) जिनके दिल में गुरू भक्ति का अर्थ जयकारे लगाना है।

(ii) जो गुरु पूजा का अर्थ केवल यह जानते हैं कि आज के दिन गुरूदेव के चरणों में मिठाई का डिब्बा, फूलों का हार और चन्द नोटों की गड्डियां अर्पण करना है।

(iii) जो यह बात मन में धारण किए हुए हैं कि गुरू का सम्बन्ध मेरे चढ़ावे से है, मेरे जीवन से नहीं। मैं निज जीवन कैसा भी व्यतीत क्यों न करूं, मैं पाप और अधर्म में गिरा रहूं, लेकिन चूंकि गुरू चरणों में चन्दा बाकायेदगी से देता हूं, दिन रात उनकी सेवा भी करता हूं, उनकी प्रशंसा भी करता हूं और इनके चरणों में अपने दूसरे इष्ट मित्रों और रिश्तेदारों को भी ले जाता हूं ताकि सेवकों की गिनती बढ़ जाए, इस लिए गुरूदेव को मुझ से सन्तुष्ट और प्रसन्न रहना है और मेरे निज जीवन के गुप्त कर्मों के बारे में न पूछने का अधिकार है, और न उनका कोई इससे सरोकार है।

(iv) इस लेख को वो बहन-भाई भी न पढ़ें जिनके समीप गुरू भक्ति का अर्थ है - गला फाड़कर जयकारे लगाना। समय-बे-समय, बिना मतलब गुरू के आडम्बर और शिष्य मण्डली के बारे में प्रापोगण्डा

(Advertisement) करना, इनके बारे में सुनी-सुनाई करामातों की चर्चा करके झूठ और कुफर तोलना और अपने निज जीवन के हर पाप को खुशामद (प्रशंसा) के पर्दे में ढक देना।

इस लेख को वही बहन-भाई पढ़ने का कष्ट करें जो आत्म-शुद्धि के सच्चे दिल से इच्छुक हैं और धर्म के मार्ग कांटो-भरा कठोर पाबन्दियों (रूकावटें) वाला, बहुत कठिन, बेहद दुर्गम, इन्तहा दुश्वार रास्ता, पर सच्चे दिल से आए हैं और जो ठोकरें खाते हुए गिर पड़ने पर भी इस रास्ते को छोड़ने को तैयार नहीं और यह तय किए हुए हैं कि प्राण जायें तो भले ही चले जायें, हम इस राह को नहीं छोड़ेंगे। हम अपनी एक-एक वासना को जड़ से समाप्त करके दम लेंगे और गुरूदेव जी से जो दीक्षा-मन्त्र लिया है, उसे जपते हुए अमर-दीप के उजाले में उस समय तक निरन्तर बढ़ते चले जायेंगे जब तक मंजिल न पा लें और अपने गुरू की, इष्ट की ही प्रतिमा न बन जाएँ। जो जयकारे कम लगाते हैं, आत्म-शुद्धि और आत्म-अनुसंधान पर सारा बल लगाते हैं, जो बोलते कम हैं, रोते अधिक हैं, जो सोते कम हैं, जागते अधिक हैं, जो अपने धन में दीन-दुखियों को भी भागीदार बनाते हैं, जो ईश्वर से डरते हैं और हंसी-मज़ाक और बाज़ारी बातों में कभी भी नही उलझते। ऐसे साधक धन्य हैं एंव गुरू के प्यारे होते हैं।

यही सीख उनके लिए भी है जो जीवन को बन्दगी के लिए लगा देना चाहते हैं, जो आवागमन के चक्र को सदा-सदा के लिए छोड़कर निज आनन्द और परम् आनन्द में लीन हो जाने के इच्छुक हैं। ऐसे साधकों की जिस कदर प्रशंसा की जाए कम है। इनके दिल को ही उस दिलबर ने अपनी जलवा- गाह बनाया। ऐसे साधकों के हृदय सिंहासन पर गुरुदेव, इष्ट और ईश्वर सदा आसीन रहते हैं, न भक्त गुरू से दूर होता है और न गुरू भक्त से परे होता है। गुरू आंखों से दूर हो जाए तो जिस साधक और शिष्य की आंखों में अंधेरा छा जाए, दिन होते-होते भी जिसके लिए रात पड़ जाए, सारा संसार आबाद होने के अतिरिक्त ऐसे लगे कि सारी दुनियां (संसार) नष्ट हो चुकी है, समाप्त हो चुकी है, ऐसा साधक जब चातरक की तरह सुबक-सुबक कर फरियाद (प्रार्थना करता है तब गुरु के हृदय में भी तड़प उठती है। गुरु और शिष्य के अनुपमा प्रेम का यह रिश्ता बांधा नहीं जाता, स्वंय बंध जाता है। यह जोडा नहीं जाता स्वंय जुड़ जाता है। एक ही रिश्ता सच्चा है। बाकी के सब शिष्य केवल नाम मात्र शिष्य हैं, दिखावा जिन का धर्म है, पाखंड जिनका चलन हो, ढोंग जिनकी भक्ति है और जुबानी जमा-खर्ची जिनकी आदत है। ऐसा शिष्य बनने के लिए साधक को अपने अन्दर कुछ आवश्यक परिवर्तन लाने होगें।

१. गुरू और ईश्वर में कोई भेद न जानें।

२. गुरू की किसी बात पर न ऐतराज़ करें न इन्कार करें।

३. गुरू के साथ रिश्ता अक्ल का नहीं, दिल का जोड़ें क्योंकि अक्ल तुम्हें कदम-कदम पर धोखा देती है, दिल एक बार दिया जाता है, रोज-रोज नहीं दिया जाता।

४. गुरू वाक्य को ब्रह्म वाक्य जानें ।

५. गुरू के प्रत्येक गुण को अपने अन्दर धारण करें और गुरू की सूरत में इस कदर मुग्ध हो जायें कि स्वयं गुरू की सूरत बन जायें।

६. गुरूदेव से जुबान से कम बोलें, दिल से अधिक वार्तालाप करें।

७. सच्चे शिष्य अपने ऊपर अहंकार नहीं करते, वो अपनी इबादत के गर्व से भी घृणा करते हैं। अहंकार भरी भक्ति, दिखावे की भक्ति कुफर से भी बदतर होती है।

८. सच्चा शिष्य गुरू के शरीर की सेवा करता हुआ भी मन को हर समय गुरू मंत्र से जोड़े रखता है।

६. शिष्य ज्ञानी हो तो जाहिल (अनपढ़) बन जाए, धनवान हो तो गरीब बन जाए, अहंकारी हो तो नम्र और दीन बन जाए।
१०. शिष्य जब तक अपनी हर प्रकार की पूंजी को गुरू अर्पण नहीं कर देता तब तक गुरूदेव की अनन्त कृपा को नहीं पा सकता।

११. शिष्य की जुबान पर भी शिकवा शिकायत का शब्द नहीं आता। इसकी जुबान पर धन्यवाद का कल्मा (मंत्र) रहता है। वह और उसका सर हर समय सजदे में रहता है।



अध्याय - 24

देखा जाये तो कृष्ण जन्माष्टमी एक विश्व उत्सव है। क्योंकि इस पवित्र दिन उस महापुरूष, उस परम सिद्ध, उस सनातन योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण का जन्म हुआ था जिन्होंने आध्यात्मिक विद्या को वेदों और उपनिषदों के महा कठिन और गूढ़ ग्रन्थों से निकाल कर सरल साधारण रूप में मनुष्य-मात्र के सामने रखा और इस प्रकार ब्रह्म प्राप्ति, जीव ईश्वर सम्बन्धी जीवन की सबसे ऊंची फिलास्फी को साधारण मनुष्यों तक पहुंचाया। कई विद्वान तो यह कहते हैं कि रामायण काल तक ईश्वर प्राप्ति का एक ही साधन था - ज्ञान साधन, ज्ञान मार्ग। परन्तु रामायण काल में मर्यादा पुरुषोत्तम ने अपने जीवन तथा अपने धर्म उपदेश से इस बात का निरूपण किया

कि भावना से कर्त्तव्य ऊंचा है और मनुष्य को कर्मकाण्डी होना चाहिये, केवल ज्ञान से कुछ नहीं बनेगा। उसके पश्चात आध्यात्मिक विज्ञान की इस 'गंगोत्री' को नई दिशा में मोड़ने का महान कार्य भगवान श्री कृष्ण ने किया और उन्होंने ज्ञान मार्ग तथा कर्म मार्ग के बीच में उस मध्यम मार्ग का निर्देश दिया, जिस मध्यम मार्ग को बाद में कुछ लोगों ने भगवान बुद्ध के नाम के साथ जोड़ दिया। वास्तविक बात तो यह है कि भगवान बुद्ध ने जिस मध्यम मार्ग-निर्वाण पथ को संसार के सामने रखा, वह भगवान कृष्ण का ही दिखाया हुआ मार्ग है।

यही नहीं बन्सी बजाने वाले योगीराज भगवान कृष्ण ने गीता में एक ही साथ परमार्थिक तथा स्वार्थिक उन्नति का सीधा और ऊंचा मार्ग भी दर्शाया। गीता में सच्ची समता और एकता का प्रचार किया, जिसमें सब मनुष्यों को उनके कर्म अनुसार प्रधानता, शोभा, आदर तथा कीर्ति मिलनी चाहिये, जन्म और वाणी के अनुसार नहीं। यदि संसार भर में जो गोरख धन्धा इज्मों तथा राजनैतिक सिद्धान्तों ने उत्पन्न कर दिया है उसकी छानबीन की जाए तो पता चलेगा कि इन सब सिद्धान्तों में एक अथवा दूसरी त्रुटि और कमी है। साम्यवाद (Communism) मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को समाप्त करके उसे समतावाद के नाम पर ईश्वर से परे कर देता है और लोहे की मशीन के समान एक निर्जिव यंत्र बना कर रख देता है। जो दूसरे सिद्धांत उसके विरूद्ध हैं, वह व्यक्तिगत जीवन को प्रधानता देते हैं और मनुष्य को समाज, देश तथा धर्म के विषय में निराश कर देते हैं। भगवान कृष्ण ने जिस समतावाद और एकता का उपदेश दिया, वह मनुष्य को एक आदर्श मनुष्य बनाता है।

गीता यह नहीं सिखलाती कि जंगल में जाकर तपस्या करते रहो तथा देश, जाति पर आई आपत्ति, कष्ट और संकट पर कोई ध्यान न दो। गीता कहती है कि जीवन से भागने और जंगलों में जाने से ही ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, जीवन संग्राम में पूरी शक्ति से लड़ो परन्तु ईश्वर परायण रहते हुए सत्य मार्ग पर चलो। इस जीवन में, इस संसार में, इसी गृहस्थ में मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। गीता कहती है कि अपने धर्म तथा कर्तव्य पर दृढ़ता पूर्वक चलो, ईश्वर से डरो, ईश्वर को सदा अपने मध्य में उपस्थित और अंग संग जान कर स्वधर्म का पालन करो। जो कर्तव्य आपका है उसे पूरी ईमानदारी से करो और फिर फल की चिन्ता छोड़ कर । ईश्वर उसका फल बहुत अच्छा देगा।

गीता उपदेश देती है कि इस संसार में उन्नति करता हुआ भी एक मनुष्य सच्ची उन्नति कर सकता है। गीता कहती है कि तेजस्वी बनो, बलवान शरीर वाले बनो, धन और अधिकार सम्पन्न जीवन व्यतीत करो। जिसे अपनी सम्पत्ति पर अधिकार नहीं, जिसे अपने देश को दूसरों से स्वतन्त्र कराने का साहस नहीं, जो कायर है, जीवन की जिम्मेदारियों से भागता है, वह पुरूष कभी भी परमार्थिक उन्नति नहीं कर सकता। गीता कहती है सुख के सब साधन उत्पन्न करो, खूब कमाओ, खूब आनन्द लो परन्तु स्मरण रखो कि भोग विलास में मत पड़ना। मनुष्य को पतन के इन गड्ढों से बचाने के लिये उन्होंने कहा कि जहां तुम सांसारिक सुख के लिए दिन-रात प्रयत्न करो वहां तुम परमार्थिक सुख के लिए भी यत्न करो। यह मध्यम मार्ग है, यही कल्याण का मार्ग है।

कमल नयन यशोधरा नन्दन मधुसूदन ने गीता में उस मध्यम मार्ग का जो मनुष्य की सांसारिक और परमार्थिक सुखों को देने वाला है, निरूपण करते हुए उन कर्तव्यों के पालन पर जोर दिया जो हमारे नित्य करने के हैं।

उनका नित्य पालन करने से आत्म विचार तथा संसार त्य अपना सम्बन्ध ध्यान में रहता है। इन कर्त्तव्यों के पालन से हम मनुष्यों को बल, तेज, आरोग्यता यश तथा धन सम्पत्ति भी मिलती है और आध्यात्मिक उन्नति भी होती है।

गीता मनुष्य की बुद्धि को विशाल और हृदय को उदार बनाती है और उसे कहती है कि कर्म तथा कर्तव्य से भागने से नहीं कर्म और कर्तव्य को निभाने से ही वह प्रसन्नता, वह आनन्द और वह निर्वाण पद मनुष्य को मिल सकता है। जिस फल के लिए ज्ञानी ध्यानी जंगलों और पर्वतों की कन्द्राओं में जाकर शरीर तथा प्राणों को कष्ट देने वाले तप और योग करते हैं। भगवान श्री केशव ने कहा था कि यह मार्ग-ज्ञान और कर्म के मार्ग देखने में अलग दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु उनकी मंज़िल एक है, उनका ध्येय एक है। गीता कितनी उदारता, कितनी विशालता सिखलाती हुई मनुष्य को कहती है कि सब मार्ग जो बाहर से अलग-अलग दिखाई देते हैं, मेरे तक ही जाते हैं और जो जिस भावना से मेरी भक्ति करता है, मैं उसे उसी भाव से मिलता हूं।

गीता के अन्तिम श्लोक में आदर्श मनुष्य का निरूपण परिपूर्ण हो जाने पर जो फल मिलता है, उसका वर्णन करते हुए लिखा है-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्भुवा नीतिर्मतिर्मम ।।

इस श्लोक में गीता का सारांश भर दिया गया है। कहा गया है कि जहां योग का उपदेश देने वाले योगीश्वर श्री कृष्ण और उस उपदेश से कर्मयोगी बने अर्जुन हैं, वहां किस बात की कमी रहती है। श्री, सिद्धि, विजय और न्याय का वहां साम्राज्य होता है। श्री कृष्ण परमार्थ शास्त्र के अधिष्ठाता क्या थे मानो परमार्थ शास्त्र ने प्रत्यक्ष श्री कृष्ण का रूप धारण कर लिया हो। और अर्जुन क्या थे मानो वीरता ने, आदर्श मनुष्यता ने प्रत्यक्ष रूप धारण कर लिया हो। जब वीरता, कर्म योग मनतव्य पालन के साथ परमार्थ और ईश्वर परायणता सम्मिलित हो जाती है तब संसार और स्वर्ग में भेद ही क्या रह जाता है। अर्जुन की कर्म योग्यता और भगवान कृष्ण का सामर्थ्य इन दोनों का जहां भी मेल होगा, वहां स्वर्ग के सब सुख स्वंय आ जाते हैं।

इस दृष्टि से देखा जाए तो गीता सच्चे अर्थों में अमृत की गंगोत्री है। इस अमृत को यदि भारत के लोग आज भी सच्चे अर्थों में ग्रहण कर लें तो उनका इह लोक भी बन सकता है और परलोक भी! और केवल भारत के लोग ही नहीं संसार भर के लोग यदि इस धर्म और मार्ग को अपना लें तो यह फूट, यह वैर, विरोध, यह युद्ध के विनाश कार्यो का दृश्य और यह भेद सब कुछ मिट सकता है। अब श्री कृष्ण नहीं, अब श्री अर्जुन नहीं परन्तु श्री कृष्ण भगवान का दिव्य उपदेश संसार भर में अपना प्रकाश फैला रहा है। इस प्रकाश से जो भी अपने मन को प्रकाशित करेगा, अपनी बुद्धि के दीपक को जलायेगा, वही अर्जुन कहलाने का अधिकारी है। प्रत्येक मनुष्य अर्जुन बन सकता है परन्तु शर्त यह है कि वह गीता के उपदेश को सच्चे अर्थों में समझे और उसके अनुसार व्यवहार बनाये। अपने जीवन को गीता उपदेश के सांचे में ढाले ।

गीता का सबसे बड़ा उपदेश है कि इस संसार में जितने भी प्राणी हैं, उनके जिम्मे एक विशेष कर्त्तव्य और कार्य है, कोई व्यर्थ नहीं। मनुष्य भी कर्म करने के लिये उत्पन्न हुआ है। इस प्रकृति के कारखाने मे उसे बेकार रहने का कोई अधिकार नहीं। जो मनुष्य अपने कर्तव्य तथा धर्म से जी चुरायेगा वह न केवल दोषी होता है वरन् ईश्वर से धोखा भी करता है। परन्तु कर्म कैसा करना चाहिये, इसके लिये समझ और विचार ज्ञान का होना आवश्यक है। जो मनुष्य ज्ञान तो रखते हैं परन्तु शुद्ध तथा शुभ कर्म नहीं करते, उनकी दशा उस बादल जैसी होती है जो बिना बरसे आकाश में इधर-उधर वायु के थपेड़े खाते रहते हैं। भगवान कृष्णा ने कहा है कि जैसे ज्ञान के बिना कर्म अधूरा है उसी प्रकार कर्म के बिना ज्ञान कोरा और अधूरा है।

मनुष्य क्या करने के लिए जन्म लेता है? उसके जीवन का कारण क्या है? जब तक मनुष्य यह न जान ले तब तक वह स्वधर्म और शुभ कर्म नहीं कर सकता। जो मनुष्य अपने कर्तव्य तथा धर्म से कोरे रहते हैं वह आवागमन के चक्कर में फंसे रहते हैं। इस समय संसार में जितने दुःख, क्लेश दिखाई देते हैं, उन सब की मूल जड़ यह है कि मनुष्य अपने जीवन ध्येय को भूल कर जो कर्म करने चाहिए, वह कर्म नहीं करते। और जो कर्म उल्टा फंसाने वाले तथा बांधने वाले होते हैं, यह दिन रात ऐसे कुकर्मों में ग्रस्त रहते हैं। कर्म ऐसे करता है जिससे नीचे की ओर गिरे परन्तु आशा करता है कि यह ऊपर चढ़ जायेगा। इसलिए सबसे आवश्यक और सर्व प्रधान बात गीता मनुष्य से यह कहती है कि तुम अपने जीवन ध्येय को पहचानो और फिर इस जीवन को सफल बनाने का कार्य करो। इस स्वधर्म का पालन करना ही मोक्ष का मार्ग है।

गीता मनुष्य मात्र को जीवन ध्येय बतलाती हुई उपदेश देती है कि यह जीवन वास्तव में एक सराय है, मृत्यु केवल ऐसे एक दूसरे ठहराव और सराय का दूसरा नाम है। मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा की यह यात्रा निरन्तर चलती रहती है। और आत्मा की यह यात्रा तब तक समाप्त नहीं होती जब तक मनुष्य अपने ध्येय को पहचान नहीं लेता है। और उस ध्येय को पा लेने के लिए भरसक यत्न नहीं करता। गीता कहती है कि जीवन और मृत्यु केवल पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र धारण करने के बराबर है। मृत्यु से घबराने अथवा दुखी होने की आवश्यकता नहीं। यदि कर्तव्य के लिए मृत्यु होती है तो देश और सेवा के लिए अथवा धर्म पालन के लिए जीवन आहुति देनी पड़ती है तो डरो मत। हंसते-हंसते बलिदान की वेदी पर चढ़ जाओ। यह ध्येय ही जीवन कहलाता है। नहीं तो मनुष्य तथा अन्य पशुओं मे क्या अन्तर है? कर्त्तव्य को पहचानने की सत्ता तथा शक्ति तथा राजसीय ठाठ पशु से ऊंचा उठाता है। यह शोभा ही हमने गंवा दी तो मनुष्य कहलाने का अधिकार नहीं रख सकते। भगवान श्री कृष्ण ने न केवल मनुष्य में इन मानवता के गुणों का जगाया, वरन् यह उपदेश भी दिया कि जीवन को धर्म के सांचे में ढाल लो। धर्म केवल प्रातः और सायंकाल को मन्दिर में जाकर घड़ियाल बजाने का नाम नहीं, वरन् धर्म एक ऐसा सांचा है जिसमें मनुष्य को अपना सारा जीवन ढाल लेना चाहिये। जब तक मनुष्य धर्म के इस सांचे में नहीं ढलता तब तक उसे न सुख मिल सकता है, न मोक्ष ।



अध्याय - 25

नव वर्ष की प्रभात बेला में आइए अपने हृदय की अतीत गहराइयों में उतर कर श्रद्धा के कुछ मोती चुनें और इन्हें युग पुरुष स्वामी विवेकानन्द के चरण-कमलों पर अर्पित करें। यत्न कीजिए बहुत महकते हुए, खुशबू से लदे हुए, श्रद्धा की खुशबू से हंसते हुए कुछ विशेष प्रेम पुष्प जो उनके श्री चरणों के आवश्यक अंग हैं चढ़ायें। यत्न यह होना चाहिए कि जो फूल मेरे हाथों से चढ़ें उनकी दिव्य सुगन्धि दूसरों से अनोखी हो। या यूं कहिए विश्वास के सागर में बहुत गहरा उतरकर हमें उन अनमोल मानक मोतियों को चुन-चुन कर इकट्ठा करना होगा जो हर लिहाज से अपनी मिसाल आप हों। दक्षिणेश्वर मन्दिर के बाहर बगीचे में फूलों की क्यारियों में बहुत रात रहते हुए प्रभात से कहीं पहले परमहंस रामकृष्ण पहुंच जाते और कभी एक पौधे को कभी दूसरे पौधे को अनेकों बार एक-एक फूल को देखते और जो सबसे ज्यादा प्यारा लगता, आंसुओं से भरी आंखों से पहले टिकटिकी बांध कर देखते रहते फिर पागलों की तरह हंसना शुरू कर देते और फिर ऐसे फूलों की माला जगजननी काली मां के श्री चरणों पर चढ़ा देते और कभी यह हार मां के गले में पहना कर झूम-झूम जाते। गाते चले जाते, मस्ती में खोये हुए, सुध-बुध बिसराये हुए। कब सूरज चढ़ आया, कब मन्दिर का प्रांगण दर्शकों से भर गया, उन्हें कोई खबर नहीं होती थी। किसी सेवक ने कहा कि आप इतने अंधेरे बाग़ में जाने का कष्ट न किया करें। आप जितने चाहें हम फूल तोड़ कर ला दिया करेंगे। उन्होंने कहा था कि लोगों की पूजा फूल माला इष्ट चरणों में चढ़ाने से शुरू होती है। मेरी पूजा तो रात के छुटपुटे में ही शुरू हो जाती है और फिर मैं एक-एक फूल पर जाकर माँ से ही पूछता हूं कि क्या ये पुष्प सुमन तुम्हें स्वीकार होगा। वो हां कहती है तो मैं उसे हार में पिरोने के लिए तोड़ लेता हूं।

हम भी स्वामी विवेकानन्द के प्रति कुछ ऐसी ही श्रद्धा विधि से फूल तोड़ सकें तो कितना अच्छा रहे। पहले वे भी अपने गुरू की पूजा विधि देखकर मजाक उड़ाये बगैर न रह सके, बिल्कुल अनदेखी और अनसुनी पूजा। कहने को तो मन्दिर के पुजारी हैं लेकिन मां की पूजा मंत्र उच्चारण से नहीं करते। जाने किन ख्यालों में बेहोश से, लड़खड़ाते उच्मों से, कभी हंसने लगते हैं, कभी रोने लगते हैं इन्हें पागल ही तो कदम जायेगा। कोई और इन्हें अवतारी पुरुष मानता है तो माने। मैं रुड़ पन्थी नहीं हूं जो दूसरों की कही सुनी बात को मान लूं। मैं तो हर बात की परख करूंगा। और फिर परख करने की कौन सी बात है, पागलपन साफ दिखाई दे रहा है। बहुत देर तक नरेन्द्र (सन्यास से पहले स्वामी विवेकानन्द का शुभ नाम) ऐसी भावनाओं में खोये रहते। अपनी जीवनी में उन्होंने कहा है कि उनको पागल कहने वाला, मिथ्या अहंकार के नशे में इतना पागल हो गया था कि मैं उनकी नकल उतारा करता था। वैसे ही उनकी तरह मुंह बनाकर उसी तरह से बहकी-बहकी बात करना जैसे आम हालतों में परमहंस राम कृष्ण किया करते थे। तब अन्धकार धीरे-धीरे करके उठना शुरू हुआ जैसे सूरज

की टिकीया चढ़ने से बहुत पहले ही लालिमा आसमान के कोने में बिखर जाती है। यह उनका नया जन्म था। पश्चिमी दार्शनिकों और विद्वानों की पुस्तकों से जो ज्ञान प्राप्त किया था उन्होंने तो मानो मन में एक अन्धेरा सा पैदा कर दिया था। अब श्री गुरूदेव की कृपा से धीरे-धीरे भ्रम-भ्रांति के बादल छटने लगे। कहने को उन्होंने, उनके हृदय ने, उनकी आंखो ने अपने सामने एक नये श्री राम कृष्ण को देखा, पर यथार्थ तो यह है कि श्री राम कृष्ण तो पहले जैसे ही थे। यह विवेकानन्द जी का नया जन्म हुआ, उन्हें नई दृष्टि मिली, नया विश्वास मिला और फिर समझ में आया कि मैं जिनको पागल समझ बैठा था, वे तो संसार से कहीं अधिक महान तेजस्वी, ज्ञानशील, भक्ति के भास्कर हैं। जिनको आम आदमी समझ भी नहीं सकता। पागल से गुरूदेव ने होश मन्द, अपने आपको बहुत समझदार कहलाने वाले शिष्य का अहं खत्म कर दिया। स्वयं सन्यास धारण कर लिया मानो छोटे बच्चे ने नये संसार में धीरे-धीरे आंखें खोलकर एक और ही दुनिया को देखा। जब भी याद आती बच्चों की तरह चीख-चीख कर रोना शुरू कर देते। मेरे गुरूदेव अवतारी पुरूष ही नहीं थे, स्वयं साक्षात नर रूप में नारायण थे। इस जीवन में तो क्या अनेक जन्मों में मैं उनका दासनदास बनूंगा, अनथक सेवा करूंगा। बहुत बड़ी परख उस वक्त हुई जब इनका सामना राजे महाराजाओं से हुआ। इनके स्वागत के लिए राजमहलों के द्वार खोल दिये गए। स्वयं राजा इन पर छत्र झुलाते थे, इनकी चरण रज को सिर मत्थे पर लगाते थे और रूपमती रानियां महलों के किवाड़ खोलकर नंगे मुंह पागलों की तरह इनकी तरफ निहारती रहती थी। राजे महाराजाओं के दरबार में गाने वाले इन पर जान छिड़कने लगे। साधारण व्यक्ति होते तो यह समझकर कि मुझे वैराग्य का फल मिला गया है, चोला धारण करने का जो परिणाम निकलना चाहिए था वह निकल आया है। यश, कीर्ति, धन दौलत सब की बारिश मुझ पर की जा रही है, अब सफर जारी क्या रखा जाये? लेकिन ऐसा नहीं हुआ, माया के छलावे इस परम तेजस्वी, गुरू अनुरागी के कदमों को रोक न सके। अपनी जन्मभूमि की दुर्दशा उनके सामने थी। सवाल अपने सुख ऐश्वर्य का नहीं था, दूसरों की भलाई का था। वह परम परोपकारी पुरूष अमेरिका पहुंचे तो एक नई परीक्षा शुरू हो गई। अन्जान देश में भूखे प्यासे रहे। रो-रो कर गुरूदेव से कहने लगे कि मेरा यही हाल होना था तो मुझे अमेरिका क्यों भेजा ? बेहतर होता गंगा तट पर डेरा डाल लेता और फिर थोड़े दिनों बाद यश कीर्ति चारों दिशाओं में फैलनी शुरू हो गई। रूप धन सभी कुछ तो लोगों ने इनके चरणों पर वारना शुरू कर दिया और यह वैराग्य की चोटियों को छूने वाले महापुरूष इन रूपवती अमेरिका की देवियों को अपनी बहनें और मांए कह कर बुलाते तो उनकी आंखे भर आती। किसी को मां कह दिया तो उसने प्राणों से बढ़कर प्यार किया। किसी को धर्म की बहन कहा तो उसने अपना जीवन चरणों में उंडेल दिया और नया जीवन अपना लिया। पवित्र सात्विक प्रेम के जादू ने ऐसा रंग दिखाया कि सारा अमेरिका मोहित हो गया, धूम मच गई। लोग इन्हें यशु मसीह कह कर पुकारने लगे। जगह-जगह पर इन्होंने योग, धर्म, ज्ञान, हिन्दु धर्म की फिलास्फी के एक-एक अंग को खोलकर चकित कर दिया। कितनी निडरता की तस्वीर थे वह ! कहने लगे कि अमेरिका के लोग जब जंगल में हब्शियों की तरह रहते थे, यह गौरव केवल मेरी मातृभूमि को प्राप्त था जिसने ऐसे मनुष्यों को जन्म दिया जिनको समझने के लिए कई युग लग जायेंगे। अपने पत्रों और भाषणों में सदैव गुरू की जय जयकार की धुन लगाई और कहा जिनकी चरण रज ने विवेकानन्द को जन्म दिया, लाखों विवेकानन्द करोड़ों जन्म धारण करके भी ऐसे गुरू की महानता का बखान नहीं कर सकते।

जरा हृदय में झांक कर देखिए कि क्या हम अपने गुरूदेव के प्रति ऐसी श्रद्धा रखते हैं? क्या हम सचमुच उनके अनुरागी और अनुयायी कहलाने के हकदार हैं? आपके ऊंचे-ऊंचे गरजने वाले जयकारों से तो इसका पता नहीं लग सकेगा। अपनी भक्ति के उस स्वरूप को खुद पहचानिए जो गुरूदेव हमारे अन्दर जगाना चाहते हैं। क्या हम अपने गुरूदेव के विवेकानन्द बन सकते हैं?



अध्याय - 26

गीता में धर्म के तीन स्वरूप, तीन अंग, तीन मार्ग, तीन रास्ते बताए गए हैं- कर्म, ज्ञान और भक्ति। जो जिसके स्वभाव के अनुकूल हो अपना ले। हर जीव का अलग-अलग स्वभाव है इसलिए सब एक ही मार्ग को अपनाएं, यह आवश्यक नहीं। कोई किसी भी मार्ग को क्यों न अपनाए, भगवान कृष्ण कहते हैं- वो मुझे अपना लेगा, मुझे पा लेगा। कर्म मार्ग का सिद्धांत है कि कर्म करते हुए निष्काम बनकर स्वार्थहीन होकर काम करो। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो निष्काम भाव से दूसरों के हित, लाभ और कल्याण के लिए सेवा करता है, मुझे प्राप्त कर लेता है। दूसरा मार्ग है ज्ञान का। जिन्होंने ज्ञान की अग्नि से अपने मन के विकारों को जला डाला हो वो मुझ में लीन हो जाते हैं। यह गीता में कहा गया है। भक्ति मार्ग है, कर्म, ज्ञान और दूसरे साधनों को तज़कर पूर्ण रूप से कृष्ण-शरण ग्रहण कर लेनी । अबोध बालक की तरह उनकी मौज, उनकी रज़ा में हर समय, हर हाल में, हर स्थान में प्रसन्न और संतुष्ट रहना। भगवान कृष्ण ने गीता में वचन दिया है कि ऐसा भक्त भी मुझे पा लेगा।

धर्म का पहला स्वरूप समझने की बात है, भगवान कृष्ण सबको एक ही मार्ग पर चलने का उपदेश नहीं देते बल्कि धर्म के अलग-अलग मार्ग बताते हैं और कहते हैं कि किसी भी मार्ग को अपनाया जाए, मंजिल सबकी एक ही है। धर्म कट्टरपंथी या तंग दिली नहीं सिखाता बल्कि फराख़-दिली सिखाता है और दूसरों के मार्ग से नफरत नहीं सिखाता बल्कि दूसरे मार्गों पर चलने वालों को भी ईश्वर-प्रेमी और जिज्ञासु जानकर प्यार देने, सम्मान और आदर देने का आदेश देता है। एक संत कहा करते थे- मंजिल एक, पथ अनेक । एक दूसरे संत का कहना था- पथ एक, रथ अनेक । परमहंस रामकृष्ण ने कहा था कि तालाब के एक कोने पर हिन्दु पानी का जल कह रहे थे, मुसलमान दूसरे किनारे पर खड़े पानी। अंग्रेज तीसरे किनारे पर खड़े वाटर कह रहे थे। फ्रान्सीसी लोग एक्वा कह रहे थे। कोई लोटे से, कोई बाल्टी से, कोई छोटे बर्तन से, कोई बड़े बर्तन से पानी भर रहा था। अलग-अलग नाम छोटे रूप के बर्तन रखने वाले सभी का मक्सद पानी से था। इस प्रकार धर्म के नाम पर लड़ाई, झगड़ा करना, धर्म का अपमान करना होता है।

गीता प्रायः कोरा कर्म नहीं सिखाती। गीता कर्म करने की नई विधि और युक्ति बताती है। गीता कहती है जो कर्म करता हुआ अकर्म हो जाता है उसके लिए कर्म बन्धन नहीं, मोक्ष और मुक्ति देने वाला बन जाता है। जो फल की इच्छा त्याग कर कर्म करता है वो उस कमल की तरह है जो जल में रहता हुआ भी जल से नहीं भीगता। एक दूसरी जगह भगवान कहते हैं जो निष्काम भाव से कर्म करता है ऐसी शान्ति प्राप्त कर लेता है जो वर्णन नहीं की जा सकती। कर्म फिलास्फी को कृष्ण भगवान ने एक बहुत प्यारे ढंग से बताया है, कहते हैं कि कर्म किए बिना कोई भी नहीं रह सकता। यह सारा संसार कर्म बन्धन से बन्धा हुआ है लेकिन जो कर्म को मेरी पूजा और आराधना समझ कर करता है, वो मुक्त होता है, इसलिए अर्जुन जो तू कर्म को पूजा और आराधना समझकर करेगा तो तेरा कर्म यज्ञ बन जाएगा। यज्ञ इसी कर्म विधि को बताता है। यज्ञ में समिधा डालकर आखिर में कहा जाता है- प्रभु! इस समिधा डालने, इस त्याग और इस पूजा का फल भी आपके अर्पण करता हूं। भगवान कृष्ण के यह शब्द याद रखने वाले हैं कि मैं तुझे कर्म का त्याग करने के लिए, फल का त्याग करने का उपदेश देता हूं। दुःख, सुख, लाभ, यश, हानि, मान-अपमान, सबसे न्यारा होकर, मेरा होकर कर्म कर।

भारत-भूमि को धर्म भूमि, धर्म-क्षेत्र कहा गया है। यहां सबसे पहले धर्म का उपदेश दिया वेदों ने। वेदों के बाद आया, ब्रह्म सूत्र। वेदों पर टीका और उनके अर्थो पर विचार। उसके बाद आए उपनिषद् । उपनिषदों का अर्थ ही है- "गुरूदेव के श्री चरणों में बैठना। तपोवन में ऋषियों और मुनियों के श्री चरणों में बैठकर उनसे जीवन और मृत्यु सुख दुःख का भेद समझना। ऋषि बताते थे कि जिज्ञासु को क्या कुछ करना चाहिए, कैसे करना चाहिए। उपनिषदों में प्रायः ऋषियों के अपने अनुभव अपने निज जीवन के सिद्धांत और उनके निचोड़ (सार) बताए जाते थे।

तभी एक जिज्ञासु ने श्रद्धा और भक्ति से सनी हुई आवाज़ में धीरे से गुरूदेव की तरफ ईशारा करते हुए कहा- "प्रभु आज हम आपके शब्दों में गोया उपनिषद्रों का अमृत ही सुन रहे हैं। जो कभी वैदिक ऋषि बनकर आए थे आज आप के स्वरूप में वही श्री ठाकुर जी बन कर आए हैं। हम तो समझते हैं कि हम इस तपोवन में आप से वही अमृत पान कर रहे हैं। हम कितने खुशनसीब हैं।" महाप्रभु यह सुनकर कुछ देर चुप रहे। तब धीरे से शहद से अधिक मीठे बोल में कहने लगे कि युग-युगान्तरों से एक ही धर्म सिद्धांत नहीं रहा। अलग-अलग मार्ग को बताने वाले अनेक महापुरूष आते रहे हैं। इन्होंने अलग अलग रास्ते बताकर साफ-साफ कहा था कि वो किसी नये सिद्धांत को नहीं बता रहे, पहले कहे हुए उपदेश को ही दोहरा रहे हैं। और तो और भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन से स्पष्ट शब्दों में कहा है, अर्जुन, जो उपदेश सूर्य ने अद्धित्या को दिया, वही उपदेश आज मैं तुम्हारे सामने दोहरा रहूं हूं। यह शरीर भी अपनी तरफ से कुछ नहीं कह रहा। महापुरूषों के वचन अमृत को ही आपके सामने रख रहा हूं। पहाड़ी की चोटी से नीचे बहने बाली गंगा से जल लाने के लिए न जाने कौन से रास्ते से कोई कब जाएगा। महापुरूषों ने कृपा की, अमृत जल को खींच कर जिज्ञासुओं और भक्तों के लिए सहज और सुलभ बना दिया। संत प्रायः इस दिव्य अमृत पान के घाट हैं। गंगा के अनेकों घाट हैं, इसी तरह अनेक संत हैं जो जिस घाट में चाहे पानी पी ले। यह कहकर गुरूदेव ने लम्बी सांस लेकर धीरे से कहा- नदिया एक, घाट बहुतेरे लेकिन हम सभी घाट के लिए लड़ते रहे, कभी पानी के नाम और स्वरूप के लिए लड़ते मर गए। अमृत पान न किया जा सका।

गीता पाठ करने वाला ग्रंथ नहीं, प्रति दिन पूरे जीवन भर इसे अमल में लाना चाहिए। भगवान करे, गीता मंदिर-मंदिर में रखे जाने की बजाय नर-नारी के दिल में विराजमान हो जाए, समा जाए। गीता पढ़ने से नहीं, अमल करने से मोक्ष अधिकारी बना जा सकता है। जिन को गीता की समझ आ गई, जिनके मन में गीता ने असर कर लिया वो लोग सारा जीवन प्रभु अर्पण करते हुए व्यतीत करते हैं। उनका हर काम पूजा। होता है। उनका अर्पण करते हुएन के श्री चरणों में श्रद्धांजली होती है।

हर कर्म को जीवन आहुति बनाकर उस प्रभु के लिए वो एक ऐसा हवन-यज्ञ करते हैं जिसमें लकड़ियों की जगह इच्छाऐं जलती हैं, जिसमे धी और सामग्री डालने की बजाए साधक अपने अंहभाव, अपने हर विकार और अंहकार की सामग्री डालता है। यह यज्ञ हवन सुबह-शाम नहीं आठों पहर किया जा सकता है। सच्चा अश्वमेध यज्ञ ब्रह्म यज्ञ वही है जिसमें हवन करने वाला स्वंय अपनी जात की (अपने आपकी) आहुति डाल देता है। उसका जीवन किसी के लिए होता है। कृष्ण भक्त साक्षात् कृष्ण प्रतिमा बन जाता है, ब्रह्मवेत्ता, परमहंस बन जाता है।

आंसुओं और दुःख भरे इस संसार में ऐसे लोग परोपकार के लिए, जन-कल्याण के लिए जीते हैं और इस तरह एक गुप्त हवन करते रहते हैं। ऐसे लोग इस संसार से निकल जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं। जीवन-मुक्त लोग दूसरों के भले के लिए काम करते हैं और दूसरों के भले के लिए जीते हैं। भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि मुझे अपने लिए किसी कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु दूसरों के हित के लिए अपना धर्म और अपना फर्ज़ जानकर मैं कर्म करता हूं।

लोक भलाई के लिए अपना जीवन प्रभु चरणों में अर्पण करना सबसे बड़ी भेंट है। अंहकार रहित, स्वार्थ की भावना को त्याग कर जो लोग कृष्ण भक्ति करते हैं, साक्षात् कृष्ण बन जाते हैं। इनके लिए संसार का हर प्राणी, जीव उनका सखा होता है। उनकी दृष्टि में सब अच्छे हैं। उनका सबसे प्रेम होता है। उनके लिए कोई शत्रु नहीं रहता, वैरी नहीं रहता । ब्रह्मवेत्ता सबके चरणों की धूल और दीन बनकर रहता है क्योंकि उसकी दृष्टि को अब हर स्थान हर घट में, हर रूप में एक ही भगवान नज़र आने लगता है।



अध्याय - 27

गुरू पूर्णिमा के पावन पर्व पर अपने सद्गुरूदेव के श्री चरणों में हृदय के सारे पुष्प अर्पण करते हुए आईए! कुछ क्षणों के लिए मन की पूरी एकाग्रता के साथ उस पवित्र नाते पर विचार-चिन्तन करें, जो शिष्य और गुरू में होता है और देखें कि गुरू सेवा, गुरू प्रेम और गुरू निष्ठा में हम कहां खड़े हैं और श्री गुरुदेव महाराज से अमूल्य नाम रत्न की प्राप्ति के बाद हम कहां तक साधना पथ पर प्रगति कर सके हैं?

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरू साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरूवेनमः ।।

यही शब्द जपुजी साहिब में श्री गुरू नानकदेव जी ने उच्चारण किये-

गुरू ईश्वर, गुरू गोरख ब्रह्मा, गुरू पार्वती है माई।

गुरू भक्ति का स्वरूप दर्शाते हुए श्री गुरू नानकदेव जी ने ही कहा है-

तै साहिब की बात आखे, कहो नानक क्या दीजै।
सीस वडे कर बैसन दीजै, बिन सिर सेव करीजै ।।

अर्थात् उस गुरूदेव को दक्षिणा रूप में शिष्य को क्या देना होगा, जिसने पारब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग दिखाने की अपूर्व कृपा की है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री गुरूदेव कहते हैं कि अपना सिर काट कर श्री गुरू नानक देव जी महाराज के आगे रख दीजिए और विनती कीजिए कि गुरूदेव आईए! इस सिंहासन पर विराजिए और मैं सिर के बगैर, अपनी मनमति को छोड़कर, पूर्ण रूप से शरणागत होकर आपकी सेवा करूंगा। गुरू वाणी कहती है-

मुर्दा होय मुरीद गुरू गोर समावे।

वही भाव है कि सम्पूर्ण रूप से मन, वचन और कर्म से अपना अंहकार, अपना अहंभाव, अपनी बुद्धि, अपनी चतुराई छोड़कर शिष्य गुरू अर्पण हो जाए। आपको याद होगा ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी जी महाराज जब भी किसी को दीक्षा दिया करते थे, अपने पलंग पर रखे हुए गंडासे की ओर संकेत करते हुए फरमाया करते थे कि आपको गुरू ऋण अपने सिर के साथ चुकाना होगा और गंडासे के साथ सिर कलम कराना होगा-

हिकमत हुक्म चुकाईये.....

यह आदेश शिष्य के लिए श्री गुरू नानक देव जी का है। उन्होंने शिष्य पद को ग्रहण करने की दो शर्तें लगा दी- एक तो यह कि हर प्रकार की मन की उछल-कूद और कारागरी छोड़कर भावार्थ हिकमत त्यागनी होगी और

दूसरी शर्त यह होगी कि गुरूशरणागत होने के बाद अपने गुरूदेव के आगे अपनी बात मनवाने के लिए न तो हुक्म करना होगा और न ही ज़िद करनी होगी। अपने मनों का निरीक्षण करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि हममें से बहुत से इस कसौटी पर पूरे नहीं उतरते और गुरू पर विश्वास करने की बजाय अपने भौतिक और मायिक पदार्थों पर अधिक निर्भर करते हैं। हर एक बात को अपनी अक्ल की उधेड़बुन के साथ हल करने की चेष्टा करते हैं या फिर तृष्णा से अन्धे होकर गुरूदेव से हर पल एक नई वस्तु मांगने का प्रयत्न करते हैं बल्कि अपने आपको धोखा देते हुए गुरूदेव को भी धोखा देने का यत्न करते हैं और अपनी मनोकांक्षा को विनम्र शब्दों के साथ लिपेटते हुए अपना ही हुक्म चलाने का यत्न करते हैं और गुरूदेव को अपनी आज्ञा में रखना चाहते हैं।

गुरू और शिष्य प्रणाली में गुरू-शिष्य परम्परा का आधार यह कहा जाता है कि गुरु कृपा से ही ईश्वर कृपा मिले, पर इस कथन को श्री गुरू ग्रन्थ साहिब ने स्वीकार नहीं किया और एक ऐसी अनोखी सच्चाई को प्रगट किया है, जिस के आगे सीस अपने आप झुक जाता है। महाराज कहते हैं-

हर कृपा ते सन्त भेटया, नानक मन प्रगास ।

अर्थात् पहले प्रभु की कृपा हुई, तब गुरू प्राप्ति हुई। यदि ईश्वर कृपा न होती तो गुरु कृपा के भागी भी न बन पाते। सोढी सुलतान श्री दरसन गुरू रामदास कहते हैं-

ही देखन के ताईं।

कृपा करे तां सतगुरू मेले हरि हरि नाम ध्याई।
जे सुख दे तां इत ही राजा, दुख विच सुख मनाई।
तन मन काट-काट सब अर्पि विच अग्नि आप जलाई ।।
पंखा फेरी पानी ढोवा जो देवे सो खाई।
नानक गरीब ढह पया द्वारे, हरि मेल लये वडियाई ।।
अखि काढ धरी चरणागत, सभ धरती फिर मत पाई।
जे पास बहाले तां तुझे आराधी जे मार कडे भी ध्याई ।।
जे लोक सलाहे तां तेरी उपमा जे निन्दे ते छोड़ न जाई।
जे तुद वल रहे तां कोई कहे आखो तुद विसरिये मर जाई ।।
वार-वार जाई गुरू ऊपर पै पैरी संत मनाई।
नानक विचारा भया दिवाना हरि तौ दरसन कै धाई।।
मिह बरसे भी गुरू देखन जाई।
समुद्र सागर होवे बहु खारा गुरूमुख लंघ गुरू पह जाई।।
ज्यौं प्राणी जल बिन है मरता त्यों सिख गुरू बिन मर जाई।
ज्यों धरती सोच करै जल बरसे त्यों सिक्ख गुरू मिल बिगसाई ।।
सेवक का होये.....

जे गुरू झिड़के तां मीठा लागे जे बख्शे तां गुरू वडियाई ।
गुरूमुख बोले सो थाये पाये, मनमुख किछु थाये न पाई।
पाला ककर बर्फ वरसे गुरू सिक्ख गुरूदेखन जाई ।।
सब दिवस-रैन देखयो गुरू अपना विच अखी गुरू पैर धराई।
अनेक उपाव करि गुरू कारण गुरू भावे तो थाई ।।
रैन-दिवस गुरू चरण आराधी दया करो मेरे साई।
नानक का जिउ पिण्ड गुरू है गुरू मिल तृप्त अधाई।।

गुरू के दर्शनों के लिए मन तड़प रहा है, प्रभु कृपा हुई तो सदगुरू मिले और अब ईश्वर नाम का ध्यान किया जाये। अगर भूख सहनी पड़े तो हर प्रकार से संतुष्ट रह सकें और हर दुःख से सुख मनायें, तन और मन दोनों के टुकड़े-टुकड़े करके गुरू अर्पण कर दिये जायें और आग में अपने आपको जला दिया जाये। गुरू सेवा करते हुए, पंखा फेरने और पानी ढोने अर्थात् हर प्रकार से तुच्छ से तुच्छ सेवा भी प्रसन्नता सहित की जाये और जो कुछ मिले, वही कुछ खाया जाये। सारी धरती के ज्ञान से यह तत्व प्राप्त किया है कि गुरूदेव अपने पास बैठने का आदेश दें, फिर भी उन्हीं की आराधना-पूजा की जायेगी। और अगर वह जान से भी मार डालें तो भी लबे दम उनका नाम लिया जायेगा। यदि संसार प्रशंसा करे तो गुरूदेव ही की उपमा, बढ़ाई होगी और निन्दा देखनी पड़े तो भी संसार की खातिर गुरू को नहीं छोड़ा जायेगा क्योंकि जीवन गुरूदेव के साथ रहने, गुरूदेव की प्रसन्नता प्राप्त करने में है। गुरूदेव को भूल जाना मृत्यु होगी। बार-बार गुरूदेव पर कुर्बान जाईये और चरण पकड़कर उनकी दया उनसे मांगिये, उनकी खुशी प्राप्त कीजिए चाहे बारिश हो, गुरू दर्शन के बगैर मन रह न सके। खारे समुद्र और सागर को शिष्य पार करके भी गुरू के श्री चरणों में पहुंच जायेगा। जैसे जल के बगैर प्राणी की मृत्यु हो जाती है, इसी तरह से शिष्य गुरूदेव के बगैर मर जाये और जिस तरह वर्षा पड़ने पर धरती खुशी से फूली नहीं समाती, इसी प्रकार शिष्य गुरू कृपा में आनंद प्राप्त करे। अगर गुरूदेव बुरा भला भी कह दें तो उनके वचन मीठे लगें और अगर गुरूदेव खता को माफ कर दें, भूल को क्षमा कर दें तो उनकी बढ़ाई होगी। गुरू कृपा से ही कोई जगह नसीब हो सकेगी। गुरू से बेमुख मन के कहने पर चलने वाले को कोई ठौर-ठिकाना नहीं। हरेक दिन और रात अपने गुरूदेव के दर्शन कंरू और अपनी आंखों में श्री गुरूदेव के चरण कमल सुशोभित रंखू। जैसे भी हो, कुछ भी क्यों न करना पड़े, गुरू की खुशी से ही मन और भलाई है। गुरूदेव ही मेरी आत्मा के शरीर हैं और गुरू मिलने से ही मेरी सन्तुष्टि और तृप्ति है।



अध्याय - 28

जन्म-जन्मांतरों के विचारों, कर्म फलों, तृष्णाओं और वासना के समुदाय में घिरी हुई आत्मा उसी तरह से अन्धकार, अज्ञानता और भान्ति का शिकार हो जाती है जिस तरह गर्मियों की दोपहर को आग बरसाने वाले सूरज को घनघोर घटाएं घेर लेती हैं। प्रकाश मंद पड़ जाता है और यहां तक कि काले बादलों के कारण अन्धेरा छा जाता है दोपहर को भी शाम जैसा झुटपटा पैदा हो जाता है। महाभारत में एक बड़ा प्यारा प्रसंग है कि जयद्रथ से युद्ध में अर्जुन को बड़ी सख्त लड़ाई के बाद भी जब विजय प्राप्त होती नज़र नहीं आई तो उसने देखा कि अन्धेरा हो गया है। जैसे शाम की कालिका ने सूर्य देवता को पराजित कर दिया हो। अर्जुन ने सौगंध खा रखी थी कि शाम होने तक या तो शत्रु का दमन कर लेगा या फिर अपने प्राण त्याग देगा। शाम होते ही अर्जुन ने लड़ाई से हाथ खींच लिया, तीर कमान छोड़ दिया और शत्रु अपनी विजय का डंका बजाते हुए भीड़ को चीर कर सामने आन खड़ा हुआ। ऐन उसी वक्त भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि सुनहरी मौका तुम्हारे साथ लगा है और शत्रु का नाश करो। परन्तु अर्जुन ने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर कायम हूं। किसी भी सूरत में सूरज ढलने के बाद दुश्मन पर बाण नहीं चलाऊंगा। भगवान श्रीकृष्ण कहने लगे - " अर्जुन! यह तुम्हारी भूल है। सूरज अस्त नहीं हुआ। बादलों ने इसे घेर लिया है और वह देखो बादल के परदे को फाड़ कर सूर्यदेव की किरणें प्रकाश फैलाने लगी हैं।" जो शत्रु शायद साधारण जंग में पराजित नहीं हो सकता था, भ्रान्ति की शाम ने उसकी मौत का सामान पैदा कर दिया।

अज्ञानता नाम ही इस अंधेरे का है जो हमारा द्वन्द्वभरा मन पैदा कर लेता है और अपने ही बनाए हुए चक्रव्यूह में फंसता है, पीड़ित और दुखी हो जाता है। इसी कारण महापुरूषों ने महामाया को अन्धकारमय बताया है और हमारे धर्म ग्रन्थों का सारांश इसी मोह-माया के, अन्धकार परमपिता परमात्मा के सम्मुख प्रार्थना करता है- तमसो मा ज्योर्तिगमय । से निवृत्ति बतायारे धर्म ग्रन्थों कठोपनिषद् में साधक विनम्र भाव से हे प्रभु! मुझे अन्धकार से ज्योति की तरफ ले चलो। कितना गहरा रहस्य है वेदों के मूल मंत्र, गायत्री के जप और पाठ का। प्रभु उपासना करने के बाद साधक विनय पूर्वक वन्दना करता है कि हे प्रभु! मेरी बुद्धि को अपनी ओर प्रेरित करो। अन्धकार से छुटकारा पाने के लिए ये सारी इल्तजाएं, ये सारी उपासनाएं की जाती हैं।

बाईबिल के एक दृश्य पर ज़रा विचार कीजिए। यशुमसीह झील के दूसरी तरफ एकांत स्थान पर जाकर समाधि-स्थित होकर प्रभु आनन्द लूटने के बाद जब झील के इस पार आने के लिए आगे बढ़े तो झील का पानी तूफान के कारण चढ़ा हुआ था। निर्भयता की जीवन्त मूर्ति यशुमसीह पानी पर चलने लगे। पीटर और दूसरे मछेरे दंग रह गए। उन्होंने समझा कोई भूत है जो पानी पर चल रहा है। करूणा और दया के पैगम्बर यशुमसीह ने पीटर को आश्वासन देते हुए कहा - " मैं क्राईस्ट हूं।" तुम भी मेरी तरह पानी पर चलना शुरू कर दो। New Testament (न्यू टैस्टामैंट) में आता है कि जीवन के इस मोड़ पर जब विश्वास की अग्नि परीक्षा हो रही थी पीटर ने कहा - "यदि आप सचमुच क्राईस्ट हैं तो मुझे भी अपने पास बुला लो।" 'यदि' का शब्द भ्रान्ति की मुंह बोलती तस्वीर है। विश्वास तो दोपहर के चमकते सूरज की तरह प्रकाशमान होता है। महामाया के अन्धकार, मन की भ्रान्ति और विश्वास की कमी के कारण हम सन्देह करने लग जाते हैं और हाल वही होता है जो पीटर का हुआ। पीटर दो ही कदम समुद्र की सतह पर चला होगा कि ज्वारभाटा के उमड़ते हुए पानी के तेज़ बहने

से घबरा गया। इतनी बड़ी तूफानी लहर से बच निकलने का कोई साधन नहीं यह सोच आते ही उसका शरीर पानी में धंसने लगा। पीटर पानी में डूब चला ।

यशुमसीह ने बहुत मार्मिक उपदेश दिया मानो सभी धर्म- ग्रन्थों का निचोड़ पीटर के सामने रख दिया। क्राईस्ट बोले - "पानी पर चलने की सत्ता और शक्ति तुम्हारे विश्वास में है, भ्रम छोड़ दो। समुन्दर की लहरें तुम्हें छोड़ देंगी।"

भगवान बुद्ध ने हमारे हिन्दू धर्म ग्रन्थों की एक कहानी को दोहराते हुए कहा था कि शिकार के मांस के एक टूकड़े को मुहं में लिए हुए चील धरती से ऊपर उठी तभी दूसरी चीलों ने उसके पीछे भागना शुरू कर दिया। अपने मुंह के निवाले को बचाने के लिए चील सटपटा गई। कभी इधर भागती कभी उधर, लेकिन सिर छुपाने को कोई स्थान न मिला। निराश हलकान होती हुई दौड़ भागकर चूर-चूर हो गई और जब उसे बचाव का कोई दूसरा रास्ता दिखाई नहीं दिया तो इसने मांस का टुकड़ा मुंह से नीचे फेंक दिया और यह देखकर वह चकित रह गई कि दूसरी चीलों ने इसका पीछा करना छोड़ दिया था। ज़मीन पर गिरे हुए टुकड़े को अपने मुंह में दबाकर अपने मन को उसका कैदी बना दिया फिर सुख की तलाश में भटकने लगी। मोह की यह फांस छूटते ही निवृत हो गई, सुखी हो गई, आनन्दमय हो गई।

हमारे सभी धर्म ग्रंथ इसी महामाया के भ्रम जाल को तोड़ने के लिए अनेक प्रकार की विधियों और साधनाओं से भरे पड़े हैं। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग इत्यादि जितने भी मार्ग हैं उनका एक ही ध्येय है कि अज्ञानता में फंसा हुआ जीव माया के कारण पैदा किए बन्धनों से मुक्त हो। जब तक जीव भ्रम का मारा इधर उधर भटकता है तब तक शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। कोई भी पकड़ क्यों न हो, कोई भी गिरफ्त क्यों न हो, जब तक हमारा मन प्रभु चरणों में, श्री गुरू चरणों में पूर्ण रूप से शरणागत होकर अनन्य भक्ति और विशुद्ध विश्वास का पात्र नहीं बन जाता, शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। शान्ति का मूल मंत्र गुरू विश्वास है लेकिन गुरू विश्वास का अर्थ यह नहीं कि हम नपुंसक होकर बैठ जाएं, आत्मानुष्ठान के लिए साधना करनी बंद कर दें और यह सोचना शुरू कर दें कि जो कुछ करेंगे गुरूदेव करेंगे। यह तो गुरू भक्ति नहीं होगी। मानसिक ग्लानि होगी, वह साधक क्या जो साधना छोड़ दे। द्दढ़ विश्वास होना चाहिए कि मेरे गुरूदेव मेरे ही कल्याण के लिए मुझे साधना आरूढ़ देखना चाहते हैं। मायाजाल के विरूद्ध इस महासंग्राम में गुरुदेव सारथी बनकर हमारे साथ रहेंगे। रणभूमि में हमारी हर प्रकार से रक्षा करेंगे। लेकिन हमें अर्जुन की तरह हथियार उठाकर लड़ना होगा। जिस तरह से भगवान श्री कृष्ण ने संग्राम प्रारंभ से पहले ही अर्जुन से कह दिया था कि इस युद्ध में मेरी सहानुभूति, अनुकम्पा, कृपा तो साथ होगी लेकिन युद्ध तुम्हें करना होगा। शस्त्र तुम चलाओगे, विजय मैं दिलाऊंगा। इसी तरह गुरूदेव हर साधक से यह अनुरोध करते हैं कि वे मन के दोषों, भ्रान्तियों, मायाजाल के फंदों और महामार के तूफानी आक्रमणों के विरूद्ध साधना करें, वे इसे सहायता देकर दुःखों से निवृत्त कर देंगे। वही मां जो एक पल के लिए भी अपने बच्चे को न आंख से परे करती है, न बाहों से परे करती है बल्कि हर वक्त गले से लगाए रखती है वह यही चाहती है कि बच्चा बढ़े, फले फूले और अपने पैरों से चलना शुरू कर दे। श्री गुरूदेव का अपना जीवन इसी निरन्तर साधना की ओर अनकही तपश्चर्या की मुंह-बोलती तस्वीर होती है। गुरूदेव से माया

के अंधकार के विरूद्ध युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए युक्तियां ही नहीं पूछिए, उन युक्तियों को अपने जीवन में उतारिए और जिस तरह गुरूदेव कहते हैं, रूके बगैर निरन्तर तप के पथ पर चलते रहें। विश्वास रखें कि लक्ष्य की प्राप्ति अवश्यमेव होगी और तृष्णाओं, बाधाओं, जन्म-जन्म की रूकावटों और भीतरी भ्रान्तियों के अंधकार में फंसा हुआ मन श्री गुरूदेव की असीम अनुकम्पा के द्वारा साधना सफल होगी।



अध्याय - 29

अध्यातम- पथ पर जितनी आवश्यकता किसी विवेकशील, वैराग्य पुंज, आत्मानुभवी महापुरूष को अपने गुरूदेव धारण करने की है उतनी ही ज़रूरत इस बात की है कि साधक पूर्ण रूप से अपने आपको गुरूदेव के चरणों में अर्पित कर दे और हर प्रकार से शरणागत हो जाये। अपने ज्ञान-ध्यान, जप, कर्म, योग, यज्ञ इत्यादि सभी विशेषताओं का परित्याग करके एक अबोध बालक की तरह गुरू चरणों में अपने आपको डाल दे। शरणागति का उपदेश उतना ही जरूरी है जितना कि गुरू धारण करना। और सच्चाई तो यह है कि ये दोनों शर्तें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। गुरू धारण करने का अर्थ ही यह है कि शिष्य अपना सब कुछ गुरू चरणों में डाल दे। भगवान् श्रीकृष्ण ने और उनसे पहले वेदों और शास्त्रों ने शरणागति की महिमा गाई है। कितनी बड़ी अटल सच्चाई भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रगट करते हुए अर्जुन को उपदेश दिया कि सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ, शरणागत हो जाओ। जानिये, सब धर्मों मे बड़ा धर्म अपने आपको गुरू-समर्पण करना है, निःसंकोच बिना किसी शर्त के, बिना किसी झिझक के ।

सूफी-संत, शरणागत का रहस्य बताते हुए कहते हैं, कि सच्चा शिष्य वही है, सच्चा मुरीद वही है जो मुर्दे की भांति बिना किसी हील-हुज्जत के अपने आपको गुरूदेव के चरणों में अर्पित कर दे। उनका कहना है कि सच्चा मुरीद वही है जो जुबान रखता हुआ भी न बोल पाये, आंखें रखता हुआ भी न देख पाये, हाथ-पांव रखता हुआ भी कोई हरकत न करे और इससे भी बढ़कर ज्ञान और विवेक का आधार लेना छोड़ दे और अपने आपको वही कुछ करे और वही कुछ कहे जो गुरुदेव आज्ञा दें। गुरू आज्ञानुसार पांव से सिर तक शरीर को उनके रंग में रंगना ही काफी नहीं, पांचों ज्ञानेन्द्रियों को भी गुरू अर्पण कर देना होगा। एक महापुरूष अपने शिष्यों को शरणागति का उपदेश दे रहे थे। वहां पर कुछ ऐसे शिष्य भी थे जो डींगे मारने वाले थे, किन्तु परीक्षा के पहले ही पर्चे में फेल हो गये। गुरू साहिबान की ज़िदंगी में ऐसी अनेक घटनाएं वर्णन की गई हैं जो अपने आपको बहुत भक्ति वाला कहते थे वे बहुत बुरी तरह फेल हुए। मिथ्या ज्ञान के कारण अहंकार उत्पन्न हो गया था और शिष्य गुरूदेव की आज्ञा का पालन करने की बजाय उनको ही समझाने-बुझाने लग जाते और उनकी पीठ के पीछे उनकी निदा भी करते थे। यही कारण था कि वे उस अमृत का पान न कर सके जो गुरूदेव देना चाहते थे

और उल्टा यही सोचते थे कि वृद्धावस्था के कारण गुरूदेव अब ठीक प्रकार से सोच भी नहीं सकते। अहंकार के कारण गुरूदेव को बेसमझ और अपने आपको नीतिज्ञ समझने लग गये थे।

जितने भी संसार में दूसरे धर्म हैं और ईश्वर-प्राप्ति की अलग-अलग राहें हैं, उन सबमें प्रमुख आधार शरणागति पर ही रखा गया है। 'इस्लाम' अरबी शब्द है जिसका अर्थ है शरणागत। हजरत मुहम्मद कहते हैं कि 'सच्चा मुस्लमान वही है, हो सकता है जो मन, वचन, कर्म से शरणागत हो और रसूल व खुदा दोनों को अपना आप अर्पण कर दे।" यशु मसीह कहा करते थे- "जो शरणागत नहीं होता वो प्रभु की दरगाह में कभी कबूल नहीं होता।" "जैसे काग जहाज़ को सूझे और न ठौर।" एक गुरूदेव पर ही पूर्ण विश्वास, एक ईश्वर पर ही पूर्ण रूप से आश्रित हो जाना।

शरणागति में भय नहीं होता। शरणागत हो ही वह सकता है जिसको अभय पद गुरु कृपा से प्राप्त हो जाये। एक जहाज़ को आग लग गई। सवारियों में ऊधम मच गया। जान बचाने क लिए लोग इधर-उधर दौड़ने लगे। घबराहट में कई तो समुद्र में डूब गये। आग ने तो क्या जलाना था, वे स्वंय पानी में गर्क हो गये। जहाज़ के कप्तान का छोटा बच्चा उठा और अपने पिता को अपने पास न पाकर बाहर निकला। चेहरे पर शांति थी। निडरता की मूर्ति बना मुसाफिरों से पूछता है- "मेरे पिता कहां हैं?" किसी ने कहा- "क्या तुम्हें पता नहीं कि जहाज़ में आग लग गई है। क्या तुम्हें डर नहीं लगता?" हल्की सी मुस्कान के साथ बच्चे ने कहा- "जब मेरा पिता मेरे पास है तो डर किस बात का ।"

महात्मा अनन्य स्वामी जी महाराज ने अभी संन्यास नहीं लिया था पर तैयारी पूर्ण कर ली थी। उनके बड़े लड़के को अंग्रेज़ हुकूमत के ख़िलाफ बगावत करने और बम्ब वगैरा चलाने के जुर्म में फांसी की सजा सुनाई गई। हाईकोर्ट से पैदल अपने निवास स्थान की ओर आ रहे थे तो किसी सज्जन से भेंट हुई। उन्होंने देखा कि महात्मा जी सदा की तरह मुस्करा रहे हैं। पूछा- "इस आत्म-विश्वास का कारण क्या है? कहा- "मैं जानता हूं कि हम सबका जीवन ईश्वर की देन है। उसी ने दिया है जब चाहेगा ले लेगा फिर भयभीत क्या होना।"

हम में से अक्सर लोग जिज्ञासु बन कर, शिष्य बन कर, श्रद्धालु बन कर सुन्दर शब्दों का जाल बिछाते हैं और संसार के मोह माया में फंसे हुए मान की तरंगो को आड़े तिरछे तरीके से गुरू के चरणों में रखते हुए वरदान मांगने की चेष्टा करते हैं। हमारी गुरू-भक्ति केवल इस बात पर आधारित है कि हम जो कुछ गुरूदेव से मांगे वह हमें लाकर दें। शरणागत होने की तो बात कभी दिलो-दिमाग़ में आई तक नहीं। सच्चे शिष्य होने की पहली शर्त पर ही हम खोटे सिक्के की तरह परीक्षा में असफल हो गये। हमारी मनोकामनाओं की पूर्ति होनी चाहिए। इच्छा समाप्त करने के बजाय उल्टा गुरू-भक्ति की आड़ में माया-मोह का भयंकर जाल बना लिया। नागिन माया के जहरीले पंजे से खुद को छुड़ाने की बजाय यत्न किया कि हमारे साथ जिनको हम इष्ट कहते हैं, गुरू कहते हैं, उनको भी माया के जाल में डाल दिया जाये।

गुरू-भक्ति तो तपश्चर्या का रास्ता था, आत्मा के अनुसंधान का, आत्म-निरीक्षण का, आत्म नव-निर्माण का, परन्तु हमने गुरू कृपा का दुरूपयोग करना शुरू कर दिया और समर्पण होने की बजाय गुरूदेव को ही अपनी बोली पर नचाना चाहा। इस तरह से हमारा जो भी कदम उठा वो हमें मंज़िल की तरफ ले जाने की बजाय मंज़िल से और दूर ले जाता चला गया और गुरू कृपा से जो लक्ष्य सुलभ होना था वो हमारे मन के मोतिया-बिन्द के कारण सदा आंखों से ओझल बना रहा।



अध्याय - 30

धर्म अनुशासन का दूसरा नाम गुरू भक्ति है- अपने सद्गुरूदेव रहनुमा और मुर्शिद के लिए दिल की गहराईयों से उठने वाली अगाध श्रद्धा और विश्वास की धारा के साथ सेवा में सलग्नता, सेवा में ही चौबीसों घन्टे जुटे रहना, यह गुरू भक्ति धर्म का प्राणाधार रही है और सदा बनी रहेगी। अलग-अलग धर्म क्षेत्रों में मज़हबों और अकीदों में सभी महापुरूषों ने गुरू भक्ति को ही सार वस्तु कहा है। स्वाध्याय और साधन तप से भी कहीं ज्यादा सेवा को सर्वोच्च स्थान दिया है। वैदिक काल के बाद ब्राह्मण काल आया। तब ब्राह्मण ग्रन्थों का ही ज़ोर था और उसके बाद आया उपनिषदों का काल। वेदों में जो ज्ञान सूक्ष्म शब्दों में इशारतन कहा गया था, उसके गूढ़ रहस्य को समझने के लिए सेवा को ही श्रेष्ठ साधन माना गया। उपनिषदों का अर्थ ही यही है। तत्त्वेता, रूहानी भेद जानने वाले परम संतो और ऋषियों के चरणों में बैठना सेवा करके उनकी अपूर्व दया का पात्र बनना और निज नित्य क्रियात्मक ढंग से वैदिक सच्चाईयों को दिन प्रति दिन अपने अनुभव में लाना और जिन दैवी गुणों का वर्णन वेदों और ब्राह्मणों ने किया है, उन्हें अपने अनुसरण में लाना। उपनिषद् काल में ही सेवा को परम श्रेष्ठ साधन का दर्जा दे दिया गया और फल यह निकाला कि धर्म पालन करने, प्रभु प्राप्ति के लक्ष्य को सामने रखने वाले जिज्ञासु ऋषियों के पास घने जंगलों में जाकर रहने लगे और ऋषियों की सेवा करके गुप्त भेद जानने की चेष्टा करने लगे। हर एक उपनिषद् एक नहीं, अनेकों गाथाओं और कहानियों का संग्रह है जिनके अध्ययन से पता चलता है कि शिष्य का कर्तव्य बिना चूं चरा गुरू के आगे सम्पूर्ण रूप से समर्पित होकर सेवा करना था। कितनी मनोरंजक गाथा है कि जिज्ञासु उपासना प्रार्थना, आराधना के गूढ़ तत्व को जानने के लिए श्री गुरूदेव के आश्रम में पहुंचता है और गुरूदेव उन्हें निज सानिध्य में रखते हुए सेवा कार्य में लगा देता है। सेवा से शिष्य की ज्ञान प्राप्ति के लिए सच्ची चेष्टा की परख की जाती थी। जो सेवा में पूरा न उतर सका, वंचित रह गया। कितनी अलौकिक और परम सौन्दर्य गाथा है कि पहले पांच छः बरस सेवा, तप करने के बाद जब शिष्य ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक गुरूदेव से ज्ञान प्राप्ति की याचना की तो गुरूदेव ने आदेश दिया कि पांच छ: बरस और तप करो। यदि योग्य समझे जाओगे तो कुछ दे दिया जायेगा। सेवा ही वह साधन था जिससे शिष्य गुरू की रहमत का अधिकारी बनता था।

सूफी संतों ने भी इसी मार्ग को अपनाया और सेवा को ही महानता दी। एक पीर-मुर्शिद ने अपने शिष्य से बाग से आम तोड़ लाने के लिए कहा। जितने आम वह लाया, सब खट्टे निकले। गुरूदेव ने गुस्से से कहा- बारह बरस से तुम मेरे साथ इस बाग़ में सेवा तप करते चले आ रहे हो, तुम्हें इतना भी पता नहीं कि कौन से पेड़ के आम मीठे हैं। हाथ जोड़ शिष्य ने कहा- मैंने आमों की देखभाल तो की है, इन्हें चखा तक नहीं फिर मुझे कैसे पता लगता कि कौन से पेड़ के आम मीठे होंगे।

एक तिब्बती गुरू ने शिष्य से कहा- तुम्हें ईश्वर दिखा सकता हूं यदि तुम बिके हुए गुलाम की तरह मेरे कहने पर सेवा कार्य करो। शिष्य ने हां कर दी तो गुरूदेव ने कहा-पहाड़ की जिस चोटी पर बैठे हो, छलांग लगाकर नीचे की खड्ड में जा गिरो । जाहिर था कि गिरने से हड्डी पसली टूट जाती और जीवन का अन्त हो जाता। अपनी मौत से बेपरवाह होकर शिष्य जिसका नाम तिब्बती ग्रंथों में परम श्रेष्ठ समझा जाता है, मीला रीपा ने उसी दम चट्टान से नीचे छलांग लगा दी। अचम्भे की बात यह थी कि गुरूदेव ने रास्ते में ही अपनी चादर फैला कर उसे बचा लिया।

कहा जाता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने Gurudom का कट्टर विरोध किया, परन्तु उनका ही जीवन गुरुभक्ति और गुरूसेवा का प्रतीक है। जब कहीं भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त न हो सका तो प्रज्ञाचक्षु गुरूदेव विरजानन्द जी के पास आये और वे स्वामी दयानन्द से बोले कि हर वक्त मेरी सेवा में रत रहना होगा। लेकिन न मुझसे खाना मांगोगे, न कपड़ा तलब करोगे। तुम्हारी नींद तक तुम्हारी नहीं होंगी। हर निज सुख को त्याग देने के लिए तैयार हो तो बात बनेगी। स्वामी दयानन्द ने हाथ जोड़कर कहा कि मैं तो अपनी जान हथेली पर रख कर लाया हूं किसी भाव यह सेवा मिले, मुझे स्वीकार है। स्वामी दयानन्द दोपहर को कभी भिक्षा मांग कर खाते, कभी किसी हलवाई की दुकान पर बर्तन मांज कर, कभी झाडू देकर पेट भरते और गुरूदेव की टहल सेवा में दिन-रात जुटे रहते। एक दिन झाड़ू लगा रहे थे कि गुरूदेव ने आवाज़ दी। उनकी आज्ञा का पालन करके दूसरे काम करने लगे। झाड़ू से जो कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किया था, वह वहीं पड़ा रहा और जब विरजानन्दजी बाहर निकले तो उनका पांव अकस्मात कूड़े के ढेर पर पड़ा, आग-बगूला हो गये। अपनी सोटी के साथ ही स्वामी दयानन्द का मारना-पीटना शुरू कर दिया। डंडा टूट गया। स्वामी दयानन्द ने गुरूदेव के हाथों में सोटी थमाते हुए कहा- आपका वृद्ध शरीर अत्यन्त कोमल है। बज्र जैसे मेरे शरीर को मारते हुए आपके हाथों को चोट तो नहीं लगी? गुरू भक्ति की यह अनोखी तस्वीर स्वामी दयानन्द के जीवन से सीखने को मिलती है।

सिख इतिहास गुरू सिक्खी गुरू सेवा का ही दूसरा इतिहास है। गुरू अंगद देव, गुरू महाराज जी के कहने पर मुर्दा तक खाने को तैयार हो गये। भीगती बारिश में घर की टूटी हुई दीवार के लिए मिट्टी लाते, पानी के तेज़ बहाव में मिट्टी बह जाती। श्री गुरू नानक देव जी के ज्ञानी और तपस्वी सुपुत्रों ने हंसते हुए कहा- 'दीवार सुबह बना लेना।' श्री अंगद देव जी ने उत्तर में कहा-'मेरा काम सेवा करना है, मिट्टी रहे या बह जाये, इससे मेरा क्या प्रयोजन ।'

गोइन्दवाल साहब में थड़े बनाने का काम शिष्य मण्डली को सौंपा गया। पूरी गर्मजोशी के साथ हज़ारों ने इस काम को शुरू कर दिया। रोजाना शाम होते ही गुरूदेव चबूतरों को नापसन्द कर गिरवा देते जिससे धीरे-धीरे सभी ने काम बंद कर दिया। यहां तक कि अकेले गुरू अमरदास यह सेवा करते रहे। महाराज ने एक दिन कहा कि "जब मुझे तुम्हारा बनाया गया कोई थड़ा पसंद नहीं तो फिर क्यों बनाते हो?" उत्तर में कहा -"मेरा काम थड़ा बनाना है, पसंद या रद्द करना काम आपका है।" गुरूदेव के स्नान के लिए व्यास नदी से पानी लाते हुए जब खड्डी में गिर पड़े, अपने बूढ़े शरीर की परवाह नहीं की, गुरुदेव के स्नान का जल न बिखर जाये, गागर को सभांल रखा, लहुलुहान वापिस आये, जुलाहे की पत्नी से गालियां भी सुनीं, फटकार भी खाई लेकिन माथे पर शिकन न पड़ी, उफ तक न की। इस अगाध सेवा से ही प्रसन्न होकर उन्हें गुरू गद्दी सौंप दी गई। कितना अच्छा हो कि हम कुछ और बनने से पहले सेवा पुंज बन जायें और गुरू सेवा में ही अपना आप विलीन कर दें-

मेरे तन से प्राण निकलें, गुरू सेवा करते-करते ।



अध्याय - 31

स्वामी रामतीर्थ से हारमेटिक ब्रदरहुड हाल सैनफ्रांसिस्को, अमेरिका में (Hermetic Brotherhood Hall San Francisco America) २६ दिसंबर, १६०२ को एक जिज्ञासु ने प्रश्न पूछा कि क्या ऊँ को बिना समझे-बूझे उच्चारण करने से कोई विशेष लाभ हो सकता है?

स्वामी रामतीर्थ ने फरमाया कि हिमालय के जंगलो में रहने वाले साधु ॐ का उच्चारण करते हैं या कुछ गाते-बजाते रहते हैं। बहुधा सांप, हिरण और जंगली पशु अपने स्थान छोड़कर साधुओं के पास आ जाते हैं। यद्यपि ये जंगली जानवर संगीत-विद्या के नियम कुछ नहीं जानते, ऊँ उच्चारण के बारे में भी कुछ नहीं जानते फिर भी उन पर इसका प्रभाव पड़ता है। यदि केवल ध्वनि ऐसा अद्भुत प्रभाव उन सांपों और हिरणों पर डाल सकती है, तो ठीक समय पर नियमपूर्वक उच्चारण की हुई केवल ध्वनिमात्र क्या आपके जीवन पर कोई प्रभाव न डालेगी?

संगीत के हर एक गीत में तीन बातें होती हैं। एक तो गीत का अर्थ, दूसरे संगीत-विद्या के नियम, तीसरे गीत के शब्द या ध्वनि । यदि संगीत की इन तीनों बातों से आप भली-भांति परिचित हैं, तो आपको संगीत से अद्भुत आनन्द मिलेगा। किन्तु यदि आप उसके एक ही अंग से परिचित हैं तो आप कुछ अंश तक ही उसका मज़ा लूट सकते हैं। सांप और हिरण केवल संगीत की तानों को सुनते हैं वे उसके अर्थ और उसके नियमों के संबंध में कुछ नहीं जानते, फिर भी उन्हें आनन्द आता है। इसी प्रकार कुछ लोग संगीत के नियमों का, जिन्हें इस विद्या के जानने वालों ने बनाया है, आनन्द लेते हैं, उन्हें संगीत के अर्थ से कोई मतलब नहीं। दूसरे केवल संगीत के

अर्थ का सुख भोगते हैं, उन्हें संगीत के नियमों की कुछ भी जानकारी नहीं होती। तीसरे केवल संगीत के नियमों-उपनियमों में ही मग्न रहते हैं। इसी प्रकार ऊँ में भी तीन पहलू हैं। पहला केवल ध्वनि है, केवल मंत्र है जैसा वह मुख से उच्चारण किया जाता है। दूसरा है अक्षर का अर्थ, जिसका अनुभव भाव द्वारा होता है। तीसरा है ऊँ को अपने चरित्र में उतार लेना अर्थात् अपने कार्यों और अपने जीवन में उसे गाना- अपने होठों से इसका उच्चारण करता है, हृदय से इसका अनुभव करता है और कर्म के द्वारा इसे गाता है, वह अपने जीवन को एक लगातार संगीत बना देता है। हर एक व्यक्ति के लिए वह ईश्वर है। यदि तुम उसे भावपूर्ण चित्त से उच्चारण नहीं कर सकते और न अपने कार्यों में उसे उतार सकते हो अर्थात् तुम उस पर अमल नहीं कर सकते हो, तो भी उसका उच्चारण न छोड़ना चाहिए। उसे केवल होठों से ही उच्चारते रहो। यह भी निरर्थक न जायेगा। यदि तुम उसे केवल भावपूर्वक गा सकते हो तो भी किसी अंश तक तुम्हें लाभ होगा। यदि तुम उसे केवल कर्म द्वारा गा सकते हो, भावनाओं तथा मुख के द्वारा नहीं गा सकते, तो यह भी अच्छा और श्रेयस्कर है। तात्पर्य यह तुम उसे मुख से जपना शुरू करो, कालान्तर में भावपूर्ण और कर्ममय गान स्वतः तुम्हारे द्वारा होने लगेगा।

कुछ ऐसी चीजें होती हैं, जिनके नाम लेने से ही मुंह में पानी भर आता है, जैसे नांरगी, नींबू इत्यादि । इनकी चर्चा का ही हमारे ऊपर एक प्रभाव पड़ता है और इनके खाने से तो निश्चय पूर्वक पूरा प्रभाव पड़ता है। ठीक इसी तरह ऊँ की ध्वनि अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती और यदि तुम उसे पूर्ण रूप से ग्रहण करो तो फिर पूरा प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भ में चाहे तुम्हें प्रभाव न मालूम पड़े किन्तु निश्चय रखो अन्त में वह अवश्य फल देगा।

जल-गणित-विद्या से हमें मालूम होता है कि यदि एक ऐसा हौज़ हो जिसकी पेंदी में डाट लगी हो और उसमें हम पानी भरते जायें, तो जितना भी पानी हम भरते जायेंगे उतना ही दबाव पेंदे पर बढता जाएगा और इस विद्या के नियमों से हम यह हिसाब लगा सकते हैं कि डाट को खोल कर और पानी को पेंदे से बाहर निकाल देने के योग्य जल का काफी दबाव पड़ने के लिए ठीक कितना पानी हमें हौज़ में डालना चाहिए। इस तरह यदि आप देह के हौज़ में ऊँ भरते जायें, तो मानो दबाव बढ़ने के रूप में उसका प्रभाव पड़ता रहेगा, किन्तु सर्व साधारण की दृष्टि में प्रभाव का प्रकट होना एक बात है और प्रभाव का उत्पन्न होना दूसरी बात । दबाव बढ़ते-बढ़ते एक ऐसा समय आयेगा, जब आप देखेंगे कि हौज़ की पेंदी से डाट हट गई है और जल फूट कर बहने लगा है। किसी समय तक प्रभाव चाहे प्रकट न हो किन्तु प्रभाव मौजूद जरूर होगा। एक दृष्टांत है- एक नई ब्याही कन्या थी, मानो सरलता की साक्षात् मूर्ति । उसे बच्चा जनने का अनुभव नहीं हुआ था। अपने गर्भ के पहले महीने में उसे अपने स्वभाव में कुछ अंतर न समझ पड़ा। सरल तो थी ही, उसने सोचा, अब आगामी महीनों में भी कोई अंतर न पड़ेगा। भारत में दुल्हन सास के साथ घर पर रहती है और सास अपनी बहू तथा उसके बच्चों की जरूरतों को पूरा करती है। युवती बहू एक दिन गम्भीर भाव से अपनी सास से कहने लगी- "अम्मा जी! अम्मा जी! जब मेरा बच्चा पैदा होने को हो, तब मुझे दया करके जगा देना, कहीं ऐसा न हो कि मेरे बिना जागे ही बच्चे का जन्म हो जाये।" अम्मा जी ने जवाब दिया- "प्यारी बहू! घबराओ नहीं, जब समय आयेगा तब किसी को तुम्हें जगाने की जरूरत न पड़ेगी। तुम्हारी ऐसी हालत होगी कि तुम खुद ही अपनी चीखों और रोने-धोने से अपने पड़ोसियों को जगा दोगी।" गर्भ के दिनों में विचित्र परिवर्तन हो रहा था, उस पर प्रभाव

पड़ रहा था यद्यपि माता को उसका ज्ञान न था। जब ठीक समय आता है, तब प्रभाव प्रकट हो जाता है। बस, इसी प्रकार इस ॐ मंत्र से पेट भरते रहो अपने को पुष्ट करते रहो, इस पौष्टिक दूध को खूब मनमाना पीते रहो, ठीक समय पर प्रभाव प्रकट हुए बिना न रहेगा। तुम्हें अधीर नहीं होना चाहिए।

जब राम बच्चा था, तब वह और कई दूसरे बच्चे अनाज के कुछ दाने और जौ या चावल ले आते और आंगन की बगिया में गड्ढे खोदते, फिर इन गड्ढों में दानों को जल सहित डाल देते और फिर इन सबको ढक देते थे। इस काम में सभी लोग इतने तन्मय हो जाते थे कि भोजन तक की सुध न रहती थी। दाने क्या पैदा करते हैं, कैसे उगते हैं, यह देखने के लिए वे उद्विग्न हो जाते थे। उस जगह से, जहां कुछ ही मिनट पहले उन्होने अनाज, जौ और चावल के दाने बोये थे, क्या उगता है, यह देखने के लिए अधीर हो जाते थे। एक क्षण के लिए भी उनसे यह स्थान छोड़ा नहीं जाता था, इस डर से कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे बिना जाने बीज उग जायें। सब बड़े चिन्तित रहते थे और एक घण्टा भी न होता, वे बहुत ध्यान से उस स्थान की जांच करते कि अंखुए निकले हैं या नहीं। किन्तु जब उन्हे कुछ भी दिखाई न पड़ता, तब बहुत निराशा होती। वे लोग थोड़ी मिट्टी हटा कर देखा करते कि शायद भीतर कुछ निकला हो, लेकिन कुछ देख न पाते। जब वहां कुछ न दिखाई पड़ता, तब थोड़ी और मिट्टी हटाते कि कुछ उगना शुरू हुआ है या नहीं। फिर और मिट्टी हटाते, पर दानों में कोई रूपान्तर न पाते। तुम भी इन बच्चों की तरह अधीर होकर एकाध घण्टे में ही फल काटने की इच्छा न करो। तुम बीज बो सकते हो, किन्तु इतनी थोड़ी देर में फसल नहीं काट सकते। उसमें अन्ततः कुछ समय अवश्य लगेगा, पर प्रभाव अवश्य ही पैदा होगा।



अध्याय - 32

भगवान शंकर की नगरी-शिवपुरी वाराणसी में हर रोज़ हज़ारों की संख्या में आने वाले यात्रियों के साथ एक आलौकिक यात्री का स्मरण कीजिये, जिसके तन पर एक फटा सा कुर्ता था, बाल बिखरे हुए थे। गर्द से अटे हुए पांव लंबी यात्रा के कारण लहु-लुहान हो चुके थे। यह यात्री गुरुवेला के नगर से आया था जिसे आजकल 'बौद्ध गया' कहते हैं। शक्ल-सूरत देखकर कोई भी नहीं कह सकता था कि इस यात्री के मन में अनन्त अगाध शान्ति और आत्म साक्षात्कार की दिव्य अनुभूति विद्यमान है। अन्तःकरण के उस महाआनन्द को शरीर से कैसे देखा जा सकता था और यदि कोई दिखाना भी चाहे तो यात्री कभी भी अपनी अनुपम प्राप्ति का ढिंढोरा न पीटता । साथियों ने ठुकरा दिया था। घर-बार पहले ही छूट चुका था। साधना के पथ पर चलते हुए जिन पांच साधु शरीरों से रिश्ता-नाता जोड़ा था वे पहले तो पूजा करते रहे, सम्मान देते रहे, पर वे ही अब गालियों पर उतर आये थे और तरह-तरह के लांछन लगाने से बाज नहीं आते थे। पर यह यात्री दया निधान करूणासागर उन्हीं पांचों व्यक्तियों की तलाश में यहां आये थे। इनका कसूर इतना था कि सुजाता के हाथों से खीर ग्रहण

कर ली थी। मंदिर की नर्तकी भगवान् इष्ट की प्रतिमा के सामने इकतारे के साथ गा रही थी-" मन वीणा के तारों को इतना न खीचों कि टूट जाएं और इतना ढीला न छोड़ो कि स्वर भी न निकल पाए।"

शाक्य मुनि बुद्ध ने सुजाता का यह गीत सुना तो कठोर तपस्या से अपने शरीर का कष्ट देने वाली अनिद्रा और भूख का त्याग व्रत भंग कर दिया। सुजाता से खीर खा ली और फिर पीपल के वृक्ष के नीचे इस धारणा के साथ आसन ग्रहण किया कि जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं हो जाता, इस आसन को नहीं छोडूगां, भले ही प्राण छूट जाएं। रात-दिन साथ रहने वाले, सेवा-सहयोग देने वाले इन साधुओं ने सोचा-तपस्वी साधु का मन फिसल गया है। सुजाता के रूप में उसकी मधुर आवाज ने और उस की मीठी खीर ने तपस्वी के तप को भंग कर दिया है। गालियां देते हुए वे पांचों गौतम बुद्ध का साथ छोड़कर बनारस चले आये थे।

आत्म-साक्षात्कार होने पर भगवान् बुद्ध ने देखा कि इनको छोड़ जाने वाले काशी गये हैं। वे उन्ही की खोज में दिन-रात यात्रा करते हुए दुःख उठाते हुए यहां पधारे थे। काशी से १२ मील दूर सारनाथ के मृगवन में ये पांचों तप में मगन थे। दूर से भगवान् बुद्ध को आते देखा तो निश्चय कर लिया कि हम इस ढोंगी को मुंह नहीं लगायेंगे। हम इस पाखण्डी को नमस्कार नहीं करेंगे। हम इस पथभ्रष्ट से कोई बात नहीं करेंगे। पर हुआ क्या? ज्यूं ही तथागत् पास आए एक-एक करके पांचो अपने आसन से उठे, सिर झुका कर प्रणाम किया और फिर उनके चरणों से लिपट गये। देखने वाले की एक दृष्टि ने इनकी काया बदल दी मानों फटी-फटी आंखों से अमृत के झरने फूट पड़े हों और इनके अन्तःकरण को छू गये हों। उन्हें एक सुगन्धी सी प्रतीत हुई, भगवान् बुद्ध के चरणों से मोहित हुए दण्डवत् प्रणाम करके गिर गये और जो वाक्य भगवान् बुद्ध ने बोला- कितना मार्मिक था, कहने लगे- 'बन्धुओं! दुःख पर विजय पाने का मार्ग मैंने पा लिया है। मित्रो ! मैंने मृत्यु को जीत लिया है। इसके लिए न प्राणायाम, न घोर तप करके शरीर को कष्ट देने की ज़रूरत है और न बहुत ग्रंथों का अध्ययन करने की, सच्चे मन से अगाध प्रेम के साथ हर जीव-जन्तु को अपना प्यार दीजिये। सेवा कीजिए। भवसागर से पार उतरने का इससे सुलभ मार्ग और कोई नहीं।"

भगवान् बुद्ध पहले धर्माचार्य थे, जिन्होंने राज योग, सहजयोग का उपदेश दिया। कितना मीठा नाम उन्होंने अपने इस खोजे हुए मार्ग को दिया- 'मध्यम मार्ग'

"शरीर को इतना न तपाओ कि यह नष्ट हो जाये और भोग-वासना में इतना न उलझाओ कि यह टूट जाये।" सुजाता का गीत इनका गुरू मंत्र था। भगवान् बुद्ध की दूसरी विशेषता यह थी कि उन्होंने धर्म को धर्म के ठेकेदारों के चंगुल से छुड़ाकर जनता जनार्दन का धर्म बनाया। मंत्रों, ग्रन्थों, रीतियों-रिवाजों, लिबासों, देशों और दूसरे तमाम आडम्बरों को तोड़कर उन्होंने वही मार्ग दिखाया जो कभी भगवान् कृष्ण ने दिखलाया था। सदा शिव और प्रेम के मार्ग को एक नई परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा-

बुद्धं शरणं गच्छामि ।

धर्मं शरणं गच्छामि ।

संधं शरणं गच्छामि।

सब धर्मो को छोड़ मेरी शरण में आओ । शरणागति का यह उपदेश देते हुए राम ने भक्ति का योग सबके हित के लिये जनता जनार्दन की भाषा में उनके सामने रखा और अपने निज जीवन को इस सांख्य योग का एक अनुपम उदाहरण बना दिया।

एक विचित्र सी बात उनके इस धर्म परिवर्तन चक्र प्रांरभ करते समय हुई। बौद्ध गया में पीपल के वृक्ष के नीचे रात को पिछले पहर जब सूर्य रात की अंधेरी दलदलों को चीरता हुआ ऊषा पथ की ओर बढ़ रहा था। महा-तपस्वी भगवान् बुद्ध को साक्षात्कार प्राप्त होने के बाद भी अपने जीवन का अन्तिम घोर संग्राम लड़ना पड़ा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मन, बुद्धि चित्त अहंकार इन सब पर सफलता प्राप्त करने के बाद एक लड़ाई इन्हें फिर भी लड़नी पड़ी। मैंने जो कुछ पाया है क्या इसे जन-कल्याण के लिये जनता जनार्दन के सामने रखूं या न? इनकी जीवनी से पता चलता है कि वे इस घोर संग्राम में छः दिन जुटे रहे। यह निश्चय नहीं कर पाये कि क्या करें, तभी अन्तिम क्षण उन्होंने कड़ा निश्चय किया और कहा- "मन बुद्धि को मरवाने वाले मार्ग तूने साधु का लिबास धारण करके मुझे पथ-भ्रष्ट करना चाहा। तूने मेरे कई जन्म नष्ट किये पर आज मैं तुझे सदा के लिए नष्ट कर रहा हूं। कोई सुने या न सुने, कोई माने या न माने, मेरा काम शुभ मार्ग दिखलाना है, चलना सुनने वाले का काम ।" अब देखिये भगवान् कृष्ण के वचनों को-कितने सुन्दर शब्दों में ढाला। अर्जुन को सम्बोधित कर भगवान् वसुदेव ने कहा था- " अर्जुन! जो यथार्थ मार्ग है तुम्हें दिखला रहा हूं। इसको ग्रहण करना और इस पर चलना तुम्हारा काम है।" फिर महाभारत के युद्ध शुरू होने पर उन्होंने कहा था "अर्जुन लड़ना तुम्हें होगा, मैं कोई शस्त्र धारण नहीं करूंगा। केवल देखूंगा तुम कैसे लड़ते हो?"

अढाई हज़ार वर्ष से ज्यादा हो गये हैं जब भगवान् बुद्ध ने अहिंसा धर्म, पर उपकार, सदाचार, मैत्री भाव, दया और करूणा का उपदेश हमें सुनाया था। इस पर चलना हमारा काम है। एशिया की इस ज्योति को विश्व की ज्योति कहा जाये तो अच्छा है। यह ज्योति, यह प्रकाश युग-युगान्तरों से हमें प्रेरणा देता चला आ रहा है। बुद्ध के चरणों में मन की समस्त भावनाओं को अर्पित करते हुए राजयोग को ग्रहण करें।



अध्याय - 33

"तेरा भाणा मीठा लागे"

यह हैं वे शाश्वत् शब्द जिनमें शहीद शिरोमणि पांचवे नानक साहिब गुरू अर्जुन देव जी महाराज ने उस मालिक की मौज, ईश्वर-इच्छा, राज़ी-ब-रज़ा रहने का उपदेश और पैग़ाम इन्सानियत के नाम दिया है। सही अर्थों में यदि हम गुरू साहिब के इस अमर संदेश के अनुसार जीवनयापन करें तो हमारी सभी समस्यायें सुलझ सकती हैं। यह अमर वाक्य गुरू साहिब ने अपने परम मित्र सुप्रसिद्ध सूफी फ़कीर हज़रत मीयां मीर के प्रति उच्चारण किया था जब उन्होंने पंचम पातशाह को ज्येष्ठ की चमचमाती कड़कती धूप में जब आसमान भी अंगारे बरसाता है, रावी नदी के किनारे लाहौर में मुगल शहनशाह जहांगीर के हुक्म से खौलते पानी की एक देग़ में चावलों और आलुओं के समान उबाला गया। उनके पवित्र सीस पर गर्म रेत के कड़छे डाले गए लेकिन सहनशीलता, धैर्य, संतोष और शान्ति के उस देवता ने उफ़ तक न की, सी तक न की। हज़रत मीयां मीर ने अर्ज़ की- " हुज़ूर! आप कादिए-ए-कुदरत हैं, प्रकृति के स्वामी हैं, आपके भृकुटि विलास से, आंख के इशारे से भला क्या कुछ नहीं हो सकता? आप यह जुल्म और अत्याचार क्यों सहन करते हैं? अब मुझ से यह सब देखा नहीं जाता। आप हुक्म दें तो मैं लाहौर और दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दूं।" शहीदों के सिरताज श्री गुरू अर्जुन देव जी ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए फरमाया था- "मीयां मीर! करामात नाम कहर का है। हमने कोई शक्ति नहीं दिखानी, उस वाहिगुरू परम पुरूष के भाणे को मानना है, राज़ी-ब-रज़ा रहना है।"

आज इनके शहीदी गुरूपर्व पर हम उनसे अरदास करते हैं कि हमें ऐसी तौफीक दो कि हम आपके नक्शे कदमों पर चल सकें। गुरू साहिब को इतनी बेरहमी के साथ क्यों शहीद किया गया, यह एक लम्बी दास्तान है।

गुरू-पिता सोढी सुलतान श्री गुरु रामदास जी चौथी पातशाही के घर माता भानी जी के उदर से एक बालक ने जन्म लिया। एक दिन जब आप अपने ननिहाल में थे तो अपने नाना तीसरी पातशाही श्री गुरू अमरदास जी महाराज के आसन-चारपाई पर चढ़ने की कोशिश करने लगे। गुरू अमरदास जी की नज़र इन पर पड़ी 'नानक नदरी नदर निहाल वाली' बात हो गई। हुजूर ने फरमाया- "बेटे! अभी से इस आसन पर बैठने की कोशिश मत करो, छोटों का बुजुर्गो के आसन पर बैठना वाजिब नहीं। धैर्य रखो एक दिन यह आसन- गुरू गद्दी आपके द्वारा ही सुशोभित होगी। आपने जीवन में बड़े काम करने हैं। आप वाणी के 'बोहिता'- जहाज़ बनोगे और फ़रमाया- " दोहिता, वाणी का बोहिता। आपकी वाणी-गुरुवाणी जगत् का कल्याण करेगी, कलियुग की तारीख बनेगी।" और सच ही तीसरी पातशाही द्वारा फरमाये हुए यह शब्द अक्षरशः सृत्य सिद्ध हुए।

गुरू चरणों में कैसी श्रद्धा होनी चाहिये, अपने इष्ट के साथ कैसी प्रीत होनी चाहिए, उनके हिज्र, फिराक और वियोग में ज़िदंगी -ज़िदंगी न लगे, जीवन नीरस लगे, यह सब कुछ अगर सीखना है तो पंचम पातशाह का जीवन इसका ज्वलंत उदाहरण और आदर्श स्वरूप है। एक बार श्री गुरू रामदास जी महाराज ने श्री गुरू अर्जुन देव जी को किसी रिश्तेदार की शादी में शामिल होने के लिए लाहौर भेजा। वहां काफी समय लग गया। साथ ही यह भी आदेश दिया था कि जब तक मैं न बुलाऊं अमृतसर मत आना। जिनके लिए एक घड़ी भी गुज़ारना मुहाल था, उन्हें अपने गुरूदेव से बिछुड़े छः महीने बीत गये। कहते हैं संयोग की घड़ियां छोटी होती हैं और

हिज-फिराक के दिन-लम्बे । पंचम पातशाह ने विरह-वेदना से पूर्ण अपने पूज्य गुरू पिता सोढी सुलतान के नाम पत्रिका लिखी-

मेरा मन लौचे गुरू दरसन ताई,

विलप करे चात्रिक की निआई ।

त्रिखा न उतरे शान्त न आवै,

बिन दरसन सन्त पिआरे जीउ ।। हउ घोली जीउ घोलि घुमाई, गुरू दरसन संत पिआरे जीउ । रहाउ । तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज घुनि वाणी चिर होआ देखे सारिंगपाणी। धनु सो देसु जहां तू वसिया, मेरे सजण मीत मुरारे जीउ ।। हउ घोली जीउ घोलि घुमाई,

गुरू सजण मीत मुरारे जीउ । रहाउ । इक घड़ी न मिलते ता कलियुग होता, हुणि कदि मिलीऐ प्रिय तुध भगवन्ता। मोहि रैणि न बिहावै नींद न आवै, बिनु देखे गुरु दरबारे जीउ ।। हउ घोलि जीउ घोलि घुमाई, तिस सच्चे गुरू दरवारे जीउ । रहाउ ।

पंचम पातशाह जी ने वियोग भरी यह दो पत्रिकाएं गुरू-पिता को भेजी पर जब उन्हें कोई जवाब न मिला तो तीसरी पत्रिका लिखकर सेवादार को दी कि यह पत्रिका गुरू-पिता जी के हाथ में स्वयं देना। सेवादार अमृतदार पहुंचा और वो पत्रिका सोढी सुलतान के हाथ में थमा दी। आप बाखूबी अन्दाजा लगा सकते हैं कि अपने लख्ते-जिगर नूरे-चस्म के वियोग को हुजूर भी सहन न कर सके और उन्होंने फौरन उन्हें अमृतसर बुला लिया। वियोग की घड़ियां खत्म हुई। इस बीच गुरू रामदास जी ने अपने बड़े लड़के पृथ्वीचन्द से पूछा कि पहली दो पत्रिकाएं कहां गई? उसने जवाब दिया कि मुझे कुछ पता नहीं। तलाशी लेने पर वे दोनों पत्रिकायें पृथ्वीचन्द की जेब में से ही मिलीं। पूछने पर उसने बताया कि यह मेरी अपनी कविता है। तब सोढी सुलतान ने हुक्म दिया कि यदि यह तुम्हारी अपनी कविता है तो चौथा बन्द लिख कर शब्द पूरा करो। पृथ्वीचन्द चौथा बन्द लिखने में असमर्थ रहा। जिसने वियोग दुःख न देखा हो वे भला मिलन सुख क्या जाने। प्यासा ही पानी की केंद्री-कीमत को जानता है। गहरे पानी में गोता लगाकर ही नायाब, अनमोल मोती मिलते हैं। आदेश मिलने पर गुरू अर्जुन देव जी ने चौथा बन्द लिख कर शब्द पूरा कर दिया-

भाग होआ गुरू सन्त मिलाइया, प्रभ अविनाशी घर महि पाइया।
सेव करां पल चिसां नां विछुड़ां, जन 'नानक' दास तुम्हारे जीउ ।।

इस तरह आयु में छोटे होने पर भी गुरू अर्जुन देव जी गुरू-पिता की नज़रे रहमत के तल्बगार बन कर गुरु गद्दी पर आसीन हो गये। बड़े भाई पृथ्वीचन्द ने उन पर बहुत अत्याचार किये। एक बार गुरू अर्जुन देव जी दर्शनी

ड्योढ़ी में से निकलकर जा रहे थे तो उनकी भावज ने गन्दगी का टोकरा उनके सिर पर दे मारा। सहनशीलता के अवतार गुरू सहिब मुस्कराते रहे। बड़े भाई की पत्नी अपने कुकर्म पर शर्मिंदा हुई।

गुरू साहिब को उस वरदान की भली-भांति स्मृति थी जो उनके नाना गुरू अमरदास जी ने दिया था। उन्होंने जब गुरुवाणी के संकलन, संपादन और उसे गुरू ग्रंथ साहिब के रूप में संग्रह करने का विचार किया तो पता चला कि उनसे पूर्व के चारों गुरू साहिबान की पवित्र वाणी श्री गुरू अमरदास जी के सुपुत्र उस समय के ब्रह्मज्ञानी महापुरूष बाबा मोहन जी के पास है तो उन्होंने बाबा बुड्ढा जी और अपने मामा भाई गुरूदास जी को यह पवित्र वाणी लेने के लिए अमृतसर से लगभग ३७ किलोमीटर दूर, व्यास नदी के तट पर स्थित गोइंदवाल नगर में भेजा। बाबा मोहन जी ने उन्हें वाणी देने से इन्कार कर दिया। तब गुरू अर्जुन देव जी स्वंय नंगे पांव गुरुवाणी लेने के लिए बाबा मोहन जी की खिदमत में हाज़िर हुए और चौबारे के नीचे जाकर यह शब्द उच्चारण किये-

मोहन तेरे ऊंचे मंदिर महल अपारा।

बाबा मोहन जी ने गुरुवाणी तुरन्त इनके हवाले कर दी। तब साहिब गुरु अर्जुन देव जी ने चारों गुरू साहिबान की पवित्र वाणी के साथ अपनी वाणी भी मिलाई और उसमें लगभग नौ सौ सैंतीस शब्द सुप्रसिद्ध भगवद् भक्तों, संतों और सूफियों- संत कबीर, भक्त रैदास, बाबा फरीद, स्वामी रामानंद, सदना कसाई और त्रिलोचन पंडित इत्यादि के इस पवित्र ग्रंथ में शामिल किये। भाई गुरूदास जी से गुरू ग्रंथ साहिब लिखवाते-लिखवाते खाली पन्ने छोड़ते जाते थे। उनके पूछने पर फरमाया कि यह खाली पन्ने नावें जामें में हमारे पोते गुरू तेग बहादुर जी भरेंगे। कालान्तर में ठीक ऐसा ही हुआ। इस तरह पवित्र गुरू ग्रंथ वजूद में आया। इसका प्रकाश हुआ। श्री गुरू अर्जुन देव जी का मानव जाति पर यह सबसे बड़ा उपकार है। रहती दुनियां तक इसे भुलाया नहीं जा सकता।

यह कथा तो बीच में ही रह गई कि गुरू साहिब को शहीद क्यों किया गया। अब इस राज़ से पर्दा उठता है। गुरूदेव गोइंदवाल में ही विराजमान थे। वे सभी दीन-दुखियों का सहारा बने। उनका लंगर साम्प्रदायिक भेद-भावना से ऊपर उठ कर हर खासो-आम के लिए खुला था। उन दिनों हिन्दुस्तान की किस्मत मुगल शहनशाह जहांगीर के हाथों बेदाम गुलाम बनी हुई थी। जहांगीर का इन्साफ दुनियां में मशहूर था। इसीलिए उसे 'अदले जहांगीरी' के नाम से याद किया जाता है। लेकिन वह इन्साफ पसन्द बादशाह भी मज़हबी तुअस्सब-धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता का शिकार हो गया। उसके इंसाफ का तराजू लरज़ गया। हुआ यह कि उसका बेटा शहज़ादा खुसरो बगावत कर बैठा और अपनी थोड़ी सी फौज लेकर लाहौर भागा। रास्ते में गोइंदवाल में गुरू साहिब की तारीफ सुनकर उनके दर्शन-दीदार के लिए हाज़िर हुआ और लंगर से खाना खाया तथा अपने मिशन में कामयाब होने की दुआ मांगी। गुरू साहिब निरछल हृदय के पूर्ण संत थे। गुरू साहिब ने उसे आसीस दी। बाद में जब जहांगीर को इस बात का पता चला तो बहुत नाराज़ हुआ और उसने लाहौर के सूबेदार मुर्तज़ा खां को हुक्म दिया कि गुरु अर्जुन देव जी की सारी जायदाद ज़ब्त कर ली जाये और उन्हें गिरफ्तार करके लाहौर

लाया जाये और फिर कत्ल कर दिया जाये। यह तो जाहिरी बहाना था, दरअसल बात कुछ और थी। लाहौर के सूबे का हिन्दू दीवान चन्दू अपनी लड़की का रिश्ता गुरु अर्जुन देव जी के सुपुत्र श्री गुरु हरगोबिन्द जी से करना चाहता था। गुरू साहिब के इंकार पर उसने बादशाह को भड़काया। इस वाक्या का ज़िक्र जहांगीर ने अपनी आत्मकथा- "तौज़िके जहांगीरी" में भी किया है। एक इन्साफ पसंद बादशाह ने यह न सोचा कि वह क्या कर रहा है। एक झूठी शिकायत की भी उसने छानबीन करने की कोशिश न की और न ही गुरू साहिब को अपनी सफाई पेश करने का अवसर दिया। यह हुक्म दिया और बादशाह सलामत कश्मीर की ठंडी हवाएं खाने के लिए श्रीनगर रवाना हो गए।

इधर गुरू अर्जुन देव जी को गिरफ्तार करके लाहौर लाया गया। दीवान चन्दू और जरनल मुर्तज़ा खान ने गुरू साहिब को कत्ल करने का नया तरीका एजाद किया। उन्होंने फैसला किया कि गुरू साहिब को जिन्दा जलाकर शहीद किया जाये। रावी के किनारे एक चूल्हा बना कर उस पर लोहे का तवा रखा गया। फिर चूल्हे में आग जला दी गई। जब रेत अंगारे के समान दहकने लगी तो गुरू महाराज को उस तवे पर बिठा दिया गया। उनके पवित्र शरीर पर छाले पड़ गये। गुरू साहिब अपनी मस्ती में गुनगुना रहे थे-

तेरा भाणा मीठा लागे, हरनाम पदार्थ 'नानक' मांगे।

इसके बाद गुरू साहिब रावी में प्रवेश कर गये और फिर कभी बाहर नहीं आये। आज उनकी पवित्र याद में लाहौर में जोड़ मेला लगता है। गुरू की दीवाने इस शहीदी गुरूपर्व पर जगह-ब-जगह दूध की लस्सी और शरबत की शबीलें लगाते हैं। उस अमर शहीद को शत्-शतू प्रणाम। आईए इस दिन उनके अमर जीवन से सहनशीलता और मालिक की रज़ा में राज़ी रहने की प्रेरणा लें।



अध्याय - 34

परम पूज्य गुरूदेव जी निःसन्देह एक दिव्य शक्ति के स्वामी थे और यह इस जुबान के बस की बात नहीं कि उनकी स्तुति-गान करे सदू और न ही लेखनी में यह सामर्थ्य है कि गुणों के अतीत भंडार कर मित्र खींच सके। एक बार उनके सानिध्य में बम्बई की यात्रा की थी। जहां तक निगाह जाती थी वहां तक फैले हुए गहरे नीले हिन्द सागर की हिलोरें मारती हुई जिन तरगों को देखकर वह झूम-झूम गये। अकस्मातु कहने लगे- "स्कूलों में भूगोल की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं और उनमें समुद्र दिखाने के लिए कागज के कुछ हिस्से पर नीला रंग भर दिया जाता है। कलम के साथ लिख दिया जाता है कि यह हिन्द महासागर है। पर क्या कागज़ के समुद्र में पानी की एक बूंद भी होती है या उससे सागर के सात्विक स्वरूप को जाना जा सकता है? सभी किताबों को निचोड़

डालिए, पानी की एक बूंद भी नहीं मिलती। दिव्य गुणों के भण्डार महापुरूष की महिमा कौन कर सकता है। यह तो पंचतंत्र के उन पांच अन्धों की कहानी है जो हाथी के अलग-अलग अंगों का स्पर्श करने के बाद उसको कुछ का कुछ बना बैठे। अवतारी महापुरूष की तो बात ही निराली होती है। कोई विरला ही उनकी गहराई को माप सकता है नहीं तो ज्यादातर लोग धोखा खा जाते हैं।"

हृदय दक्षिणेश्वर में परमहंस रामकृष्ण के पास रहा करता था। कुछ भजनाभ्यास भी किया था। अहं और अहंकार ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। जो लोग परमहंस रामकृष्ण के दर्शनों के लिए आते, उनको कहता- "उस पागल से क्या मिलेगा? ब्रह्मविद्या की कोई बात पूछनी है तो मुझसे पूछो।" बात यहां तक बढ़ी कि श्री रामकृष्ण कमरे के अंदर होते और यह बाहर से लोगों को टरका देता कि वह आज शहर गये हैं, मिल नहीं पायेंगे। परमहंस जैसे सिद्ध महापुरूष और सच्चे साधु को जानना-पहचानना और उनके गुणानुवाद गाना हरेक के बस की बात नहीं। अर्जुन को ही देख लीजिए- भगवान् श्रीकृष्ण के साथ-साथ रहे पर अर्जुन उनके सार को न पा सका। कृष्ण के सच्चे दर्शन तभी हो सके जब प्रभु ने स्वंय कृपा करते हुए अर्जुन को अपनी दया-दृष्टि से इस चक्षु दिये। दिव्य स्वरूप को दिव्य चक्षुओं से ही जाना जा सकता है। इस समुद्र को ही देख लीजिए, क्या कोई बता सकता है, पानी के कितने कतरे मिलकर यह समुद्र बना होगा और इसके अन्दर कितनी नदियों, कितने दरियाओं ने अपना सम्पूर्ण जल अर्पण किया होगा?"

परम पूज्य श्री महाराज जी आनन्द विभोर कुछ देर समुद्र के तट पर खड़े रहे और फिर न जाने अतीत में क्या देख रहे थे। देखते-देखते उनकी आंखों से पानी की बूंदें छलक उठीं। विभोर मन के साथ एक मुंडेर पर बैठ गये। कहीं खो गये थे। भावावेश में न जाने क्या से क्या सौच रहे थे। हाथ का इशारा करके उन्होंने हम सबको बोलने से मना कर दिया जैसे हमारे बोल उनके चिन्तन भजन में बाधा डाल रहे हों। आधी खुली आधी बंद आंखें दूर परे पश्चिम में डूबते सूरज की किरणों को देख रही थी जो सागर की उछलती लहरों का चुंबन करते हुए विदा ले रही थीं और जैसे चन्द्रोदय की प्रतीक्षा कर रही थीं। कब शाम रात में ढल गई, कह नहीं सकते लेकिन यह सच है कि श्री महाराज जी के एक नये स्वरूप के हमने उस डूबते सूरज की शाम में दर्शन किये। अतीत के आनन्द रस में खोये हुए महान योगी होठों को सीये हुए न जाने किस समाधि में चले गये थे। बहुत देर के बाद जब बाह्यमुखी हुए तो बड़ी मार्मिक बात कही, फ़रमाने लगे- "उस प्रभु कृपा के बगैर संत की महिमा को नहीं गाया जा सकता। हो सकता है कोई खुली आंख से सूरज को देख ले लेकिन एक साफ शीशे में सूरज के तेज को एक पल भी नहीं देखा जा सकता। आंखें चुंधिया जायेंगी।

यही हाल उस जिज्ञासु का होता है जो संत की महिमा जानना चाहता है, जो शब्दों से बहुत परे है। एक मूर्ख मन भला उसकी महानता की व्याख्या क्या कर सकता है यह सत्य है कि अवतारी महापुरूष एक विशेष कार्य के लिए जन्म धारण करता है और उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसे जिन सहायकों व साथियों की आवश्यकता होती है, वह प्रभु की दैविक शक्ति चुन-चुन कर उनके साथ मिला देती है और इस प्रकार प्रभु संत का रूप धारण कर मनुष्य शरीर को स्वीकार करते हैं और इस कार्य को सम्पूर्ण कर आन्नदमयी प्रभु की गोद में समा जाते हैं।

ज्यों जल में जल आये खटाना, त्यों ज्योति संग ज्योत समाना ।

लहर और तरंग पानी का ही एक अंग है। न जल से अलग है, न जल से परे। एक लीलाधारी दैवी शक्ति की अपूर्व कृपा उससे काम करवाती है और क्या पता मेरे इस शरीर से भी गुरूदेव कोई खास काम करवा रहे हों।"



अध्याय - 35

इन्सान इस दुनियां में एक निश्चित उद्देश्य लेकर आता है। जो इस उद्देश्य की प्राप्ति कर लेते हैं और दूसरों को भी उसी सत्य पथ पर अग्रसर होने की सप्रेरणा देते हैं, स्वंय अवलम्बन बनकर उस मंज़िल पर पहुंचा देते हैं उन्हें हम पूजते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं और वे हमारे विशेष श्रद्धा, स्नेह व सम्मान के भाजक बन जाते है। उन्हें ही हम सच्चा इन्सान, महामानव महापुरूष और देवस्वरूप ईश्वर कोटि में समझते लगते हैं।

सृष्टि के आदि से यह धरती कभी भी ऐसे सत्पुरूषों से खाली नहीं रही। वे मनसा वाचा-कर्मणा कल्याण मार्ग पर स्वंय भी आरूढ़ होते हैं और हमारे लिए भी कल्याण-पथ प्रशस्त करते हैं। देखा जाये तो इन्सान जन्म लेता है, कर्म क्षेत्र में उतर कर अच्छा-बुरा जीवन बिता कर यहां से विदा हो जाता है। जीवन में जो-जो कार्य उसने निज स्वार्थ का परित्याग करके लोक कल्याण की भावना से किये होते हैं और जिनको उनसे जितना-जितना लाभ मिलता है, उसके जाने के बाद वे उसके ग़म में उतने-उतने दुःखी और निढाल होते हैं।

हम अपने जीवन का विश्लेषण करें तो लगभग आधा समय नींद, आलस्य और प्रमाद में बीत जाता है, काफी समय उदर पूर्ती के साधन जुटाने में बिता देते हैं और शेष समय दूसरों को खुश करने में और सामाजिक अनुबंधों के पालन में लगा देते हैं। जरा सोचिए! कितना समय हमने अपने लिए लगाया, कितना समय अपने लिए जिये-यही इन्सान की विडम्बना है।

जिनको हम अपने अगुआ, गुरूजन मानते हैं, वे जन्म व कर्म से हमारे समान ही हैं किन्तु उन्होंने ऐसा जीवन जिया जो हमारे लिए आदर्श बन गया। अकिन्तु उस्मरणीय पूज्यवाद गुरुदेव, उन्होंने हमें क्या नहीं दिया, जीना सिखाया, इन्सान बनने का ढंग बताया और फिर निज कल्याण की वह युक्ति व विधि भी बता दी जिसके बिना हम कभी भी अध्यात्म पथ के राही न बन पाते। महाराजश्री के श्री चरणों में बैठने, उनके पावन दर्शन करने और सच्चे मन से सेवा करने का जिसको जितना भी समय मिला, उतना ही उसका अनुभूति ज्ञान है।

अपने गुरूदेव मुर्शिद-ए-कामिल के गुण-गाने और उनका यशोगान करने में कोई पीछे नहीं रहता। सब एक जुबान और एक ही स्वर में यह कहते नहीं थकते कि उन सरीखा उन्हें ही पाया। वे प्रेम पुंज, करूणावतार, दया के सागर, सरलता, विनम्रता और दीनता के साक्षात् विग्रह थे। यह उनकी विनम्रता और हृदय की सहजता ही थी जो बड़े-बड़ों को उनके आगे नतमस्तक होने के लिए मजबूर करती। बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी, वीतरागी, अनुभवी, तत्वदर्शी, ख्याति प्राप्त विद्वान, संत महापुरूष, सूफी फकीर सभी आपके स्नेह के घेरे में आकर परम प्रसन्न होते। उन्होंने जो कुछ हुजूर के बारे में सुना था, उसे निज नयनों से देख कर और अनुभव करके उन्हें जहां हार्दिक प्रसन्नता होती वहां महाराजश्री के प्रति उनका भाव अनुराग और भी बढ़ जाता ।

हमारे सशास्त्रों ने महापुरूष की जो पहचान बताई है और लक्षण दर्शाये हैं, वे पूर्णरूपेण आपके जीवन में परिलक्षित थे। सद्गुरू की पहचान भी यही बताई है-

जिस पास बैठेयां मन होए आनन्द, सो सतगुरू कहिए।

प्रेम और आनन्द का भाव शब्दों का मोहताज नहीं। यह तो वह अनूठा ज़ज्बा है जो खुद अपने-आप दिखाई देने लगता है, अनुभव होने लगता है। श्री राम चरित मानस में हम पढ़ते हैं कि जब भगवान राम चौदह वर्ष के वनवास के बाद अयोध्या लौटे तो अयोध्या वासी उनके वियोग दुःख से अत्यन्त पीड़ित थे और वियोग की ये अवधि जल्दी खत्म हो, पुनः राम से मिलन हो इसी लालसा को मन में संजोए राम दर्श की आस में व्रत-नियम आदि कर रहे थे और जब भगवान् राम आये तो उनकी खुशियों का कोई ठिकाना न रहा। सभी चाहते थे मुझे ही राम सबसे पहले मिलें, अंग लगायें। भगवान् राम तो सर्वअन्तर्यामी थे, भले-बुरे की पीर पहचानते थे, अयोध्या के नर-नारी, बच्चे-बूढ़े जिस-जिस भाव से मिलना चाहते थे, प्रभु ने उनका सबका भाव पूरा किया। एक ही समय में सबको मिलकर निज दर्शन से कृतार्थ बिपूरा जरा विचार कीजिए जब हम भी श्री गुरू चरणों में आते थे तो ऐसा ही सोचते थे कि हुजूर हमसे ही बात करें, हमारी ओर अपनी कृपा कटाक्ष से निहारें, हमसे ही सर्वाधिक प्यार करें। अब स्वंय ही फैसला कर लीजिये क्या हमारे साथ ऐसा हुआ है या नहीं? आज जिससे पूछें, जिसके अर्न्तमन को कुरेंदे, सबका उत्तर एक ही होगा- श्री गुरूदेव जी हमसे ही सर्वाधिक प्यार करते थे, हम पर ही उनकी कृपा दृष्टि हुई। क्या यह विशिष्ट गुण नहीं क्या यह एक साधारण इन्सान के वश की बात है? उत्तर मिलेगा नहीं। बस इसी कारण हम उनके शारीरिक अभाव से दुःखी और परेशान हो रहे हैं, सर्द आहें भरते हैं, आंसू बहाते हैं और दिल से बरबस यह हूक निकलती है, काश! वह ज़माना फिर से लौट आये।

याद रखिये- यह सृष्टि व प्रकृति कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर ही चल रही है। उस नियन्ता ने जो सीमा रेखाएं निर्धारित की हुई हैं, उनका अतिक्रमण न तो इस कोटि के महापुरूष ही करते हैं और न ही सर्वसाधारणजन । वे दिव्य महापुरूष सर्वशक्ति सम्पन्न होते हुए भी निज शक्ति का प्रदर्शन कभी नहीं करते। जिनके शुभाशीर्वाद से, जिनकी दुआ-ए-खैर से मुर्दे जी उठते हैं, निष्प्राण तन में नव जीवन का संचार होता है, वे कभी भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। इसलिए हमने ही अपने दिल को समझाना है।

उनको सच्ची श्रद्धांजलि पेश करने और याद करने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि चाहे हमें उनका अल्पकालीन या दीर्घकालीन सम्पर्क मिला और उस स्वर्णिम काल में जिन महान् गुणों को हमने अनुभव किया, उन्हें निज जीवन में व्यवहारिक रूप देने में तत्पर हो जायें। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' सरीखा व्यवहार अपनायें, स्तुति-निन्दा, ईर्ष्या-द्वैष आदि कुत्सित भावनाओं से ऊपर उठें, सबसे सरल व सहज बर्ताव करें, मन से छल-कपट को निकालें। ऐसे ही निर्मल चित्त में वे सदा विराजते हैं। फिर उनका सानिध्य व सामीप्य हर समय अनुभव होगा। जब चाहेंगे, जहां चाहेंगे उनसे मुलाकात हो जायेगी। बस दिल की कदूरत हटाईये, आईना-ए-दिल साफ कीजिये, फिर तो वे कहीं दूर नहीं, सदा-सर्वदा निकट नित्य पास हैं।



अध्याय - 36

अगस्त के महीने में दो प्रसिद्ध त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाये जायेंगे। उनमें से एक है राखी का पवित्र त्यौहार रक्षा - बंधन। सूत के कच्चे धागे प्रतीक हैं उस पवित्र संबंध के जो हर बहन-भाई में होता है। इसी दिन श्रावणी पूर्णिमा को दशनामी अखाड़े के साधुजन और हज़ारों तीर्थयात्री छड़ी मुबारिक लेकर, श्रीनगर से चलकर कश्मीर में स्थित अमरनाथ की पवित्र गुफा में असंख्य कठिनाईयों और मुसीबतों को झेलते और प्रकृति के प्रकोपों से जूझते हुए बर्फ के शिवलिंग के दर्शन करते हैं। आशुतोष भगवान् शिव शंकर भोलेनाथ के हिमलिंग के दर्शन-दीदार से उनकी तड़पती बिलखती रूह को असीम आनन्द की अनुभूति होती है।

राखी के एक सप्ताह बाद ही अष्टमी को भगवान श्रीकृष्ण का पावन जन्म-दिवस श्रीकृष्ण जन्माष्टमी परम हर्षोल्लास के साथ मनाई जायेगी। आईये! इस दिन श्रीकृष्ण भक्ति की प्राप्ति के लिए विनती करें। भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति के संबंध में हर साधक का सिद्धांत वही होना चाहिए जो मुण्डकोपनिषद् के निम्नलिखित श्लोकों में दर्शाया गया है-

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरंतु पासानिशितं सन्धीयत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ।। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मां ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्ते न बेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।

"अपने प्राणों के शक्तिशाली धनुष को खींच कर अपनी भक्ति और श्रद्धा का तीर चढाओ तथा अपने मन को इधर-उधर से हटाकर अपने निशाने अविनाशी पारब्रह्म परमेश्वर पर लगा दो। तुम्हारा धनुष 'ओडम' है जिसे शास्त्रों में प्रणव भी कहा गया है। मन की पूरी एकाग्रता तीर है, ब्रह्म निशागर में में छाओं से मुक्त मन को इधर लगाओ और जिस प्रकार तीर निशाने पर लग कर उसका ही रूप बन जाता है, इसी प्रकार तुम तद्रूप हो जाओ।

गीता को योगशास्त्र कहा गया है। ईश्वर प्राप्ति के जिज्ञासुओं के लिए पथ-प्रदर्शक शास्त्र! किन्तु गीता योग की साधारण विधियों का ग्रंथ नहीं, न यह केवल ज्ञान-योग है, न खाली कर्मयोग, न सिर्फ भक्ति योग। यह महर्षि पातन्जली के 'योग दर्शन' जैसा ग्रंथ भी नहीं है। गीता एक अद्भुत योग है। मन के अदंर गुप्त मार्ग पर चलने का योग। सारे योग एक ओर, गीता का योग दूसरी ओर । यह ईश्वर प्राप्ति का अचूक योग है।

मंज़िल तक पहुंचने का कोई छोटा मार्ग नहीं, हर एक साधक को सारा फासला खुद अपने कदमों से चलकर तय करना होगा और गीता के हर उपदेश को जीवन में उतारना होगा। विश्वास की कमी और धोखा देने वाली बुद्धि इंसान को बातूनी बना देती है। प्रायः लोग इच्छा को विश्वास और इच्छा पूर्ति को कृपा और रहमत, मोहमाया से प्रीति को उसकी अनुकम्पा, ख्याली तस्वीरों को हकीकत की झलकियां और ख्वाब में देखे जलवों को मंजिल प्राप्ति समझ कर बहुत से साधक बीच सफर में ही दम तोड़ बैठते हैं। जो लोग केवल अपनी आरज़ुओं को पाने या चमत्कारी शक्तियों की उपलब्धि को मंज़िल बना बैठते हैं, अच्छा हो कि वे इस राह को अपनायें ही नहीं। गीता की सच्चाईयों की प्राप्ति का मार्ग बहुत मुश्किल है। हमारी मंज़िल उसको देखना नहीं, जिसे आंखें देख सकती हैं बल्कि हमें उसको देखना है जिसकी शक्ति से आंखें देख सकती हैं।

महाभारत का युद्ध आज भी हो रहा है, हर एक साधक के मन के अन्दर । उसकी इच्छाओं और आरज़ुओं की सेनायें दोनों ओर खड़ी हैं। वे कामनायें भी खड़ी नज़र आयेंगी जिनके साथ दिल हज़ार जान से जुड़ा है, जिनसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं होता। एक ओर बुरी इच्छाएं हैं तो दूसरी ओर सुख ऐश्वर्य की प्राप्ति की कामनाएं, समाज में नाम पैदा करने की ख्वाहिश । युद्ध भूमि में बुद्धि और चतुराई के बड़े-बड़े नुक्ते, सिद्धांत और रीति-रिवाज़ भी आपको अपने विरूद्ध युद्ध के लिए ललकारते हुए मिलेंगे। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य की तरह कभी उनसे रहनुमाई कबूल की थी, कभी उनके हर शब्द पर फूल चढ़ाये थे लेकिन मत भूलिये कि उन्होंने कौरवों का अनाज खाया है और अब इस युद्ध में वो दुर्योधन का साथ दे रहे हैं। इसलिए साधक को उनके विरूद्ध भी लड़ना होगा।

इसमें कोई शक नहीं कि श्रीकृष्ण की आवाज़ मीन में सुनी जा सकती है, किन्तु इससे भी इंकार नहीं करना होगा कि श्रीकृष्ण की आवाज़ को अर्जुन ने युद्ध भूमि में सुना था। ध्यान- मग्न बैठकर श्रीकृष्ण की आवाज़ को सुनने से पहले दैनिक जीवन के संघर्ष में उस आवाज को सुनिए। जितना अधिक अन्धेरा होगा रौशनी उतनी तेज़ नज़र आयेगी और श्रीकृष्ण की रौशनी की तो बात ही क्या, जब वह प्रगट होती है तो लगता है कि हज़ारों सूर्यों को मात देने वाली रौशनी जगमगा उठी है।

यह माना कि आपकी आत्मा श्रीकृष्ण को पुकार रही है। आप प्रार्थना करते हैं- प्रभु! कृपा करो, मेरी सहायता के लिए आओ, मैं आपका सेवक, उपासक और मंगता हूं। लेकिन ज़रा दिल में झांककर देखिये क्या सचमुच आपने अपनी आत्मा श्रीकृष्ण चरणों में अर्पण कर दी है? अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से बारम्बार कहता है कि मैं आपका हूं, किन्तु वह अपनी कायरता छोड़ने को तैयार नहीं होता और कहता है कि प्रभु मुझे लड़ने के लिए न कहो। ये शब्द ध्यान देने योग्य है। हम भी मुंह से समर्पण होते हैं, मन से नहीं। हम भी श्रीकृष्ण के हुक्म को

मानने से इंकार करते हैं और कहते हैं कि हम नहीं लड़ेंगे। हम भूल जाते हैं कि यह युद्ध हमने लड़ना है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कह दिया था कि इस युद्ध में में शस्त्र नहीं उठाऊंगा। वह प्रेरणा दे सकते हैं जीवन का संग्राम हमें लड़ना है। रणक्षेत्र में लड़ते हुए मर जायेंगे तो शहीद कहलायेंगे। किन्तु यह युद्ध इतना आसान नहीं। शत्रु बहुत चालाक है। साधक को लगता है कि उसने शत्रु को मार गिराया लेकिन उसे यह मालूम नहीं कि दुश्मन सामने वार कम करता है, छुप कर ज्यादा। श्रीकृष्ण का जन्म कहां हुआ? कब हुआ? जेल की कोठरी में आधी रात को। साधक को ये दोनों बातें याद रखनी चाहिए। ठीक उस समय जब कंस अपने सारे साधनों के साथ उन्हें मार डालने का तत्पर था। सख्त पहरे लगे हुए थे, घटाघोप अन्धेरा था, यमुना चढ़ी हुई थी, मूसलाधार वर्षा के साथ तेज़ आंधी चल रही थी। उस समय श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। हर साधक के मन के अन्दर उसके दिव्य आध्यात्मिक प्रकाश का उदय उस समय होता है जब साधक निराशा और विवशता में घिरा होता है और सब सहारों को छोड़कर केवल उसकी शरण लेता है। श्रीकृष्ण के जन्म की यह पहेली समझने की जरूरत है। जब वे देखते हैं कि साधक आर्त होकर सम्पूर्ण रूप से सभी सहारों को छोड़ देता है तो काली रात में जैसे सूर्य चढ़ता है, उसका जन्म होता है जो अजन्मा है, जो अविनाशी, अमर तथा निराकार है।

मथुरा में जिसकी चमक ने युगों के अन्धेरे को दूर कर दिया था, आज उस बिजली को याद करने से क्या होगा। अपने मन को मथुरा बनाईये और फिर देखिए कि घोर निराशा में उस आशा एंव शक्ति के पुंज का जन्म किस प्रकार होता है। घनघोर घटाओं में जैसे बिजली कौंध जाती है, इसी प्रकार उसकी कृपा का उजाला आपके हृदय में फैल जायेगा। आपकी आंखें उस तेज़ चकाचौंध रौशनी को देखकर चूंधिया जायेंगी। शहनाइयों का संगीत गूंज उठेगा जो संसार के सर्वश्रेष्ठ संगीत से भी कहीं अधिक जादू भरा है। श्रीकृष्ण की बांसुरी जब बजती है तो इस दुनिया के संगीत का रस फीका पड़ जाता है। तारों की छांव में खिलने वाले फूलों की महक जिसकी खुशबू के सामने मंद पड़ जाये। कृष्ण उदय के साथ वह भीनी स्वर्ग की सुगंधी हर तरफ फैल जायेगी।



अध्याय - 37

ईश्वर के स्वरूप को जानने की तीव्र इच्छा से विभोर मन को छैन नहीं, एक-एक पल भी कठिनाई से गुजर रहा था। ईश्वर के सच्चे स्वरूप को तो केवल वही यथार्थ रूप से बता सकेंगे जिन्होंने उस भगवान के साक्षात् दर्शन किये हों और जिसने उनकी अनुकम्पा से उनके मर्म को भलि-भांति जान लिया हो। अत्यन्त विनम्रता के साथ, स्वंय को तपा कर कठिन संघर्ष के बाद कहीं जाकर उस मंजिल तक पहुंच होती है। आज के इस घटाघोप अन्धकार में जिनका तपोमय जीवन उजाला कर देता है आईए, उन महापुरूषों के निजी अनुभवों को पढ़कर निज जीवन आलोकित करें।

एक जिज्ञासु दो एक शिलाएं छोड़कर नीचे के पत्थर पर दत्तचित्त बैठा प्रतीक्षा कर रहा था कि कब गुरूदेव मधुरवाणी उच्चारण करेंगे। प्रतीक्षा वैसे भी बड़ी बेकरारी से बीतती है, परन्तु उस दिन तो कहा नहीं जा सकता, हृदय की क्या गति थी। गुरूदेव पद्मासन लगाये, आंखें मूंदे एक विग्रह की तरह मौन बैठे हुए थे। एक के बाद दूसरी फिर तीसरी घड़ियां बीतती चली गई, रात का सन्नाटा, एकांत, ठण्डी बर्फानी हवा, नंगे बदन गुरूदेव ने कोई कपड़ा तक नहीं ओढ़ रखा था लेकिन जिज्ञासु तो बहुत कुछ कहने के लिये श्री गुरूदेव के चरणों में प्रतीक्षा के मारे तड़प रहा था। न जाने कितनी देर तक यही सन्नाटा छाया रहा। रात का घना काला अन्धेरा धीरे-धीरे छटने लगा। पूरब में उषा की किरण आकाश मण्डल पर नृत्य करने के लिए अपनी सुनहरी झांझरों को संभाल रही थी। फिर देखते ही देखते सूरज चढ़ गया। न शिष्य को यह हिम्मत पड़ी कि वह खामोशी को तोड़ता और गुरूदेव की समाधि को भंग करने वाला कोई प्रश्न पूछता। जिस तरह कोई कली शबनम के कतरों के साथ खेलती हुई अपनी बंद पंखुडियों को खोलने का यत्न करती है, धीरे-धीरे गुरूदेव ने आंखें खोली और शिष्य की तरफ मुंह फेर कर हल्की सी मुस्कराहट फेंकी। उनकी इस मूक मुस्कराहट में कितना आकर्षण था, बताया जा नहीं सकता। आंखों की गहराईयों में अतीत का रहस्य छलक रहा था। राम जाने यह कैसी मस्ती थी जिसकी शोभा कोई भी शब्द वर्णन नहीं कर सकता।

आहिस्ता-आहिस्ता वे अपने आसन से उठने की चेष्टा करने लगे। सारी रात का थका शरीर हिल नहीं रहा था। प्राणधारी होकर भी शरीर जड़ जैसा हो गया था। न जाने खून भी हरकत कर रहा था कि नहीं। लेकिन खुली आंखें इस बात का आश्वासन दिला रही थी कि उस रात का तूफान प्राणों को हर नहीं सका। फिर तोतली भाषा के साथ जैसे कोई नया बच्चा बोलने का, कुछ कहने का यत्न कर रहा हो, गुरूदेव ने हाथ फैला कर शिष्य के कंधे का सहारा लिया और फिर आसन छोड़ते हुए केवल इतना ही कहा- 'शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं' और फिर वे मौन हो गये। दोपहर बाद कहीं जाकर मौन टूटा। मुमुक्षु की जिज्ञासा देखते हुए गुरूदेव ने कहा- 'उस ईश्वर का सच्चा स्वरूप बताया नहीं जा सकता, वह वर्णन से कहीं परे है। कितनी भी अच्छी कथनी क्यों न हो, उनकी रूप रेखा नहीं खेंच सकते। ईश्वर क्या है, यह जानने के लिए पहले अपने आपको उसके समर्पण करना होगा। तीन तापों से जन्म-जन्म से विचलित बुद्धि को एक-दम एकाग्र करके गुरू समर्पण करते हुए अश्रुधारा के साथ प्रार्थना करनी होगी कि ऐ प्रभु मुझे अपना दिव्य स्वरूप दिखा दो और जो देखने जाता है उसकी मृत्यु हो जाती है, वह फिर पहले जैसा नहीं रह जाता है। वह स्वंय ईश्वर रूप हो जाता है।'

इन्हीं सिद्ध पुरूष के बारे में एक दूसरे जिज्ञासु से कुछ और ही सुनने को मिला। ईश्वर दर्शन कराने के लिए उन्होंने जिज्ञासु को रात के घटाघोप अन्धेरे में बर्फानी चोटी पर आसन लगा कर बैठने को कहा और फिर यह कहते हुए कि देखूं तुम्हारा आसन ठीक लगा है या नहीं, शिष्य को पांव की ठोकर मारकर पहाड़ी से नीचे फेंक दिया। हो सकता था लाश के टुकड़े-टुकड़े हो जाते, शरीर की बोटी-बोटी हो जाती, पर यह क्या, ऊपर की चट्टान से लुढ़कती हुई लाश ज्योंही धरती की ओर लपक रही थी गुरूदेव ने बाहें फैला कर शिष्य को अपनी गोदी में ले लिया। मां की ममता को मात कर देने वाली मीठी मुस्कराहट और जीवन दान देने वाली थपकियों के साथ शिष्य को प्यार करते हुए कहा था- "ईश्वर दर्शन करने के लिए पहले जीते जी मरना पड़ता है, इसलिए

तुम्हें पहाड़ी से नीचे गिराया था, अब तुम्हारा नया जीवन मेरा दिया हुआ- है। अब यह उस प्रभु की अमानत है। इसे पूजन में अर्पण कर दो।"

इसी तरह एक और सिद्ध महापुरूष से एक अनोखी बात सुनने को मिली। ईश्वर साक्षात्कार करने के लिए उन दिनों कठोर तपश्चर्या में लीन था। रात के झुटपटे में बिलकुल नग्न होकर श्मशान भूमि के साथ लगती कोठरी के अन्दर एंकात बैठा करता था। महीनों तप करने के बाद भी निराशा आशा में न बदली। ईश्वर दर्शन न हो सके, तब एक दिन अपने जीवन का अन्त करने की सोची। किसी जलती हुई चिता में कूद पडूं, अपने आपको भस्म कर दूं। यह मेरी प्रतीज्ञा थी लेकिन पूरी न हो सकी। मुझे साहस न होता, लोग इतने होते थे। कई बार ऐसा हुआ लेकिन हर बार बहुत रोया। क्या वह जीवन के साथ स्नेह की गुप्त गांठ नहीं थी जो मेरा मन न खोल सका और तब निश्चय कर लिया चाहे कुछ भी हो आज की रात या तो दर्शन होंगे या इस शरीर का अंत हो जायेगा। आधी रात के वक्त जब कोठरी के अन्दर अपने आसन पर बैठने गया तो आसन पर किसी के होने की स्पष्ट ध्वनि सुनाई देने लगी। भयभीत होकर मुड़ने ही वाला था कि किसी ने मुंह पर तमाचा मारा और कहा- 'जो मरने का इरादा रखते हैं वे जरा सी आहट से डरते नहीं।' एकाएक कोठरी में प्रकाश ही प्रकाश हो गया, जानिए, कोई चांद निकल आया हो। गुरूदेव सामने खड़े थे कहने लगे "पुस्तक पढ़ना, दूध और जल चढ़ाना, मंत्र उपासना करना, हवन-यज्ञ करना, दानव्रत रखना, तीर्थाटन करना, ईश्वर प्राप्ति का सही रास्ता नहीं है। वह तो अपने आपको मारकर, सारी वासनाओं का दमन करके, भावनाओं को खत्म करके एकाग्र होकर एक आसन पर बैठना है और संकल्प-विकल्पों की आहुति देकर ध्यान करना ही ईश्वर को पाने की सीढ़ी है।

किसी भी महापुरूष के जीवन को लीजिए हम जिज्ञासुओं को एक ही शिक्षा मिलेगी कि जब तक मुमुक्षु स्वयं लक्ष्य स्वरूप नहीं हो पाता, तब तक मंजिल को नहीं पा सकता। अपने आपको जानना ही ईश्वर को जानना है और 'तू है मैं नहीं हूं' यह मंत्र उच्चारण करके अपने आपको उसके परम प्रकाश में भस्म कर देना होगा। सोऽहं का जाप हो, जब तक वह जीव्हा पर है तब तक लक्ष्य से दूर रहता है, जब गुरू कृपा से स्वयं कदम आगे बढ़ाता है तो मंत्र आवाज़ भी समाप्त हो जाती है, वाणी मूक हो जाती है। मुंह पर ताला लग जाता है और उस प्रभु को पाने वाले महापुरूषों की वाणी इस बात की गवाह है कि जो खोज में निकला था, उसकी मृत्यु हो गई। शब्द की मौत भी हो जाती है और वह मौन न टूटने वाला मौन अतीतानन्द जिज्ञासु के हृदय को अपनी बांहों में समा लेता है।"

परमहंस रामकृष्ण का जीवन इसी बात का उदाहरण है। प्रातः स्मरणीय प्रेमावतार श्री ठाकुर जी भगवान् जिनका सारा जीवन त्याग, सिमरण में बीता, इसी सच्चाई की गवाही देते हैं कि गहरे पानी में उतरने से डूबने का डर त्याग कर जो अपने आपको जल की अतीत गहराईयों में डाल देता है, आनन्द से परिपूर्ण वह प्रभु उसको सदा के लिए जीवन और मृत्यु के चक्कर से निवृत्त कर देता है।



अध्याय - 38

जितनी पुरानी मानव की खोज परम-पिता-परमात्मा से उतना ही पुरातन और सनातन रिश्ता साधक और गुरू का है। हमारे धर्म शास्त्र तो कहते हैं कि धारणा, ध्यान और ध्येय तीनों एक ही सत्य के अलग-अलग तीन स्वरूप हैं। आदिकाल से वेदों और उपनिषदों से भी पहले जब शब्द लिपिबद्ध नहीं हुए थे जिज्ञासु मन श्री गुरूदेव के चरणों मैं पहुंचे और संकेत से ही जो कुछ चाहते थे, प्रार्थना की। गुरू और शिष्य के नाते में शब्दों से भी कहीं ज्यादा गहरा सम्बंध मन की भावना के साथ होता है। बहुत कुछ कहने-सुनने के बाद 'नेति-नेति' के शब्द बताते हैं। जो शब्दों से परे हैं पर उसे ही अंकित करने का प्रयत्न कर रहे थे।

हर धर्म और हर साम्प्रदाय में गुरू को ईश्वर तुल्य प्रभु रूप साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर कह कर आराधना की है। अलग-अलग भाषा, अलग-अलग जिज्ञासु, अलग-अलग परिस्थितियों पर आंखों में छलकते हुए आंसू, लड़खड़ाती हुई जुबान पर रूके हुए शब्द साफ कहते हैं कि मन की पीड़ा को हरने वाले गुरू से कृपा मिली और जन्म-जन्मांतर के अज्ञानता और अन्धकार दूर हो गये। वैदिक काल में शिष्यों ने परम आराधनीय गुरूदेव के लिए जान की बाज़ी लगा दी। तिब्बत और चीन में लामा गुरू आदेश पर पहाड़ियों से कूद पड़े। संसार का कोई भी कठिन से कठिन दुःख उन्हें गुरू सेवा के मार्ग से विचलित न कर सका। बाज़ मुसलमान सूफी संत ऐसे हुए हैं जिन्होंने लिखा है कि चालीस वर्षों तक गुरूदेव की सेवा में जुटे रहे। गुरू ग्रंथ साहिब तो गुरू भक्ति का अनमोल ग्रंथ है जिसमें गुरू को रिझाने के लिए उस कठोर तपश्चर्या का वर्णन किया गया है जो एक सच्चे शिष्य को अपने गुरू के प्रति करनी चाहिए। खुद भूखा प्यासा रहकर गुरू लंगर में खाना बनाना, संगत को खिलाना और अगर बच जाये तो एक आध ग्रास गुरू प्रसाद समझ कर ग्रहण करना। नींद, सुख और बीमारी के बावजूद चौबीसों घंटे गुरू सेवा के सिवाए और कोई काम नहीं। रात दो बजे उठकर नंगे पांव व्यास नदी में जाकर पानी भरना, आकर गुरूदेव को स्नान कराना, रात को अंधेरे में खड्डी में गिर पड़े। ध्यान अपनी जान, शरीर की चोटों पर नहीं, गुरू सेवा के लिए लाये पानी की गागर पर गया, कहीं वह पानी गिर न जाये। गुरूदेव स्नान कर रहे थे, चौकी का पाया टूट गया। बिना बोले अपना हाथ चौकी के नीचे पाये की जगह रख दिया ताकि गुरूदेव निर्विघ्न स्नान कर सकें। यह देख गुरूदेव दंग रह गये। आंखों में आंसू आ गये और सेवक को जीवन का वरदान दिया। अथाह और अनन्य गुरू भक्ति के कितने ही प्रसंग महाभारत में आते हैं। एकलव्य ने गुरू की मिट्टी की मूर्ति बनाई और उन्हें गुरू धारण करके धनुष विद्या सीखी। इतने निपुण हुए कि अर्जुन को बन्दी बना दिया। राजा जनक अष्टावक्र के शिष्य बन गये। गुरूदेव के कहने पर राजपाठ, ऐश्वर्य, वैभव गुरू चरणों में अर्पण कर दिया।

शाम को कोई भीख मांगने के लिए आया। राजा जनक ने कुछ नहीं दिया। बोले- 'गुरू अर्पण करने के बाद अब मेरा बाकी क्या है जो मैं किसी को दे सकूं?' क्रोध से लाल-पीला होकर सवाली ने राजा जनक को गालियां दी। राजा जनक हंसते रहे। पूछा गया कि कारण क्या है? बोले- 'समर्पित शिष्य का अपना क्या होता है जिसे

गाली लगे।' यह आदर्श हिन्दूओं, सूफी-संतों, ईसाई राबाओं, लामाओं और हर सच्चे ईश्वर प्रेमी के लिए सदा एक सा रहा है।

योगी कृष्ण प्रेम को दादा दिलीप कुमार राय ने पाण्डेचेरी आश्रम में आकर अरविन्दु जी को गुरू धारण करने के लिए लिखा। श्री कृष्ण प्रेम ने उत्तर दिया-'प्राप्ति के जिस आर्शीवाद की गुरू से आकांक्षा थी, वह मुझे प्राप्त है फिर पाण्डेचेरी आने का सवाल ही पैदा नहीं होता। जिस धूप को देख कर मेरे मन की कली चटखना चाहती है, वो सूरज लखनऊ में भी निकलता है उसी तरह जिस तरह पाण्डेचेरी में। दिलीप कुमार राय को बहुत गुस्सा भी आया और अपनी गुरू भक्ति अरविन्दु जी को दिखाने के लिए अपनी चिट्ठी और योगी कृष्ण प्रेम का उत्तर दोनों अरविन्दु जी के आगे रख दिये। पढ़े बगैर ही श्री अरविन्दु जी ने कहा- 'यह ज़रूरी तो नहीं कि एक लड़की को जो पति पंसद हो, उसे दूसरी हर लड़की अपना पति बना ले?'

श्री मां ने कहा था- 'दूसरों के गुरू में और दूसरों की साधना में ऐब तलाशने वाला कभी अपने ऐब नहीं देखता और नतीजा यह निकलता है कि सदा खाली रह जाता है।' कितना अच्छा हो कटाक्ष करने से पहले हम कहां खड़े हैं, यह देखें?

गुरू भक्ति में साधक को बहुत होशियार रहना होगा कि कहीं गलत अक्ल की चिंगारी उसके विश्वास को राख न बना कर रख दे। विश्वास का संबंध आत्मा के साथ होता है। यह जरूरी तो नहीं कि किसी के शब्द उसे अंकित कर सकें या जो कुछ वह कह रहा हो, उसके मन की गहराई से निकला हो। लगातार कई-कई घन्टे गाते रहे, घूमते रहे, आवाज़ के रस में आनन्द-विभोर और कई अपने मन की वेदना के मारे हुए सिसकियां भरते रहे, रोते रहे। आप ही कहिए प्राप्ति किसको हुई, शोर मचाने वाले को या आंसू बहाने वाले को? महाप्रभु चैतन्य कहते थे- 'मुझसे कोई सारा धन ले ले लेकिन उसकी विरह में कैसे रोया जाता है, यह कोई सिखा दे।' जगन्नाथ पुरी में रहते बारह वर्ष हो गये थे तब उन्होंने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा- 'जिस तरह एक विधवा मां अपनी इकलौती संतान के लिए तड़पती है, कंगाल खो गये चन्द पैसे के लिए रो-रो कर पागल हो जाता है, सच्चा प्रेमी भक्त इसी तरह से गुरू के लिए और प्रभु के लिए अपने जीवन की आहुति तक देने को तैयार हो जाता है।'

व्यास पूजा का पवित्र पर्व हमें इसी गुरू भक्ति की मर्यादा सिखाने के लिए हर वर्ष आता है। देखना यह है कि विरह की चिंगारी किसके हृदय में सुलगती है, गुरू प्राप्ति के लिए कौन पागल होता है, अपना सब कुछ श्री गुरू चरणों पर न्यौछावार करने को तैयार हो जाता है? हमारे गुरूदेव शायद उसी शुभ घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब हम सच्चे जिज्ञासु बन कर अपने मन की झोली को वासनाओं से खाली करके उनके करूणा द्वार पर फैला देंगे!



अध्याय - 39

घर-घर की छत पर जगमग जगमग जगते दीपों की कतार दूर से देखने से ज्योति की एक अबद्ध रेखा प्रतीत होती है, परन्तु पास जाने पर कितने ही दीये रात के अन्धकार के विरूद्ध संग्राम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। हमारी संस्कृति परम पावन ज्योति की एक ऐसी ही अबद्ध प्रकाश रेखा है जिसे समय-समय पर अनेकों महा माननीय परम तेजस्वी आत्माओं ने प्रज्जवलित किया। ऐसी ही कुछ श्रेष्ठ विभूतियों की कुछ घटनायें बार-बार मन की आंखों के आगे आ रही हैं। आईये! इनसे ज्योतिर्मय प्रेरणा पाने का शुभ संकल्प करके विचार चिन्तन के मण्डप पर प्रज्जवलित इन सदा जगमगाने वाली ज्योतियों को देखें।

बोधिसत्व की तिब्बत, नेपाल, भूटान और सिक्किम में जिन प्रसिद्ध नामों से वन्दना की जाती है उनमें एक नाम है मन्जूश्री, दूसरा है रत्नदीप, तीसरा है तारा। ये तीनों नाम ईश्वर ज्योति के प्रकाशमय चिन्ह स्वरूप हैं। गुरूदेव पद्मसम्बु थे। शिष्य ने पूछा था- 'दीपावली के दिन जलते दीये कितने अच्छे लगते हैं। दूर पहाड़ियों के पीछे बसे हुए नगर में हो रही दीपमाला हम बनवासियों के लिए कितनी सुन्दरता लिये हुए है।' गुरूदेव पद्मसम्बु बोले- “तेल से जलने वाले दीये कुछ क्षण के बाद बुझ जायेंगे पर जो निज जीवन को आहुति बना देता है, शरीर में दौड़ने वाले रक्त का तेल बना लेता है, अपने इस शरीर को नैवेद्य का दीया बना लेता है उसका प्रकाश शताब्दियों तक भी नहीं बुझ पाता। सदा जगमगाता रहता है और अटूट प्रेरणा प्रकाश का स्रोत बना रहता है।"

'आप भी तो एक ऐसे ही ज्योतिर्मय दीप हैं। किस तपस्या के बल पर आपको मनः ज्योति प्राप्त हुई?'

"मैं ऋद्धियों-सिद्धियों का पुजारी था। एक बार सुन्दरता की प्रतिमा एक राजकुमारी के रूप पर मोहित होकर राजमहल में राजकुमारी के पास पहुंच गया। भोग-वासना ने मेरा योग भंग कर दिया। कुछ दिन छुप कर राजकुमारी के साथ रहा पर एक दिन पकड़ा गया। मेरे हाथ-पांव काट दिये गये और गहरे कुएं के अन्धकार में डाल दिया गया। तब पश्चाताप की ज्वाला भड़क उठी। भगवान् बुद्ध की शरण ली और उनकी असीम कृपा से मुझे इस शर्त पर कारागार से मुक्त करवाया गया कि मैं अपने जीवन को स्वार्थवश न बिताकर परोपकार के लिए बिताऊंगा और मैंने प्रतिज्ञा की कि मैं मिले हुए मोक्ष को ठुकरा दूंगा और अपने बदले दुःखी जीवों को सुख स्वर्ग में भेजूंगा।"

एक शिष्य ने महापुरूष के चरणों में जाकर विनती की- "मेरे गुरूदेव सर्वशक्तिमान ईश्वरीय विभूति थे। उनका प्यार, दुलार और स्नेह सागर से ज्यादा गहरा और आकाश से कहीं ज्यादा अनन्त था, जब तक वे जीवित रहे मुझे न दिन की होश रहती थी न रात की। मैं उनके प्यार में खोया रहता था, पर अब उनका शरीर साथ छोड़ चुका है। मैं फिर से अन्धकार में भटक रहा हूं। उनकी उपस्थिति में जो आनन्द था, वह लुट गया। मैं अपने आपको यतीम बेसहारा महसूस करता हूं। लगता है घनघोर घने जंगल में जिस हाथ को पकड़ कर चल रहा

था, वह हाथ छूट गया है और अब दरिन्दो से घिरा हुआ जीवन के अन्तिम सांस गिनता हुआ निराशा में डूब गया हूं। लगता है मेरा जीवन गुरूदेव के शरीर के साथ ही मुझसे छूट गया।"

सिसकियां भरते हुए शिष्य को दिलासा देते हुए उस अवधूत महापुरूष ने कहा- "लगता है वो तुम्हारे थे, तुम उनको अपना समझते रहे पर तुम उनके न बन सके। तुम्हारे हृदय सिंहासन पर दबे-छुपे स्वार्थ आसीन रहे और इसी कारण तुम आज अपने आपको असहाय समझते हो।

दूसरों के हाथों में चिराग हो, तुम उसकी रौशनी में चलते चलो। पर ज्योंहि रास्ता बिछड़ेगा, प्रकाश थामने वाला हाथ ओझल हो जायेगा। तुम अन्धेरे में भटकने लग जाओगे। गौरव इस बात पर नहीं कि मैं उनकी छत्र-छाया में चला जिनके पास अनन्त ज्योति थी, गौरव इस बात में होना चाहिए कि गुरूदेव की ज्योति से जन्म-जन्मातर से अपने बुझे। दीप को जागृत कर लें। उसी चिराग और दीये पर भरोसा रखा जा सकता है जो मेरे हाथ है। गुरू ज्ञान और शास्त्रीय विद्या का पठन-पाठन सच्चे जिज्ञासु के लिए प्रेरणा-प्रद है पर रौशनी जब मिलेगी, उसे अपने मनो दीप में मिलेगी।"

गंगा के किनारे खड़े होकर श्री रामकृष्ण देव ने कलकत्ते की तरफ से आने वाली रौशनी के सैलाब की तरफ इशारा करते हुए कहा था- "यह प्रकाश गंगा जल के दर्पण में कितना सुन्दर लगता है। इसकी शोभा और भी बढ़ गई है। लगता है चारों तरफ रौशनी ही रौशनी है और यह कहते हुए उन्होंने अपने मुंह पर अगोंछा डाल लिया, कहने लगे-जरा सा पर्दा डालने से न वह रौशनी का सैलाब रहा, न गंगा की लहरों पर टिमटिमाने वाले चिराग रहे। अहंभाव का अंगोछा जब तक हम आंखों पर डाले रखते हैं, तत्वज्ञान का प्रकाश हमें दिखाई नहीं दे सकता।"

बारिश, तूफान, आंधी जबर्दस्त झखड़ में मां अपने बच्चे के लिए दवाई लेकर शहर से लौटी तो उस अन्धेरी रात के तूफान ने उसे रोक लिया। किनारे पर बैठकर ढायें मारकर रोने लगी। समाधि-स्थित योगी की समाधि टूट गई। मां के पास आकर उसकी दुविधा भरी कहानी सुनी और कहा- "रोने की आवश्यकता नहीं मेरे कन्थे पर बैठो, यत्न करूंगा नाव बन कर तुम्हें उस पार ले जाऊं।" पानी और चढ़ गया। बलपूर्वक लहरों से लड़ते हुए भी आगे बढ़ना कठिन हो गया पर उस युवक योगी ने प्राणों की बाज़ी लगा दी। सामूहिक बल के साथ किनारे की तरफ जाने की कोशिश की और यह देख कर कि किनारा पास ही है, बलपूर्वक मां को कन्धे से किनारे पर फेंक दिया। किनारे पर अभी बुढ़िया अपने को संभाल भी न पाई थी कि इसने सुना कि जीवन के अन्तिम स्वांस लेगे हुए योगी ने कहा था- "मां दवाई के साथ प्रभु की परम ज्योति भी तुम्हारे साथ होगी। मैंने उस दवाई में संजीवनी मिला दी है।" मां ने पूछा- "कौन सी संजीवनी?" योगी ने कहा- "अपनी सारी तपस्या का फल तेरे और तेरे बेटे के चरणों में। मेरा शरीर नहीं रहेगा, पर मेरा प्यार तुम दोनों के स्वरूप में ज़िन्दा रहेगा।"

खेद है कि दीवाली के शुभ अवसर पर बार-बार दोहराये जाने वाली गाथाओं को छोड़कर कुछ ऐसे चिराग़ की लौ से प्रेरणा पाने की चेष्टा की है जो असाधारण थे। आम आंखों से ओझल, पर फूल जंगल में खिला हो, चिराग़ ग़रीब के घर में जला हो-इसकी महक और उसकी रौशनी सर्व-सामान्य है।

छोटी अवस्था के नौकर को तेल लेने के लिए बाज़ार भेजा गया। बाज़ार में बहुत भीड़ थी। शबे बरात के कारण चिरागां था। लड़के के हाथ से कटोरा गिर पड़ा, तेल धूल में जा गिरा, किस मुंह से मालिक के सन्मुख जाये-सोच कर रोने लगा। बहुत दुहाई दी, सबसे मदद मांगी कोई उसे तेल देने को तैयार न हुआ। एक फकीर से यह दुर्दशा देखी न गई। द्वार-द्वार से भिक्षा मांग कर चार पैसे हाथ आये थे उससे नौकर को तेल लेकर दिया और फिर कहा- "कभी तेरा सितारा चन्द्रमा की तरह उज्जवल होगा। माया के उस चकाचौंध प्रकाश में कहीं मुझको भूल न जाना।" बरसों बाद वही छोटा सेवक दिल्ली का सुलतान सुप्तगीन कहलाया। पर जब राजतिलक हो गया तो सुल्तान नंगे पांव बुझे हुए दीपक को जलाने वाले गुरूदेव के चरणों में हाज़िर हुआ। हज़त बख्तयार काकी को ऐसा ही अनुदान सुल्तान अलतमश के रूप में मिला।

हर दीया प्रकाश का वाहक होता है। ज्योति का प्रतीक होता है। किसी महापुरूष ने कहा था- "तुम्हारे पास दीया है उसे घर की आखिरी कोठरी में जला कर क्यों रखते हो, सड़क पर खुलने वाले दरीचे पर रखो क्योंकि रात के अन्धकार में उस सड़क पर भटकने वाले हर व्यक्ति को प्रकाश मिल सके।"

जलभरी आंखों के साथ नमन हो, कर-बद्ध होकर प्रार्थना करें- ज्योतिर्मय प्रभु! मुझे अन्धकार से ज्योतिर्मय प्रकाश में ले चलो। मेरी रौशनी मेरे लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी साहस और धीरज का पुंज बन सके।

❀❀ ❀❀ ❀❀ ❀❀

अध्याय - 40

गुरु भक्ति हिन्दु संस्कृति के प्राण बनकर हमारी धर्म निष्ठा की सदैव रक्षा करती आई है। हमारे धर्म की नींव गुरू भक्ति पर आधारित है। यहां तक कि आज जिन महान् पुरूषों को हम अवतार मानते हैं, युग पुरूष कहते हैं, धर्म प्रवर्तक कहते हैं, हमारा शास्त्रीय इतिहास साक्षी है कि उन्हें श्री गुरू शरण ग्रहण करनी पड़ी और उनके जीवन का निखार श्री गुरूदेव की अपूर्व कृपा से ही प्रज्जवलित हो सका। वेदों को लिपिबद्ध करने वाले महार्षि वेदव्यास को ये श्रेय जाता है कि उन्होंने गुरू भक्ति को ईश्वर उपासना से भी कहीं ज्यादा ऊंचा स्थान दिया। हमारे शास्त्र कहते हैं कि गुरूदेव ही जीवन्त साकार ब्रह्म का प्रकट स्वरूप हैं।

हुजूर गुरूदेव जब तक हमारे साथ चलते फिरते थे, मायावश हम उनको पहचान न सके। पर आज याद आता है कि गुरू भक्ति पर श्री रामचरित मानस और श्री गुरू ग्रंथ साहिब के स्वर्णिम अक्षरों को लेकर वे भाव-विभोर होकर जब गुरू प्रशंसा करने लगते थे तो उनकी आंखों से प्रेम जल धारा बहने लगती थी। शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे, यही नहीं हिचकी बंध जाती, आवाज रूक जाती और गले से शब्द निकलने कठिन हो जाते। कल की आंखों देखी बात है कि गुरू भक्ति पर प्रवचन देते हुए श्री महाराज जी स्वंय गुरू भक्ति की जीती-जागती प्रतिमा बन जाते । अध बंद आंखें न जाने कौन से संसार में खो जाती थी कि कई बार बहुत मुश्किल से फिर से संसार में आ पाते थे। एक आलौकिक गुरू भक्ति उनको रोमांचित कर जाती थी और दिल की कसक और सीने के दर्द को शब्दों का रूप भी नहीं पहना सकते थे। वह स्वंय गुरू-निष्ठा की मन-मोहिनी मूरत थे। दिन-रात, भूख-प्यास की परवाह न करते हुए नगर-नगर, डगर-डगर घूम कर उन्होंने अपने गुरुदेव के नाम का डंका बजाया और यहां तक कि जीवन के अंतिम स्वांस तक निष्काम भावना से गुरू भक्ति में आरूढ़ होकर अनथक सेवा की। सच तो यह है कि उन्होंने अपने शरीर को ही गुरूदेव की स्मृति, अर्चना में अगरबत्ती बना लिया और एक-एक पल जलते हुए दिल के साथ अपनी गुरू भक्ति की महक सारे संसार में फैला दी।

याद आता है एक बार इने-गिने दो चार प्रेमियों के साथ वार्तालाप करते हुए गुरू महिमा गाते हुए इतने मुग्ध से हो गए और अपने सेवकों को इस तरह से मंत्र मुग्ध कर दिया कि लगता था कि हम सब बेजान मूर्तियों की तरह छिटकी हुई चांदनी में सुध-बुध खोये हुए पागल और दीवाने बने देहायास से बहुत ऊपर उठ चुके थे।

गुरू भक्ति का जिक्र करते हुए वह सदा गुरूवाणी की बहुत सराहना किया करते थे। गुरू रामदास के एक शब्द का जब भी जिक्र आता तो उनकी दशा कुछ और ही हो जाती। राग सुई अष्टपदी महल्ला चौथा के शब्द को जब वह पढ़ते तो उनकी आंखों में चमकती हुई पुतलियां उनकी थिरकती हुए आवाज़ के साथ नृत्य करने लग जाती थीं।

कोई आणि मिलावै मेरा प्रीतमु प्यारा,
हउ तिसु पाहि आपु बेचाई ।
दरसनु हरि देखण के ताई।
कृपा करहि ता सतिगुरू मेलहि
हरि-हरि नामु धिआई। रहाउ ।।
जे सुखु देहि त तुझहि आराधी दुखि भी तुझे धिआई ।
जे भुख देहि त इत ही राजा दुख विचि सुख मनाई ।।
तनु मनु काटि काटि सभु अरपी विचि अगनी आपु जलाई ।।
पखा फेरी पाणी ढोवा जो देवहि सो खाई।
'नानक' गरीब ढहि पइआ दुआरै हरि मेलि लेहु वडिआई ।।

इस शब्द की उन्होंने जो व्याख्या की उसके शब्द तो अच्छी तरह से याद नहीं आ रहे, पर आंखों के सामने उनकी दिव्य मूर्ति घूम रही है कि किस तरह से वह मस्त फकीर अपनी हस्ती से बेखबर होकर वजद और सरूर में आ कर झूम रहे थे जैसे बरसात की गीली हवाओं के थपेड़ों से फूलों से लदी डाली कांप-कांप जाए। उस वक्त आपने फरमाया था कि "जब तक शिष्य के मन में गुरू के प्रति ऐसी प्रीत नहीं जागती कि मिले बगैर प्राण छूट जायेंगे, तब गुरूदेव उस शिष्य को अपने हृदय में जगह दे देवें।" इसी प्रवचन में भावावेश में आकर गुरू भक्ति का एक बड़ा प्यारा नुक्ता कह गए कि- "शिष्य का लक्ष्य गुरू हृदय में जगह हासिल करना नहीं बल्कि श्री गुरूदेव के चरण कमलों को अपने हृदय मंदिर में आसीन करना है। भक्ति दिल की धड़कन की तरह सहज हो जानी चाहिए। पंच भौतिक शरीर में जो कीमत प्राणों की है उससे भी कहीं ज्यादा बहुमूल्य गुरू निष्ठा से सुंगधित भावना है।

जब तक शिष्य को अपने तन मन और धन तीनों के साथ आसक्ति है तब तक हीरे की दमक जैसी गुरू भक्ति पैदा नहीं हो सकती। मज़ा तो तब है कि शिष्य जीते जी मर जाए और इसका शरीर गुरू का वाहक बन जाए। गुरू भक्ति में आरूढ़ शिष्य की आंखें हिलें तो गुरूदेद की ज्योति दिखाई दे, उसकी जुबान हिले तो महसूस हो कि गुरुदेव की अमृत सुधा बह रही है। ऐसे शिष्य के हाथ कोमल और पवित्र हो जाते हैं जिसे छूने से आनन्द की अनुभूति हो। ऐसा शिष्य स्वंय जीता-जागता चलता-फिरता एक शिवाला होता है। जिसके दर्शन मात्र से ही जन साधारण का कल्याण हो जाए और आवागमन में जकड़ी हुई आत्माएं निर्वाण प्राप्त कर जांए। ऐसे शिष्य के हाथ वही कार्य करते हैं जो गुरुदेव करवाएं। वह एक बेजान सी मशीन बनकर गुरू के कार्य को करता है। हर कामना से परे हट कर, हर स्वार्थ को त्याग कर जानिए उसने अपनी प्रशंसा उपमा इन सबकी आहुति गुरूदेव के चरणों में दे दी हो। ऐसा शिष्य असल में हनुमान जैसा होता है जो पाप रूपी रावण की लंका को तहस-नहस कर सकता है।"

गुरू भक्ति की चर्चा करते हुए एक बार शाम के छुटपटे में महाराज जी के साथ दो-एक सेवक बहुत दूर निकल गए। राजौरी गार्डन से परे अभी नारायणा का पुल नहीं बना था। पुल बनने का काम जारी था। मिट्टी डाली जा रही थी, लाख हाथ जोड़ते रह गए कि कपड़ा बिछाते हैं उस पर बैठिए परन्तु वह दरवेश न जाने कहां खोये-खोये हमारी बातों को अनसुनी करते हुए मिट्टी पर ही बैठ गए। दूर परे सूरज छिप चुका था, अंधेरा गहरा होता जा रहा था और तब आहिस्ता आहिस्ता चन्द्रमा की हल्की-हल्की पिघले हुए पुखराजों जैसी रौशनी आकाश मडंल में फैलती जा रही थी। आपने फरमाया- "गुरू और शिष्य का वही नाता हो जाना चाहिए जो चन्द्रमा का सूर्य के साथ। चन्द्रमा अपना प्रकाश नहीं रखता वह मांगे हुए उजाले को संसार भर में फैला देता है। नतीजा यह होता है कि कड़कती धूप में जो कलियां सूख गई थीं, धीरे-धीरे आंचल परे हटाती हुई और अपनी महक से सारे वायुमडंल को भीनी-भीनी खुशबू से भर देती हैं। सच्चा शिष्य तो वही है जो गुरू की महक बन जाए। सच्चा शिष्य वही है, जिसका हर शब्द गुरूदेव का ही संगीत बन जाए।"

मोह को धर किरपा जग जीवन दाते,
हरि संत पगी ले पावे ।

हो काटू काट बाड़ सिर राखूं,
जित 'नानक' संत चढ़ आवे ।।

रूकती-रूकती भाषा में फरमाया- 'ऐ जगत् के प्राणाधार प्राणेश्वर दीन दयाल मुझ पर कृपा करो। मुझे किसी संत के चरणों का आसरा मिल जाए और अगर ऐसा हो जाए तो मैं अपने सिर को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर के अपने प्रीतम प्यारे प्रभु कि श्री राहों में फेंक दूं, ताकि मेरा गुरूदेव मेरा संत रूपी ईश्वर मेरे सिर के इन टुकड़ो पर कदम रखता हुआ मुझ तक पहुंच पाए।"

आंख बंद कर लीजिए, यह बंद मौन अवस्था चाहती है- इस भावना को रोम-रोम में समा लीजिए। उनकी वाणी को सुनने का प्रयत्न कीजिए। संसार भर में बिखरे हुए मन को एकाग्र कर आप ध्यान से सुनेंगे तो गुरू भक्ति के मार्ग में हम कहां खड़े हैं, यह अपने दिल में झांकने पर पता चल जाएगा। रूकिए मत ठहरिए नहीं। उनकी आवाज़ को सुनिए और अपने जीवन को उनके शब्दों में ढाल दीजिए।

क्या पता वह व्यास पूजा के अवसर पर हमारे इसी प्रेम उपहार की प्रतीक्षा कर रहे हों।

❀❀ ❀❀ ❀❀ ❀❀

अध्याय - 41

क्रिसमिस (Christmas) और नववर्ष की बहुत-बहुत बधाई हो। प्राणेश्वर श्री गुरूदेव के चरणों में हमारी विनीत प्रार्थना है कि ये दोनों पर्व आपके लिए हर्ष, उल्लास, शांति, सुख और आनंद देने वाले हों और आप सबका श्री गुरूदेव में और परम पिता परमेश्वर में अटूट विश्वास का रिश्ता सदा बना रहे।

देखा जाये तो ये दोनों पर्व पश्चिमी संस्कृति ने भारत को दिये हैं। क्राईस्ट-यशुमसीह हमारे लिए अपरिचित थे जब तक कि विदेशी प्रभाव ने हमारी आंखें इस गौरवपूर्ण महापुरूष की ओर नहीं खींची जो अपनी शिक्षा और जीवन के सदंर्भ में हमारे अपने ही थे। एक ऋषि के समान, एक उपनिषद् महापुरूष के समान उनकी दिव्य विभूति थी। उनकी शिक्षा वही थी जो भगवान बुद्ध की थी। वही शिक्षा जो अमृत रूपी वेदवाणी से हमें प्राप्त हुई। वही शिक्षा जो उपनिषदों के ब्रह्मवेत्ता ऋषियों ने हमें दी। क्राईस्ट के जीवन और उनकी शिक्षाओं को सच्चे विश्वास के साथ ग्रहण करते हुए स्वामी विवेकानंद, परमहंस योगानंद और दूसरे अनेक महापुरूषों ने उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए उन्हें ब्रह्मनिष्ठ योगी कहा। यही नहीं स्वामी विवेकानंद उनकी शिक्षा से सम्बन्धित एक पुस्तक इमिटेशन आफ क्राईस्ट" "Imitation of Christ"- "क्राईस्ट के चरण चिन्हों पर" सदा अपने पास रखते थे और इसको वही सम्मान देते थे जो श्री मद्भागवत गीता को। पवित्र जीवन, चित्त

निरोध और मानसिक पूजा के गहरे भेदों से भरी इस पुस्तक का स्वंय बंगाली में अनुवाद करके सभी ईश्वर जिज्ञासु, सच्चे उपासकों को देना चाहते थे।

क्राईस्ट का जीवन आज भी उतना ही शिक्षाप्रद और प्रेरणा स्रोत है जितना किसी दूसरे ब्रह्मऋषि का हो सकता है। यशुमसीह का कथन था 'मेरे में और प्रभु में कोई अंतर नहीं ।' डंके की चोट से उन्होंने कहा- "मैं वही हूं जो वह है।" ये दोनों कथन 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'सोऽहम' का ही अनुवाद हैं। उनका कथन था कि जब तक मन पवित्र नहीं होगा न मंदिर जाने से लाभ, न तीर्थाटन से कोई फायदा, मन को शुद्ध करो, मन को हर बुराई से धो लो। हर द्वंद्वको मिटा दो, साक्षात्कार हो जायेगा और उस ज्योतिर्मय प्रभु का प्रकाश भीतर बाहर फैल जायेगा। ईश्वर अंश होकर भी दुःखों से तड़पता है, रोग और सोग की चक्की में पिसता है, बार-बार आवागमन के थपेड़े खाता है तो केवल इसलिए कि वह अपने को अपने प्राणेश्वर प्रभु के साथ नहीं जोड़ता बल्कि मोह-माया की भ्रांति को अपना बैठा है और अंधेरे में अपना रास्ता खो बैठा है।

यशुमसीह इतने दयालु और कृपा पुंज थे कि उनसे किसी के आंसू देखे नहीं जा सकते थे। बड़े से बड़े पापी, अधम से अधम व्यक्ति ने भी उनसे हाथ फैलाकर कृपा की भिक्षा मांगी तो उसे स्वर्ग सुख दे दिया। यहां तक कि एक हत्यारे को कह दिया कि तुम मेरे साथ बैकुण्ठ में प्रवेश करोगे। वेश्या स्त्रियों को उन्होंने देवी प्रतिमा समझ कर पूजा की और नीची आंखों के साथ उस वेश्या को जिसे लोग पत्थर मारकर जान से मार डालना चाहते थे, से कहा- "प्रभु पुत्री बनो, श्रेष्ठ बनो। अमृत को प्राप्त करो।" प्रभु नाम पर उनको वही विश्वास था जो हमारे पुनीत महापुरूषों को है। वे रिद्धि-सिद्धि के मालिक थे। चाहते तो किसी मुर्दे को जिंदा कर देते, किसी रोगी को स्वस्थ्य कर देते, किसी निर्धन को धनवान बना देते। क्राईस्ट ने इसी योग बल पर, इसी निष्ठा के कारण मुर्दों को ज़िंदा किया। कोढ़ियों और अपाहिजों को स्वस्थ्य जीवन प्रदान किया। वह बियाबानों से गुज़रे तो वृक्षों पर बहार आ गई। सूखी टहनियां हरी हो गईं। खेत लहराने लगे लेकिन उससे भी ज्यादा उनका सबसे बड़ा चमत्कार था मनुष्य-मात्र को फिर से प्रभु चरणों में जोड़ दिया। कुरीतियों और मनगढ़ंत क्रूर बंधनों को तोड़कर निर्मल और सत्य का उपदेश दिया और भ्रांतियों के मारे संसार को स्वार्थ छोड़ कर दया-भाव अपनाने पर ज़ोर दिया। वे स्वयं करूणा की मूर्ति थे। यहां तक कि हिंसक जानवर भी इनके पांव चाटने लग जाते थे और उड़ते हुए पंछी इनके कंधों पर आ बैठते थे।

इस महा योगेश्वर ने अल्पायु रखते हुए भी संसार में एक ऐसा स्थान बना लिया जो ध्रुव तारे की तरह अटल रहेगा। वे विनम्रता, मधुरता, क्षमा के अवतार थे और अपनी करूणा में यहां तक आगे बढ़ गये थे कि जिन लोगों ने इनको अपमानित किया, इन पर लांछन लगाये और अंत में इन्हें फांसी पर लटका दिया, उन्होंने अपनी आंखों में आंसू भर कर प्रभु चरणों में यही प्रार्थना की कि इन सभी लोगों को क्षमा कर दो जो नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।

परमहंस योगानंद कहा करते थे- "क्राईस्ट से बढ़कर कोई सद्गुरूदेव नहीं हो सकता।" वह जिज्ञासु और भगत जो कसमें खा-खाकर उनके लिए प्राण तक न्यौछावर करने का दावा किया करते थे, उनके बारे में भी सतपुरूष-

सतगुरू भली-भांति जानते थे कि कथनी और करनी में बहुत अंतर है और वो लाखों में से कोई खुशनसीब विश्वास पात्र होता है जो प्राणों की आहुति देकर गुरूभक्ति निभा सकता है। उन्होंने विश्वासघात करने वाले जूहस से कहा था- "कहना बहुत सरल, निभाना बहुत कठिन।" अपने एक दूसरे परम शिष्य पीटर से कहा था कि तुम हर संकट में मेरे साथ रहने का आश्वासन देते हो लेकिन आज ही रात को किसी मुर्गे के बांग देने से पहले तुम तीन बार विश्वासघात करोगे। लेकिन क्राईस्ट सब कुछ जानते हुए भी, अपनी शिष्य मण्डली की कमजोरियों से भली-भांति परिचित होने के पश्चात् भी कहते थे- "स्वर्ग का जो साम्राज्य मेरे लिए है, वो तुम्हें भी मिलेगा ।"

फांसी पर चढ़े क्राईस्ट के नाम की दुहाई देकर ज़बर्दस्ती लालच से दूसरों का धर्म परिवर्तन कराने वाले ईसाईयों की तरह हम क्राईस्ट की पूजा नहीं करते। हम उन्हें ब्रह्मवेत्ता ईश्वर निष्ठ महापुरूष जानकर उनकी चरण-धूलि माथे पर लगाते हैं और अपने मन के सच्चे उद्गारों के साथ अपनी पुष्पांजलि और श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए सदा यही प्रार्थना करते हैं कि ए प्रभु! हमें दम्भ से, क्रूरता से, वैर-विरोध से दूर रखो और हमारे जीवन को अमृतमय बना दो कि हम अपनी जान पर खेल कर दूसरों के किसी संकट में उनके काम आ सकें। हमारा उद्देश्य धर्म परिवर्तन नहीं, जीवन परिवर्तन है। 'हमारा मिशन' मनुष्य के इसी जीवन परिवर्तन में अटूट विश्वास रखता है और इसकी सदा यही कर्मशैली रही है कि हम दूसरों के उद्धार के लिए अटूट निष्कामता से जो भी हिस्सा डाल सकें-डालें। प्रभु साम्राज्य मनुष्य मात्र को बदलने से स्थापित हो सकता है। कितना अच्छा हो कि हम क्राईस्ट के इस तेजोमय जीवन से प्रेरणा स्वीकार करें और अपने जीवन में वे सारे शुभ गुण धारण कर लें, भगवान् श्रीकृष्ण ने भागवत् में जिन सद्गुणों को स्वर्ग की कुंजी कहा है।



अध्याय - 42

पतझड़ और खिज़ां के हाथों से वीरान हुई धरती को नई मुस्कराहट देने के लिए और उसकी मांग में बहारों का सिन्दूर भरने के लिए जिस तरह से ऋतुराज बसंत का आगमन होता है, हमारे प्राणाधीश परम आराधनीय श्री सद्गुरूदेव पापा जी महाराज ने मुरझाई हुई रूहों को नवजीवन देने के लिए अवतार धारण किया और बैकुण्ठधाम में गन्धवों का संगीत छोड़ कर हम जैसी अशांत और माया ग्रस्त रूहों की आह-ने-पुकार सुनने के लिए दौड़े चले आये। उन के शुभ जन्म-दिन पर श्री ठाकुर परिवार, श्री गुरू दरबार के अनन्य प्रेमियों को और अवतारवाद में निष्ठा रखने वाले तथा सनातन धर्म में श्रद्धा रखने वालों को हमारी हार्दिक बधाई हो। यह पावन बेला कितने ही रहस्यमय तपोतेज का प्रकाश करने वाला भाग्यशाली दिन है जिसकी जितनी भी उपमा गाई जाये कम है।

भगवान् बुद्ध ने अपनी प्रिय अलौकिक वाणी में कितने सुन्दर शब्द उच्चारण किये हैं। कहते हैं 'शुद्ध, निर्मल, पवित्र आत्मा जो आनन्द-कन्द-रस में लीन थी, दीन-दुखियों की आवाज़ सुनकर स्वर्ग धाम से धरती पर इसलिए उत्तरी, चाहे कितने भी कष्ट क्यों न उठाने पड़े, माया के मंझधार में डूब रहे प्राणियों का उद्धार किया जाये और उन्हें फिर से मृत्यु से जीवन की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाया जाये।' महामृत्युंजय का महामंत्र जिनके होठों पर सदैव चल रहा था, द्रवित हृदय के साथ हम जैसे मल-मूत्र से भरे हुए चीथड़ों को सजाने संवारने के लिए अपने सुख का त्याग करके मनुष्य शरीर को ग्रहण किया और हम पापी दूषित जीवों की फटकार, गाली-गलौच, निन्दा-चुगली सब कुछ सहकर भी उन्होंने उसी तरह से हमें डूबने से बचा लिया जिस तरह ममता की मूरत मां अपनी करूणामयी बाहों से गन्दे और बीमार बच्चे को भी उठाकर अपनी छाती से लगा लेती है। तीनों लोकों की करूणा और कृपा को अपने आंचल में समा कर ऐसी दिव्य आत्माएं धरती के साधारण जीवों की तरह जीवन के हर सुख-दुःख को खिले मात्थे से स्वीकार करती हैं। ऐसी मंजूश्री आत्माओं को देवता भी कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं और एकटक धरती पर आंखें लगाये उनकी राह को देखते रहते हैं कि वे कब अपनी लीला को समाप्त करके वापिस आनन्द लोक में पधारेंगे।

तिब्बत, भूटान और सिक्कम इन तीनों की दुर्गम घाटियों को पार करके यदि प्राचीन बौद्ध मठों में जाने का सौभाग्य मिले तो वहां पहुंच कर आपके नेत्रों से अपने आप ही आंसुओं की नदी बहने लगेगी। खुले आंगन की तरफ पीठ करके दीवार के साथ मुंह लगाये हुए सैकड़ों आसनों पर साधक और मुमुक्षु आत्माएं तप करते हुए दिन-रात एक ही प्रार्थना दोहरा रही हैं कि जो देवता अपने सुख को त्याग करके दूसरों को नरक से निकालने के लिए धरती पर आया है, ऐ दैवी सम्पदा उनकी रक्षा करना और हम दिन रात प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे कब वापिस आयेंगे। हम उन जैसा तप तो नही कर पाये लेकिन जब वे लौटेंगे रास्ते के कांटों से छलनी हुए उनके चरण-कमलों से रक्त की जो बूंदे निकल रही होंगी उससे अपने जीवन का सिन्दूर भरेंगे और यही याचना करेंगे कि जन्म-जन्मांतरों के बाद भी गिरी हुई आत्मा के कष्ट को दूर करने के लिए किसी काम आ सकें तो हमारे प्राण तक इस महान् यज्ञ के लिए नेवेद्य बनने के लिए सदा ही तैयार रहें।

परमहंस रामकृष्ण को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि जो जन्म सिद्ध पवित्र आत्मा थी, शायद देवताओं को भी ऐसी आत्मा नसीब न होने पाये। फिर भी इस लोक पर आये लोगों ने बहुत बुरा भला कहा। कौन सा लांछन था जो उन पर न लगाया गया, कौन सा अत्याचार था जो उनके प्रति न किया गया। अज्ञान से अंधी आत्माओं ने बिना सोचे समझे जो मुंह में आया कह दिया, वे सब कुछ सुनकर भी हंसते चले गये। क्योंकि शिव की तरह संसार की रक्षा करने के लिए ज़हर को पीना और मृत्यु-ग्रस्त जीवों को सुखी बनाने के लिए उन्होंने सब कुछ बलिदान की यज्ञशाला में डाल दिया। जिसने देवताओं की अनसुनी कर दी हो वो पाप ग्रस्त जीवों के गाली गलौच पर कब ध्यान देने वाला है?

ऐसे ही अवतारी महापुरूष थे हमारे प्राणाधार श्री पापा जी! जो कुछ उन्होंने जीवन की आहुति देकर, संसार भर के सुखों की तिलांजलि देकर गुरु कृपा से पाया था, वो अपने तक सीमित न रख पाये । अत्यन्त दुर्लभ

अमृत का कोष हाथ में लिए नगर-नगर प्रचार करने लगे ताकि दुःख के जबड़ों से चीखने-पुकार कर रही आत्माओं के मुंह में उस अमृतमयी संजीवनी को डालकर नया जीवन दे सकें।

"जब-जब धर्म की हानि होती है, आत्माओं की चीख-पुकार सुनकर मैं धर्म प्रेमियों के लिए जन्म लेता हूं और पाप और अधर्म का नाश करके धर्म को फिर से विजयी करने के लिए मनुष्य शरीर धारण करता हूं।" यह दिव्य आश्वासन गीता में ही नहीं दिया गया, संसार के सभी धर्म ग्रंथ इसी की नाद-गर्जना करते हैं। तुरैत, कुरान बाईबल और बौद्ध धर्म के ग्रंथ बार-बार यही कहते चले जाते हैं कि और सब कुछ सहन हो जायेगा लेकिन धर्म का संकट उस धर्मात्मा से कभी सहन नहीं हो पायेगा। और हर युग में जब भी जरूरत पड़ेगी वे नया स्वरूप धारण करके इस धरती पर आयेगा। लोग भले ही उस को ईश्वर न माने, उसकी महिमा को न जान सकें, अवतारी दिव्य पुरूष संसार की मिथ्या प्रशंसा से न प्रसन्न होता है और न कभी निन्दा से दुःखी होता है। वह तो सबसे ऊंचे आदर्श को स्थापित करता है, अपने तन-मन-धन की आहुति देकर हमारी निवृत्ति के लिए आग के तूफान में कूद पड़ता है।

ऐसी मंगल प्रभात के समय हाथ जोड़ कर उनके चरणों में विनम्रता के साथ यही कहना है कि सच्ची गुरू भक्ति यही सिखाती है कि हम अपने आराध्यदेव के काम को कठिन बनाने के बजाए उनके सहयोगी बनकर, आज्ञाकारी सपूत बन कर कोई ऐसा मन-वचन-कर्म से काम न करें जो उनके बोझ को और भी बढ़ा दे। हमें यही यत्न करना है और हमारी साधना का यही लक्ष्य होना चाहिए कि निज सुख और स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों की भलाई के लिए जो कुछ भी कर सकते हैं गुरू आराधना समझ कर सप्रेम भाव से करें। याद रखिएगा उन्हें दुर्योधन के मेवे नहीं विदुर के फीके साग की अभिलाषा है। वे तिलकधारी कर्मकाण्डी उपासना के बजाये प्रेम से परिपूर्ण शिबरी के जूठे बेर ज़्यादा स्वीकार करेंगे।



अध्याय - 43

अन्तः करण को यज्ञशाला, मन को हवन कुंड, प्राणों की समिधा से ब्रह्म-यज्ञ करने वाला योगी। जिस अश्वमेघ यज्ञ को सत् युग में करना कठिन था, उसे कलियुग में पूर्ण कर दिखाया। पत्नी-पुत्र, सुख-सम्पत्ति, गुरू-गद्दी और सेवकाई का त्याग कर देने के बाद निज प्राणों की आहुति। वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों के गुप्त रहस्य को साक्षात् जीवन में उतार लिया।

बाईस बरसों से एक कमरे में अपने आपको बन्द करके पूर्ण आहुति डालने वाले तपस्वी श्री ठाकुर जी महाराज का चमत्कार।

तैत्तरे ब्राह्मण ग्रंथ में यज्ञ, हवन के माहात्म्य के बारे में उपदेश देते हुए एक सैद्धान्तिक सच्चाई का वर्णन किया गया है। ऋषिवर ने ग्यारहवें खण्ड में कहा है कि आग और समिधा, सामग्री के साथ हवन यज्ञ करने वाले अपने संसार से कोरे और अनभिज्ञ बने रहते हैं और अपने असली यज्ञ को भूल जाते हैं। ब्राह्मण ग्रंथ में जनक याज्ञवल्क से प्रश्न करते हैं कि यदि आपके पास यज्ञ-हवन करने के लिए सामग्री न हो तो फिर अग्नि के बिना यज्ञ कैसे किया जाएगा? याज्ञवल्क बोले- "फल-फूल और कन्द-मूल और जड़ी-बूटियों से।" जनक ने कहा कि अगर वो भी न हों तो? याज्ञवल्क बोले- "तब पानी के साथ।" "अगर पानी भी न हो?" जनक ने प्रश्न किया। याज्ञवल्क ने कहा- "तब तो जीवन ही कहां रहेगा। लेकिन इस सूरत में हम अपने मन और ज्ञान से यज्ञ कर सकते हैं।"

छान्दोग्योपनिषद् में पूछा गया है कि क्या यज्ञ के लिए सामग्री और पुरोहित या पंडित की आवश्यकता है? ऋषिवर कहते हैं कि निज अग्नि विद्या से यज्ञ किया जा सकता है। अग्नि किस को कहते हैं? ऋषिवर कहते हैं कि यह आकाश, धरती, ज़मीन, मनुष्य मात्र, मर्द-औरतें सब के सब अग्नि रूप हैं।

वैदिक ऋषियों नें कमाल की सच्चाई का वर्णन करते हुए यज्ञ की व्याख्या करते हुए, यज्ञ की फिलास्फी को इन्तहाई अछूते रंग में प्रस्तुत किया है। छन्दोग्य उपनिषद के तीसरे खण्ड के सोलहवें और सत्तहरवें मंत्रों में कहा गया है कि सब से प्रथम दर्जे का यज्ञ वो है जो आग और सामग्री के बिना मनुष्य, साधक अपने शरीर को हवन कुण्ड बना कर-कर सकता है। महा-नारायण उपनिषद् में लिखा है:-

"आत्म साक्षात्कार कर लेने वाले तपस्वी के लिय यज्ञ के लिए बाहरी सामग्री की आवश्यकता नहीं। यह यज्ञ इसे अपने आप से करना होगा। सव्-शास्त्रों और महा-पुरूषों से सुने हुए सत्य वचन को शरीर को समिधा, छाती को हवन कुंड, सर के बालों को कुशा घास, वेद इसके सर की चोटी, इसका मन यज्ञशाला, इसकी इच्छाएं घी, इसके दोष और विकार बलि देने वाले पशु, इसकी तपस्या अग्नि, इन्द्रियों पर दमन की सामग्री, इसका ज्ञान-ध्यान इसकी दक्षिणा, वाणी इसकी पुरोहित, यह जिन्दगी यज्ञ विधि, जो कुछ खाए इसकी आहुति, जो कुछ पिये वह सोमरस, यह सूत्र यज्ञ जीवन के अन्तिम स्वांस तक चलता है। अन्तिम स्वांस अन्तिम आहुति होता है।"

उपनिषद् कहते हैं कि केवल एक जीवन मुक्त ही इस यज्ञ को कर सकता है। आम लोगों की तो बात ही क्या है। इसको यज्ञ उपदेश देने वाले बड़े-बड़े पुरोहित और यजमान नहीं कर सकते। लेकिन जो लोग यज्ञ करना चाहते हैं, उनके सामने ऐसा यज्ञ एक आदर्श है। मनुष्य मात्र को यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि अपनी अहंत्ता को इस यज्ञ में पूरी तरह से जला देने के बाद कोई सच्चे मायनों में यज्ञ कर सकता है। यज्ञ करते हुए प्रत्येक मंत्र में कहा जाता है कि इस आहुति को फलां देवता को अर्पण कर दिया गया है। दूसरे शब्दों में हवन यज्ञ करते हुए "मैं" "मेरी" की भावना पूर्णरूप से नष्ट हो जाए।

भगवान बुद्ध ने ऐसा ही यज्ञ किया था। एक बार एक ब्राह्मण इनके पास यज्ञ हवन की समाप्ति पर प्रसाद लाया। भगवान बुद्ध ने उस ब्राह्मण से कहा- "भद्रे!" अपने दिल से यह विचार निकाल दो कि हवन कुंड में अग्नि जलाने से यज्ञ हो जाता है। ऐसा यज्ञ तो बाहरी यज्ञ है, दिखावे का है। मैंने ऐसे यज्ञ करने की रस्म छोड़ दी है। मैं अपने ही हृदय के अन्तःकरण में विवेक और वैराग्य की अग्नि जलाता हूं और मन की पूरी एकाग्रता के साथ इस पर टिका देता हूं। मेरा यह यज्ञ बराबर चल रहा है और जीवन के अन्तिम सांस तक चलता रहेगा।"

मनु महाराज ने ब्रह्म-यज्ञ, देव-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, नर-यज्ञ का उपदेश देने के बाद कहा है कि इन यज्ञों के करने से मनुष्य गृहस्थ में रहकर तीन सात्विक गुण धारण कर लेता है। आत्म संयम (अपने ऊपर नियंत्रण) त्याग भावना और आत्म बलिदान । निष्काम भावना से दूसरों की सेवा पूजा। इन यज्ञों की महिमा बतलाने के बाद मनु महाराज ने कहा है कि यह यज्ञ इन सब यज्ञों से महान है और वह है आत्म आहुति । आत्म यज्ञ करने वाला जीते जी सबसे आसक्ति, संबंध, रिश्ता तोड़कर केवल ईश्वर को सामने रखकर अपनी समिधा बनाकर अपनी आहुति दे देता है।

स्वामी विवेकानन्द ने वेदों, उपनिषदों और ब्राह्मण सूत्रों के इस रहस्य को बतलाते हुए कहा है कि सच्चा और सर्वश्रेष्ठ यज्ञ वही होता है जो साधना की परम सीमा पर पहुंचा हुआ योगीराज वेद मंत्र उच्चारण करते हुए अपने सम्पूर्ण जीवन को उस प्रभु प्राप्ति की ज्वाला में भस्म कर डालता है और कहता जाता है- " धन सम्पत्ति के लिए ससांर में भटककर देख लिया, सबसे अधिक मूल्यवान सदा रहने वाली धन सम्पत्ति प्रभु आप हैं, इसलिए मैं यह जीवन आप पर बलिदान करता हूं। इस संसार में प्रिय लगने वालों को मैंने देख लिया कि यह सब नाश्वान हैं और अपने हित और स्वार्थ से बन्धे हुए हैं। ऐ प्रभु! आपसे बढ़कर प्रियवर दूसरा कोई नहीं। इसलिए मैं अपनी आहूति आपके चरणों में देता हूं। दिन रात मैं आपकी आरती उतारता हूं। दिन रात आपका अखण्ड यज्ञ कर रहा हूं। मुझे स्वीकार करो प्रभु!" स्वामी जी ने लिखा है कि ऐसा अश्वमेघ यज्ञ सदियों में कोई एक वीत वैरागी ही कर सकता है। ऐसा यज्ञ करने वाला खुद दिव्य प्रकाश का रूप धारण कर लेता है।

दिल्ली में आज़ादपुर के लाल बाग में महा प्रभु श्री ठाकुर श्री चंद स्वंय अपने मुख से इस बात की कई बार घोषणा कर चुके हैं कि वो अनेक जन्मों से इस यज्ञ को करते आ रहे हैं। इस जन्म में इस यज्ञ की पूर्ण आहुति देने के लिए ही इन्होंने जन्म लिया है। आपके लिए इक्कीस-बाईस बरसों से घर-बार, पुत्र, पत्नी, परिवार, गद्दी, मान-प्रतिष्ठा, चढ़त-चढ़ावा, सब को लात मार कर, सबसे सांसारिक रिश्ते तोड़कर खामोशी के साथ, निज प्राणों के साथ इस यज्ञ की अन्तिम और पूर्ण आहुति दे रहे हैं।

प्रातः समय जब वो चाय पीते हैं उस समय उनकी लीला को देखकर यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि वो चाय पीने के बहाने हवन-यज्ञ में आहुति डाल रहे हैं। समाधि अन्दर से आधी बन्द, आधी खुली आंखों के साथ, वो कटोरी को हवा में लहराते हुए मन ही मन में कुछ पढ़ते हुए अपनी चाय के बहाने उस परब्रह्म परमेश्वर की वन्दना करते हुए कहते है- जगन्नाथ पूर्ण पिता परमात्मा ! मैंने अपनी औलाद, अपनी पत्नी, अपना घर-बार, अपनी गद्दी, अपना नाम, रूप और रंग, शिष्य मण्डली और स्थूल जगत के जोड़ने वाले हर रिश्ते की पकड़ को

आपके श्री चरणों में न्यौछावर कर दिया है। अब मैं अपने एक-एक स्वांस के साथ आपके चरणों में पूर्ण आहुति चढ़ा रहा हूं। पूर्ण पिता! यह बूंद अब आपके महासागर में लीन होती जाती है।



अध्याय - 44

जिस देश में हम गए हर स्थान पर लोगों ने हम से बे-करारी के साथ पूछा कि हम किस तरह शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। गुरूदेव हमें उपदेश दिया करते थे कि सुख बाहरी चीजों और बाहरी सामान से कभी प्राप्त नहीं हो सकता। हमें यह बात अच्छी तरह से जान लेनी होगी कि हम बाहरी हालात और बाहरी सामान से जो कभी प्रसन्नता प्राप्त कर लेंगे कभी भी स्थाई नहीं होगी। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को जो उपदेश दिया था, गुरूदैव उसके आधार पर कहा करते थे- "शान्ति और आनन्द चाहते हो तो उस प्रभु से मन को जोड़ लीजिए, उसके प्रेम में रंग जाईए जो परिवर्तन से परे है, अविनाशी है। इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं, कुछ भी कायम नहीं। केवल ईश्वर इन सब परिवर्तनों से बे-न्याज़ है और यही कारण है कि हम उसको छोड़कर जहां से भी सुख और शान्ति लेना चाहेंगे, वहां निराशा होगी, मायूसी होगी। हज़ारों वर्षों पहले भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा था-" अपने आप में लीन हो जाईए (गीता दूसरा अध्याय श्लोक ४५) । वास्तव में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए (माध्यम बनाते हए) सारे संसार को उपदेश दिया और इस उपदेश का सार यह है कि ईश्वर पर विश्वास, ईश्वर पर भरोसा, ईश्वर से प्रेम, ईश्वर समर्पण। इस नित् बदलते संसार में केवल ईश्वर ही निश्चल है, अकाल है, तबदीली और परिवर्तन शील जगत में केवल ईश्वर ही स्थिर है। उस प्रभु से प्रेम कैसे करें। साधना के आधार पर दोनों भक्तों के बीच में कृष्ण चेतना के केन्द्र पर दिल को जोड़कर ही उसी स्थान पर हम उस ईश्वर का ध्यान कर सकते हैं, उससे बात कर सकते हैं।

दुःख प्रभु अर्पण :- साधारण मनुष्य का ध्यान सदा अशांत विचारों से जुड़ा रहता है, अशांत रहता है और भिन्न-भिन्न परेशानियों में उलझा रहता है। हर समय इसका ध्यान अपने काम-काज, अपने परिवार, समाज में अपनी कीर्ति, शोभा और इज्जत-मान की तरफ बना रहता है। वो धन-दौलत और अपनी शौहरत (नाम) की सोचता रहता है। उसका परिणाम यह है कि उसके दिल में अशान्ति, तृष्णा बनी रहती है। यदि आप यह समझते हैं कि आश्रम में आने या सन्यास लेने से हम हर चिंता और फिकर से अपरचित हो जाएंगे तो आप गलत सोचते हैं। आश्रम में भी दुःख और फ़िकर बने रहते हैं लेकिन आश्रम में हम यह बात हर समय ध्यान में रखते हैं कि भले ही कुछ हो जाए, प्रभु का आसरा है। एक आशा, एक भरोसा, एक दिलासा सा बना रहता है कि एक ऐसा आधार है जिसके पास हम रहमों-करम, नेक सलाह, ठीक राय, सहायता के लिए पुकार सकते हैं और वो प्रभु अपने पुकारने वाले को कभी निराश नहीं करेगा। सदा प्रभु पर अटूट भरोसा रखते हैं इसलिए शान्ति पाने का सरल-साधारण दूसरा असूल यह है कि हम अपने दुःख प्रभु -अर्पण कर दें। गुरूदेव सदा यह समझाने का यत्न

करते थे कि हम अपनी अकांक्षाएं, आशायें, स्वप्न, आवश्यकताएं और इच्छाएं सभी कुछ अर्थात अपना पूर्ण जीवन उस प्रभु के हवाले कर दें। हमारी बड़ी कठिनाई यह है कि हम सब कुछ प्रभु अर्पण करने को तैयार नहीं। इसके दो कारण हैं।

१. हम नहीं जानते कि हम जो कुछ उससे मांगते हैं, वो हमें दे देंगे।

२. हम मांगने के साथ शर्तें भी लगा देते हैं। इतना दो, इस वक्त दो। जब मनोदशा ऐसी हो तब जीवन अर्पण कैसे कर सकते हैं। सौ बार सोचते हैं कि अगर हम ने जीवन उनके हवाले कर दिया तो वो शायद मेरी रक्षा न करें, मुझे सहारा न दें। मेरी ज़रूरतों को पूरा न करें, ऐसी सोच मन का भ्रम है, मन की भ्रान्ति है। शैतान का धोखा है। यह इंसानी कमजोरी है और यह दलील-बे-असर है। मैं आपको गुरूदेव का बताया हुआ, अनादि काल से अज़माया हुआ राज़ बताना चाहता हूं और वो यह है कि समर्पण उस समय तक पूर्ण और सम्पूर्ण नहीं होता जब तक हम सच्चे मन से यह विश्वास और निष्ठा न रखें कि वो प्रभु किश्ती (नाव) को जहां चाहे ले जायें। दूसरी बात, दिन रात पूरी निष्ठा के साथ उस प्रभु का नाम लेते जायें। उसकी करूणा में ज्वार-भाटा (करूणा की लहर) आ जाएगा। वो आपकी सुन लेंगे। आपको निराश नहीं होने देंगे। एक ही रास्ताः- जब हम जवान होते हैं हम सारे संसार को विजय करने की सोचते हैं। हमें अपनी इच्छाओं, अपने अरमानों के सिवाय संसार की किसी दूसरी बात में कोई हित नहीं होता। चूंकि जवानी की हालत में स्वप्न अंगड़ाईया लेने लगते हैं। आरजुयें और ऊमंगे मचलने लगती हैं, हम उस समय दूसरों की गलत बातों को ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि बुराई और ऐब (नशा, सोच) हमारा ध्यान और दिलचस्पी को खींच लेते हैं। यह बड़ी बेवकूफी की बात है कि हम अवगुण और विकार धारण कर लेते हैं और गलत धारणा की नकल करने लगते हैं। धन कमाने की खातिर हम बड़े से बड़ा पाप कर गुज़रते हैं। मादी तरक्की (जाति उन्नति) के लिए प्रयत्न करते हुए हम ईश्वर को तिलांजली दे देते हैं। यही कारण है कि आज हमारे जीवन में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं रहा। इस गलत रजान (धारणा) और नज़रिया के कारण लाखों नौ जवान परेशानी, मायूसी, अशान्ति, बेचैनी में कैद हैं। इन सब बिमारियों का एक ही कारण है कि हम ने ईश्वर को अपने जीवन से दूर फेंक दिया है। अपने गुरूदेव के शब्दों को दोहराते हुए- यह कह देना काफी नहीं कि हम ईश्वर विश्वासी हैं और मन्दिर जाते हैं या प्रवचन सुनते हैं, महापुरूषों के व्याख्यान श्रवण करते हैं। ऐसा कह देने से ईश्वर प्राप्ति नहीं होगी। जब आपको प्यास सता रही हो और प्यास के कारण हलक (कंठ) सूख रहा हो तब लाख उपदेश भी आपकी प्यास नहीं बुझा सकते। आपको पानी पीने से ही शान्ति मिलेगी। ईश्वर संबंध में भी ऐसा ही है। जब आपका दिल बेचैन हो, शान्ति के लिए तड़प रहा हो आप अपने जीवन को दुःखी और अशांत महसूस कर रहे हो तब विश्वास से, प्रवचनों से, व्याख्यानों से और भजनों से काम नहीं बनेगा। हम लाख सांसारिक सुख इकटठे कर लें, हम लाख माया के पदार्थों से इस दिल को लबरेज़ (परिपूर्ण) कर देना चाहें, यह शान्त नहीं होगा क्योंकि आजतक कोई भी मनुष्य दिल को कशकोल (भीख की झोली) से नहीं भर पाया। स्वभाव से मजबूर होकर यह एक आरजू (इच्छा) की पूर्णता के बाद दूसरी आरजू के लिए तड़पने लग जाएगा। बेचैनी और अशान्ति बनी रहेगी क्योंकि जो कुछ यह दिल मांगता है हम उसे वो तो देते नहीं। आज संसार में जो अशान्ति फैली हुई है उसका बड़ा कारण यही कमी है। मैं तो साफ शब्दों में कहता हूं कि जो मनुष्य अपने आप से सच्चा होता है वो किसी के साथ भी गलत नहीं हो सकता। हम

अनर्थ करते हैं जब अपने आपको धोखा देने का प्रयत्न करते हैं और परिणाम यह निकलता है कि हम हर एक से गलत चलते हैं, अशान्ति फैलाते हैं। पतजंलि के योग सूत्र में यम, नियम और संयम का विवरण आता है। यह और कुछ नहीं अपने आप से सच्चा चलना है। यह सारा ब्रह्माण्ड जिसमें फूल, पौधे, कीड़े-मकोड़े, जानवर, पक्षी, इंसान सब के सब प्यार चाहते हैं, प्रेम मांगते हैं लेकिन कितने लोग हैं जो इस संसार में सच्चे दिल से प्यार करना चाहते हैं। इस संसार में महान से महान प्रेम के अवतार वो ही लोग हुए हैं जिन्होंने ईश्वर से प्यार किया, ईश्वर से विशुद्ध प्रेम किया। कहीं भी जायें यह शिकायत आम है कि हम पूजा-पाठ करते हैं, कई बरसों से करते हैं मगर मन अशान्त है। इसका कारण है कि हम पूजा सच्चे दिल से नहीं करते। पहले उस ईश्वर से प्रेम करो फिर प्रेम मगन होकर उसको पुकारो। आपकी प्रार्थना सुनी जाएगी। आपकी अरदास और पुकार कबूल कर ली जाएगी।



अध्याय - 45

परम् प्रभु के सिवाय किसी भी दूसरी शक्ति और सत्ता को अपना सहारा, अपना आसरा, अपना सहायक, अपना रक्षक और अपनी एक मात्र शरण के रूप में स्वीकार न करना और केवल सच्चिदानंद प्रभु परमेश्वर पर पूरी निष्ठा, श्रद्धा और विश्वास की अटल भावना के साथ एक मात्र इन्हीं की भक्ति, आराधना, पूजा को जीवन में साकार बनाते हुए अपने को प्रभु की इच्छा पूर्ती का निमित्त मात्र मानकर सभी कर्तव्यों को करना प्रभु की अनन्य भक्ति है और संसार के किसी भी धर्म और आध्यात्मिक तरीके को लें अनन्य प्रभु प्रेम की साधना परम् शिखर अवस्था है। अध्यात्म की इन्तहा यह है कि अपनी जात को पूर्ण रूप में प्रभु के सिवाय सब से अलग कर लें और हर प्रकार से प्रभु अर्पण हो जाएं।

इस भक्ति को गीता में अनेकों नामों से पुकारा गया है। जैसे अनन्य-योग, सतत्-योग, परा-भक्ति, निष्काम-भक्ति, अवचल-भक्ति, एकान्त-भक्ति । कबीर जी ने इसे सहज समाधि और तुलसी दास जी ने इसे सहज-स्नेह का नाम दिया है। इसे सहज-योग और राज-योग भी कहा गया है। यह वो सबसे ऊंची अवस्था है जिसको प्राप्त करने के लिए साधक अनेकों रास्ते, अनेकों साधन, अनेको युक्तियां अपनाते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के कठोर शारीरिक और आध्यात्मिक कष्ट हंसते-हंसते सह लेते हैं। सभी सांसारिक वासनाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं के प्रभाव से सम्पूर्ण रूप से मुक्त होकर एक मात्र भगवान की इच्छा में अपनी इच्छा को पूर्ण समर्पित कर देना और जो कुछ अच्छा या बुरा हो रहा है उसको समदृष्टि से देखना, उसको प्रभु की लीला समझ कर स्वीकार कर लेना उसकी रज़ा में अपने आपको प्रसन्नता से ढाल लेना- सूफियों, संतों ने इसे सबरो शुक्र की मंजिल कहने के बाद कहा है कि दोनों में ऊंचा मुकाम शुक्र का है। हर हालत में, हर रंग में, हर हाल में उसके शुक्र में रहना, उसकी कृपा को खुले दिल के साथ कबूल करना । अनन्य भक्त अपने सभी सम्बंध एक

मात्र भगवान से स्थापित करता है। भगवान ही भक्त के स्वामी, सखा, पिता, माता, गुरू, पत्नी, बहिन सब रिश्ते भक्त के साथ होते हैं। जितने भी श्रेष्ठ, पवित्र व प्रेममय सम्बंध हो सकते हैं उन सबका केन्द्र भक्त भगवान को बना लेता है। सारे रिश्ते उनसे मानता है और अपने सभी सम्बंधों और सम्बधियों के पीछे वो भगवत् कृपा का अनुभव करता है। यह किसी भी ऐसे सम्बंध की कल्पना तक नहीं कर पाता जिसके मूल में प्रभु कृपा का आधार न हो। गीता में तो भगवान को स्वामी श्री आदिपती, साक्षी, आश्रेय, मित्र, पिता, माता, संरक्षक, बहुत कुछ कहा गया है। नवें अध्याय का श्लोक देखने योग्य है। प्रभु की अनन्य भक्ति करने वाला भक्त सभी सम्बंधों और सम्बंधियों में ही नहीं, सभी हालातों और घटनाओं के पीछे प्रभु के विधान और प्रभु की इच्छा को देखता है और खराब, तलख हालात के पीछे उस प्रभु की रचना और इच्छा को जानकर, सबको सब कुछ मंगलमय मानता है। इसी कारण वो सदा प्रसन्न रहता है, शान्त रहता है। प्रसन्नता का एक कभी न सूखने वाला चश्मा उसकी रूह के अन्दर बहता रहता है। ऐसे अनन्य भक्त को सम्बुद्धि मिल जाती है। समता और समानता को प्रतीत करने वाला भक्त, हर्ष-शोक इत्यादि सब हालातों से ऊपर उठ जाता है। ऐसा भक्त सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों से बे-न्याज़ और इनके प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है। यही नहीं वो सभी कर्मों के कर्तापण के भाव से भी मुक्त हो जाता है। इसके मन में कर्तापण का अहंकार लेशमात्र नहीं रहता वो सब कुछ प्रभु की इच्छा पूर्ती के लिए बे-जान मशीन की तरह करता है। न कर्म पर उसका अधिकार न उस कर्म के फल पर उसका अधिकार । वो अपने आपको उस विधाता का यंत्र समझता है। जैसे कठपुतली अपनी इच्छा से नहीं, नचाने वाले की इच्छा से नाचती है या जैसे सितार, बंसी स्वयं नहीं, बजाने वाले की इच्छा के अनुसार स्वर-संगीत की रचना करते हैं, इसी तरह भक्त अपने हृदय में समझता है कि वो अपने एक मात्र प्रभु की इच्छापूर्ती का एक साधन मात्र है। भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन को यही उपदेश तो दिया था कि अर्जुन! तुम महाभारत युद्ध में अपने आप को निमित्त मात्र ही जानो और यही बात रामायण में भगवान राम मां केकेई से कहते हैं- माँ! तुम शोक न करो, विधाता ने तुम्हें अपना यंत्र बनाया है। इसमें दुःखी क्यों होती हो।

साधन अभ्यास करने से साधक को अनन्य भक्ति अपने आप मिल जाती है। ऐसे साधक को प्रभु स्मृति के लिए बाहर से प्रेरणा नहीं लेनी पड़ती। उसके स्वांस-स्वांस से अपने आप प्रभु सिमरण चालू हो जाता है और इससे बड़ी उपयोगिता यह है कि उसके दिलो-दिमाग के अन्दर हर समय प्रभु की अनन्त, असीम कृपा गंगा प्रवाह के समान अपने आप बहती रहती है। भगवान का नाम जप भी चलता है और मन हर समय उस प्रभु के चरणों में जुड़ा रहता है। अखंड ज्योति हृदय मन्दिर में प्रकाशित रहती है। दिव्य-नाद् हर समय कानों में गूंजता रहता है। साधक के अधरों से लगी हुई भगवान कृष्ण की बंसी निरंतर अपने आप हर समय बजती रहती है।

जब ऐसी दशा बन जाती है तो भक्त अपनी सभी चेष्टायें, सभी इच्छायें, सभी भावनायें प्रभु चरणों में नेवेद्य रूप में अपर्ण कर देता है। अपना मन, तन, धन, बुद्धि, चित्त, संस्कार और अन्त में अपना अहंकार, अपनी ममता सब कुछ प्रभु चरणों में अर्पित कर देता है।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ प्रभु तोर।

तेरा तुम को सौंपते, प्रभु क्या लागत है मोर ।।

ऐसा भक्त सम्पूर्ण रूप से निष्पाप हो जाता है। इसके सभी मलीन संस्कार धुल जाते हैं। इसके लिए संसार भर के सभी रस बे-स्वाद हो जाते हैं। ऐसा भक्त स्वयं तर जाता है बल्कि अपने परिवार और सम्पर्क में आने वाले अनुयाई वर्ग को भी तार देता है। अनन्य भक्त जो कुछ करता है, भोजन, यज्ञ, दान, तप, साधना, पूजा, आराधना जो कुछ शुभ कर्म करता है- भगवान के लिए भगवान की पूजा समझ कर करता है। गीता के नवें अध्याय के २७वें श्लोक में मनुष्य को सब कुछ भगवत् अर्पण करने की यही शिक्षा दी गई है। अठारवें अध्याय के ६६वें श्लोक में प्रभु कहते हैं जो व्यक्ति संकल्पों विकल्पों को त्याग उनकी शरण लेता है, उसे वो सब पापों से मुक्त कर देते हैं। सर्व आत्माओं के सभी भावों से, हर पल, हर क्षण, हर हालात में भगवान के अर्पण हुए प्राणी को मोक्ष की आवश्यकता नहीं रहती। वो जीवन मुक्त हो जाता है। सांसारिक कष्टों, रोगों, दोषों से, संतापों से मुक्त होने का एक ही मार्ग है कि मनुष्य इसी अनन्य भक्ति में रंग जाए।

अनन्य भक्त सब प्राणियों में भगवान को और भगवान में सब प्राणियों को देखता है। यही नहीं इसे चेतन्य अचेतन्य सब में अपने प्रभु के दर्शन होते हैं। सहज ही में, बिना परिश्रम किए, हर एक वस्तु में, हर एक हालात में प्रभु का साक्षात्कार करता है। ऐसे भक्त के लिए न प्रभु जुदा होते हैं और न वो प्रभु से जुदा होता है। उसके लिए सब कुछ भगवानमय हो जाता है।

अनन्य भक्त मन, बुद्धि और प्राण से निरन्तर भगवान का ही चिन्तन, मनन्, सिमरण करता है। नाम जप, नाम संर्कीतन, भगवत गुणों का श्रवण, वाणी से भगवत् गुणों का वर्णन उसका सहज-स्वभाव हो जाता है। इसके पास चर्चा करने को और कुछ नहीं रह जाता। वो जो कुछ सुनता है, प्रभु वाक्य बन जाता है। वो जो कुछ देखता है, प्यारे प्रभु का रूप बन जाता है। इसका आना जाना, प्रभु की परिक्रमा बन जाता है। इसका सोना, जागना, खाना-पीना प्रभु का नेवेद्य, प्रभु प्रणाम, प्रभु पूजा बन जाता है। ऐसा भक्त जहां पर भी रहता है, वो स्थान तीर्थ बन जाता है। वो जो कुछ करता है सव-धर्म बन जाता है। वो जो बोलता है, शास्त्र बन जाता है। ऐसे अनन्य भक्तों के स्थान, जाति, वर्ण, गुण, कर्म इत्यादि के सभी भेद मिट जाते हैं। ऐसी अनन्य भक्ति केवल प्रभु की असीम कृपा से किसी विरले, बेहद खुशनसीब, पुण्य आत्मा को ही प्राप्त होती है। आध्यात्मिक मार्ग, इसकी मंजिल यही अनन्य भक्ति है।

जीवन मुक्ति के दो ही साधन हैं या भक्त बनो या देश रक्षक। मार्ग भले ही भिन्न हों, दोनों का लक्ष्य एक है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं गीता में कह गये हैं कि स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा करने वाले को वही गति मिलती है जो भक्त को मिलती है। यही उपदेश हमें भगवान् यशु मसीह ने दिया जिनकी गणना संसार के उन दिव्य महापुरूषों में की जाती है जिनके उपदेश और सन्देश से करोड़ों मनुष्यों ने आध्यात्मिक सुख और शक्ति का धन पाया और स्वधर्म की शिक्षा ली और जिनके श्रद्धालुओं की संख्या संसार के दूसरे सभी साम्प्रदायों के मानने वालों की संख्या से अधिक है। दिसम्बर के महीने में इन्हीं परम संत यशु मसीह का जन्म-दिन मनाया जा रहा

है। वे एक सच्चे साधु थे, सम्पूर्ण योगी जिनकी शिक्षा, उपदेश भारत के उन दार्शनिक महापुरूषों के साथ मिलती है जिनका नाम लेकर आज भी हम श्रद्धा से सीस झुका देते हैं।



अध्याय - 46

येरूशलम नाम के नगर में एक निर्धन के घर इनका जन्म हुआ और वह भी एक ऐसे स्थान पर जहां ढोर डंगर बांधे जाते थे। मल-मूत्र से भरे इस दुर्गन्ध पूर्ण स्थान पर उनका जन्म हुआ। हम अन्धेरे में जन्म लेते हैं, अन्धेरे में जीवन व्यतीत करते हैं और अन्त अन्धेरे में ही मर खप जाते हैं। लेकिन हज़रत ईसा ने ऐसे स्थान पर जन्म लेकर भी अपने जीवन प्रकाश से करोड़ों साधकों का पथ आलोकित किया। किसी ने उनसे पूछा- 'ईश्वर प्राप्ति कैसे हो सकती है?' तो बिखरे बालों वाले, काली कमली ओढ़ने वाले इस प्रभु भक्त योगी ने कहा था- "नाम कमाओ" इन्हें उपदेश देने के लिए कहा गया तो बोले- "उपदेश सुनकर क्या करोगे अपना जीवन नाम के रंग में रंग लो। किसी शेष उपदेश की आवश्यकता नहीं रहेगी। किसान खेती में बीज का छिड़काव करता है। कुछ बीज पत्थरों पर गिर पड़ते हैं, कुछ कांटों में उलझ जाते हैं, कुछ धरती पर जा गिरते हैं। किसान बीज डालने के पश्चात् पानी देता है। वह बीज जो पत्थरों पर गिरे होते हैं इतने ऊंचे होते हैं कि पानी उन्हें छू नहीं सकता और वे वहीं पड़े सड़ जाते हैं। जो बीज कांटों में उलझ गये थे, उन्हें पानी मिला, उनसे अंकुर फूटा परन्तु कांटों ने पौधे को पनपने न दिया और जो बीज धरती पर गिरे थे, उनमें से कुछ एक को चिड़िया चुग कर खा गई। जो शेष बच गये, पानी मिलने से धरती तले दबे होने पर भी फूटे। अपने ऊपर पड़ी धरती को हटाया और फिर पौधे बन कर लहलहाये और एक ऐसी खेती बन गये जिसे देख-देख कर किसान खुशी से नाच उठा।

महापुरूष भी जीवों को इसी प्रकार नाम देते हैं जिस प्रकार किसान बीज का छिट्टा लगाता है। कई एक के मन इतने कठोर होते हैं कि नाम का बीज पड़ा-पड़ा सड़ जाता है। कई एक के मन भ्रम-भ्रान्तियों के कांटों से अटे-पड़े होते हैं, नाम फूटता तो है परन्तु पौधा नहीं बन पाता और कई एक प्राणियों को कह सुनकर लोग सत्संग में ले आते हैं नाम इनको भी मिलता है, परन्तु चंचल वृत्तियों की चिड़िया आकर इस नाम को चुग ले जाती है। वही धन्य हैं जिनकी धरती में यह बीज गिरे और उनकी मन रूपी धरती में जड़ पकड़ी और फिर फूल और फल से लद गये और उनके मन नाम के रंग में रंग गये, भक्ति की डगर पर चले।"

हज़रत ईसां प्रेमाभक्ति के अवतार माने जाते हैं। उनका उपदेश यही था कि पूर्ण नम्रता से मनुष्य अपने आपको ईश्वर अर्पण करे दे। जन सेवा ही प्रभु सेवा है और प्रेम का दूसरा नाम प्रभु है।

हज़रत ईसा ने बताया कि प्रभु प्रार्थना, उनके नाम का सिमरण किस प्रकार किया जाता है। "जब आप प्रार्थना करो तो एकांत स्थान में करो। मूर्षों के समान बाज़ारों के कोनों में खड़े होकर दूसरों के दिखाने के लिए मत करो। मैं आप से सत्य कहता हूं उनको फल अवश्य मिलेगा। जब आप प्रार्थना करो तो कमरे का द्वार बंद करके करो। वह परम-पिता-परमात्मा जो इन नेत्रों द्वारा दिखाई नहीं देता, वह आपकी प्रार्थना अवश्य सुनेगा ।"

ऐसा सत्य, प्रेम, दया, करूणा का संदेश देने वाले योगी पर हम जैसे कृतघ्नों ने कितने अत्याचार ढाये, उन्हें उस बुरी मौत मारा कि रौंगटे खड़े हो जाते हैं। डोंडी पिटवा कर नगर वासियों को इकट्ठा करके चौक में सूली पर लटका दिया। हाथ-पांव में कील ठोक दिये। रक्त के फव्वारे फूट पड़े, परन्तु उन्होंने सी तक न की। जब लोगों ने पूछा कि- "आपकी अन्तिम इच्छा क्या है?" तो प्रभु भक्ति के नशे से छलकती आंखें खोलकर, अधरों पर मुस्कान फैला कर हज़रत ईसा बोले- "मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि वह उन लोगों को सच्चा मार्ग दिखाये जो नहीं जानते कि वह क्या कर रहे हैं।"

क्राईस्ट के शरीर की तो मृत्यु हो गई किन्तु उनकी आत्मा को कौन मार सकता था? उनके अमर सन्देश और जीवन की पवित्रता, तप-त्याग और बलिदान से प्रेरित असंख्य मनुष्यों का जीवन सुधर गया। तो आईये! २५ दिसम्बर के पावन दिन उस योगीराज, प्यार के देवता और सेवा के उपदेशक ईश्वर ज्योति के श्रीचरणों में आंसूओं भरी पुष्पांजलि अर्पित करते हुए प्रण करें कि हम उनके दिखाये दिव्य मार्ग का अनुसरण करेंगे- तभी बड़ा दिन क्रिसमिस मनाना सार्थक होगा और तभी प्रभु ईसा हम पर रीझेंगे। उस योगीराज के श्रीचरणों में शत्-शत् प्रणाम!



THANKS GIVING

We Thank the Lord who inspired our following generous hearted friends to donate for the present publication:- "KRIPA KI LAHREN"

Our sincere gratitude goes out to all of them. Indeed, most of the donors have, for many years, been nourishing financially SUNSHINE CHARITY TRUST'S Publications and blessing our humble efforts in spreading the luminous messages of our Beloved Master PARAM PUJYA PAPA JI MAHARAJ.

God bless them all:

Managing Trustee



SUNSHINE CHARITY TRUST (REGD.)
दरिद्र देवो भव